समालोचनार्थ

विविधज्ञान ग्रन्थमाला संख्या ५

लोकमान्य तिलकके-

स्वराज्य पर १२ व्याख्यान

और

जमानतका मुकद्दमा

प्रकाशक

गंगाधर हरि खानवलकर

ग्रन्थ-प्रकाशक समिति, काशी

बनारस सिटी।

प्रथम संस्करण] संवत् १९७४ [मूल्य १।=)

पंड्या गुलाब शंकर द्वारा काशी तारा यन्त्रालय में मुद्रित।

सिंहावलोकन

इस पुस्तकके लिये प्रस्तावना लिखना मानो होमरूलकी प्रस्तावना लिखना है। आज कई वर्षोंसे जिस विषयके संबंधमें विचार करनेकी लोगोंमें प्रबल इच्छा फैली हुई थी उस विषयको अर्थात् भारतवर्षके लिये होमरूल-साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य-को कचहरीमें घसीटनेका सौभाग्य लो० तिलकके मुकद्दमेको प्राप्त हुआ। इससे सारे देश भर की प्रजाको इस विषयपर अच्छी तरह विचार करनेका मौका मिल गया। केवल इतनाही नहीं परञ्च विरुद्ध पक्षके बैरिस्टर मि० बिनिंगने खुले आम कचहरीमें कहा कि सरकारकी ओरसे होमरूलके संबंधमें कोई नई बात बतलाई नहीं जायगी। मद्रासके हाइकोर्टमें भी वहाँ की सरकारकी ओरके एडवोकेट जनरलने भी कहा कि 'होम-रूलके विरुद्ध कुछ कहनेकी सरकारी आज्ञा हमें नहीं है। इसके पहले एक बड़े महत्वपूर्ण झगड़ेमें कलकत्तेके प्रधान न्यायमूर्त्तिने यह कह दिया था कि 'स्वराज्य विषयक चर्चा राजद्रोहात्मक नहीं है।" अतएव यह दिखाई देगा कि होमरूलके संबंधमे सरकारकी दृष्टि टेढ़ी नहीं है।

प्रेस एक्टके अन्दर आक्षेपार्ह समझे जाने वाले लेख और इण्डियन पिनलकोड धारा १२४ (अ) अथवा १५३ (अ) के अनुसार आक्षेपार्ह समझे जानेवाले लेख इन दोनोंमें भेद है इस बातको सदा ध्यानमें रखना चाहिये। प्रेस एक्टके अंदर किस अवस्थामें कौनसा लेख आ सकेगा इसे सरकार के सिवा निश्चित रूपसे समझना दूसरोंके लिये कठिन होगा और इसे ऐसा पेचीदा बनानेके लिये ऐसा व्यापक रूप

किया गया है। इस बातको कलकत्ता, और मद्रासके न्यायालायोंने स्वीकार किया है। जितनी अनिश्चितता ऊपरके पक्टके संबंध है उतनी इ० पि० कोडकी १२४ या १५३ धाराओंके संबंधमें नहीं है। यह इन मुकद्‌मोंके फैसलों से स्पष्ट दिखाई देता है।

मद्रासके हाइकोर्टमें, जब कि मिसेज बेसेण्टका मुकद्मा चल रहा था, माननीय एडवोकेट जनरलने कहा था कि "कानूनके चंगुलमें न फॅसकर होमरूलके विषयमें लख लिखना एक सम्भवनीय बात है; पर हॉ, उदाहरण देकर यह बतलाना कठिन है कि उन्हें किस तरह लिखनेसे वे कानूनमें नहीं आ सकते।" हाइकोर्टके फैसलोंसे यह अड़चन अंशतः दूर हुई। लोकमान्य तिलकके व्याख्यानमें कुछ वाक्य उपेक्ष्य भलेही रहे हों पर किसी वाक्य अथवा किसी कल्पनासे सारे लेखको दूषित ठहरानेवाला सिद्धान्त सर्वथैव अबाधित नहीं है। कमसे कम इस मुकदमेके फैसलेमे तो यह बात स्पष्टही दिखाई देती है।

लोक० तिलक जैसे सज्जनसे अच्छी चालचलनके लिये जमानत मॉगी जाती है। तब "अच्छी चालचलन" किसे कहते हैं? इस प्रश्नको यदि प्रजा हल करना चाहे तो उसे क्रिमिनल प्रोसीजर कोडकी धारा १०८ में दिये हुए "अच्छी चाल चलन" के शब्दोंको देखना चाहिये। किसी संस्कृत कविता में कसौटीका निर्णय यों दिया है।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
श्रुतेन शीलेन गुणेन कर्मणा

इसमें आजकलके कानूनके क्रि० प्रो० कोडकी १०८वीं धाराने कुछ और जोड़ दिया है। 'शील' शब्दकी व्याख्या के लिये कानूनी भाषाके अनुसार १०८वीं धाराका आशय समझना चाहिये। इस धाराका मतलब यही है कि अच्छी चालचलनसे चलनेका दृढ़ संकल्प हो तौभी एक सालके लिये यह कानून किसी मनुष्यसे अमानत माँग सकता है। हाइकोर्टके किसी न्यायाधिपतिने 'स्वराज्य' के लिये 'Home rule' शब्द प्रयुक्त किया है। दूसरे न्यायाधिशोंने उसी 'स्वराज्य' शब्दको कई भिन्न अर्थोंसे पूर्ण बतलाया है। इसलिये हर एक मौके पर 'स्वराज्य' शब्द निरुपद्रवी (दुःख न देनेवाला) ही होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता। जिस जगह वह प्रयुक्त किया गया हो उसीके अनुसार वह उपद्रवी या निरुपद्रवी समझा जायगा। हिन्दुस्तानके लिये अधिकारोंको माँगने और सारा कारोबार प्रजाके हाथोंमें देनेका जिस आन्दोलनका स्पष्ट हेतु हो उस आन्दोलन मे—स्वराज्यके आन्दोलन मे—कानूनकी मर्यादा काउल्लंघन नहीं होता यह बात बड़े मार्केकी है। इसी वैध सिद्धान्तको न्याय देवताने हमसे कहा है। लो० तिलक ने स्वराज्यके विषयमें अपनी जो भावना व्यक्त की है उस का उल्लेख न्यायमूर्ति सर एस० बेचलरने अपने फैसलेमें किया है। इसे पढ़नेसे पाठक सहजही समझ सकते हैं कि उसकी पहचान क्या है? इस एक मार्गको स्पष्ट करनेके लिये हमें न्यायमूर्त्तिका आभारी होना चाहिये।

परन्तु उद्देश्य कितनाही निर्दोष, पवित्र और आवश्यक हो तो भी उसकी सिद्धिके लिये जो मार्ग सुझाये गये हैं उनको देखनेकी भी परीक्षकोंकी इच्छा रहती है। अतएव

लो॰ तिलकने स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये जिन मार्गोंका अव-लंबन करनेके लिये कहा है उस उक्तिका भी उल्लेख न्याय-मूर्त्तिने अपने फैसलेके अवतरणमें किया है। उसका सारांश यही है कि लो॰ तिलकने वैध मार्गोंसे इस उद्देश्यको सफलीभूत करनेका उपदेश दिया है।

डिष्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेटके प्रस्ताव और हाईकोर्टके फैसलेको देखनेसे यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सर्व साधारणके सामने अर्थ विपर्यासका भास कैसे होता है। पुरानी धार्मिक पुस्तकोंमें आपने वह किस्सा पढा होगा जिसमें किसी राजाके एक ज्योतिषीसे यह पूछनेपर कि 'मेरी आयु कितनी है?" उसने केवल भाषाके उपयोगसे कैसा अनुकूल प्रतिकूल प्रमाण देकर उसे समझाया था। "तुम्हारी इतनी अधिक आयु है कि तुम्हारे सामने ही लड़के बाले मरेंगे" इस बातमें और "लड़को बालोंसे भी आपकी आयु दीर्घ है" इन दोनोंमें क्या अन्तर है यही उस किस्सेमें उल्लिखित राजाने सिद्ध किया है। पढ़ लिखे लोगोंके सामने बोलनेकी प्रणाली निराली होती है और अपढ़ लोगोंको कोई बात समझा कर बतलाना निराला है। हाइकोर्टके फैसलेमें इसीको लक्ष्यकर ये शब्द लिखे हुए हैं Remembering the politically ignorant audience which Mr. Tilak was addressing.. . ..." सचमुच यदि देखा जाय तो बेलगांव या नगरमें प्रान्तिक अथवा जिला परिषद्में एकट्ठा हुए लोगोंको राजकीय विषयोंके संबंधमें अपनी अज्ञता प्रकट न करना चाहिये था परन्तु स्वराज्य (Home rule) के विषयमें अनुभवी अपरिचित जनसाधरणका अज्ञ बनना ही आवश्यक था। अतएव ऐसे लोगोंके सामने

उनको समझानेके लिये जो भाषा काममें लाई गई वह भी उससे अवश्य भिन्न होगी सुशिक्षितोंके सामने कही जायगी। अंग्रेज राजनीतिज्ञ क्या कहते हैं यह हम लोगोंमेंसे कुछ लोगोंको अन्त तक न समझाई देगा और उसी तरह लार्ड कर्जन जैसे धुरंधर राजनीतिज्ञका घोषणा पत्र' को दरबारी आश्वासन कह देना इसका रहस्य उपर्युक्त कारण ही में छिपा हुआ जान पड़ता है। विचारोंमें समानता होनेपर भी केवल भाषा विभिन्नत्वसे विपर्य्यास हुआ है। स्व. गो कृ० गोखलेका गुप्त उद्देश्य और लो० तिलकका स्पष्ट उद्देश्यसे कुछ अंशोंमें एक होनेपर भी उनके परिणाम भिन्न क्यों होते हैं इस प्रश्नके हल करनेमें यह मुकदमा सहायता देगा। हाँ, यह बात सच है कि मिसेज बीसेन्ट अंग्रेजीमें बोलें या लिखें तौभी किसी मौके पर और उसी मौकेके अनुसार हर बार उनकी भाषाका अर्थ भिन्न २ लगाया जाना सम्भव हो सकता है। पर ऐसे उदाहरणोंको छोड़ दीजिये। होमरूलका आन्दोलन चारों ओर फैलाकर लोगोंके दिलमें उसे बैठानेके लो० तिलकके व्याख्यानमें हाइकोर्टने जो भाग दोषार्ह ठहराए हैं उन्हें भी छोड़ दीजिये। इस मुकदमेमें जिन वाक्योंके लिये डि० मेजिस्ट्रेटने लो० तिलकसे जमानत ली वे वाक्य कानूनकी दृष्टिसे दूषित नहीं है यह बात लोगोंको स्पष्ट दिखाई दी है। हम लोग यह कह सकते हैं कि इस मुकदमेका परिणाम हितकर हुआ है। लो० तिलकसे जमानत न मांगनेके कारण इस फैसलेका जितना महत्व है उससे अधिक महत्व इस बातमें है कि कैसी भाषासे, किन उपायोंसे होमरूलका आन्दोलन जारी रखना सुसाध्य है।

इसी होमरूलके तत्वका प्रतिपादन करनेमें खुलमखुल्ला अनुकूलता प्राप्त नहीं हुई सही, पर सरकारकी ओरसे यह भी नहीं दिखाया गया कि वह इसके प्रतिकूल है।

किन्तु इससे भी एक बड़ी मार्केकी बात इस फैसलेमें हुई है। 'सरकार' शब्दकी परिभाषा कुछ खास मौकोंको लक्ष्य कर पिनल कोडमें दी गई है। लो० तिलकके व्याख्यानमें इसके कहनेका तात्पर्य यह था कि अदृश्य शक्ति ही सरकार है और उसीका दिखाई देनेवाला रूप— हम लोगोंपर राज्य करने वाले सिंहासनाधिपति बादशाह और पार्लिमेंट और तत्समान अधिकारी ये 'सरकार' समझे जावें और बाकी सब नौकरोंमें गिने जांय। परब्रह्म और मायाका उदाहरण लो० तिलकने दिया है। हम लोगोंकी कल्पनाओंके अनुसार सायुध साशक्तिक मूर्त्ति ईश्वर स्वरूप है; पर मूर्त्तिके भंग हो जाने या गुम हो जानेसे उपास्य देवता लोगयी ऐसा कभी कोई नहीं कह सकते। उसी तरह नौकरमेंसे यदि किसीकी आवश्यकता न हो तो वैसा कहना दूषणास्पद नहीं है यही उनके कहने का मतलब था। इस हाइकोर्टके फैसलेमें राजदेवताके अंग बड़ी बड़ी नौकरियाँ कही गई हैं। किसी विशेष नौकरके विषयमें जो उद्गार निकलें वे राजभक्ति पूर्ण हों ऐसी भी ध्वनि उससे निकलती है। इस विवादपूर्ण विषयको शीघ्र ही कानून बनानेवाली कौन्सिलके सामने लाकर उसका निर्णय कराना चाहिये।

एक और बातकी प्रशंसाके संबंधमें कुछ कहे बिना नहीं रहा जाता। लो० तिलकके व्याख्यानमें उनका विशेष कटाक्ष सिविल सर्विसपर था और अब भी है। मान० सर०

एस, बेचवर उन लोगोंकी उच्चतम श्रेणीमें हैं ऐसा होते हुए भी जब मुकद्दमेमें सिविल सर्विसके संबंधमें प्रसगानुसार अस्पृहणीय उद्गार उन्हें सुनाई दिये तौभी उन्होंने न्यायकी तराजूमें उनकी परीक्षा इतनी सावधानीसे की है कि उसका अनुकरण उनके सहयोगियोंको करना चाहिये। इसीमे लो० तिलकका ही नहीं, बल्कि सारी प्रजाका बृटिश राज्यके संबंधमें आदर बढ़ते हुए प्रमाणपर है। बृटिश सरकारकी सहानुभूतिसे ही हमें स्वराज्य मिलने वाला है येही देशभक्तिपूर्ण उद्गार लो० तिलकके व्याख्यानोंसे सुनाई दिये हैं।

सारांश यह कि स्वराज्य (होमरूल) का उद्देश्य उसके लिये उपाय और परिभाषा ये सब बाते एकही समय सारे संसारको बतलानेमें इस मुकदमेका अथसे इतितक का सारा इतिहास साधनीभूत होगा। मौके मौकेसे कुछ बातें बड़ी अच्छी मालूम होती हैं। मुद्दईकी यह प्रार्थना बिलकुल हास्यास्पद है कि लो० तिलकको उनकी ६१ वीं जन्मगाँठके उपलक्ष्यमें एक लाख रुपया नजर किया जानेवाला है इसलिये उनसे अच्छी रकम जमानतमें मांगनेके लिये यह बहुत कुछ यथेष्ट प्रमाण है। किसीके ध्यानमें भी यह बात नहीं आई थी कि महाराष्ट्र और मध्य प्रान्तके लोगोंकी नजर की हुई प्रेमकी रकमका उपयोग जमानतका रुपया देनेके काममें होगा। उसी तरह जिस दिन यह प्रेमकी नजर लोग उन्हें देनेवाले थे उसी दिन प्रातःकाल मुद्दई की ओरसे ऐसी कड़ी 'नजर' फेंकी गई। जमानतकी नोटिस उसी दिन प्रातःकाल दी गई उसकी तनिक भी चिन्ताकी छटा लो० तिलकके उस दिनके आचार व्यवहारमें

था बाद मुकद्दमा चलाते समय न थी। उसका कारण निसंदेह यही था कि लो० तिलकके हृदयमें ब्रिटिश न्यायप्रियता और अंगीकृत उद्देश्यके सम्बंधमें श्रद्धा और हृदयकी गम्भीरता थी।

शीघ्रलेखन पद्धति अभी पूर्ण नहीं हुई है यही वजह है कि बोलनेके समय जल्दीमें कहेहुये वाक्य अथवा उद्गार सूचक वाक्योंका जैसेके तैसे उतारलेना असम्भव है। ऐसी हालतमें यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आक्षेपार्ह भाग वैसेही रहते है या नही। तथापि यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि लो० तिलकने इस बातकी ओर ध्यान नहीं दिया। अनुवादमें कहीं कहीं गडबड हो गई हो परंतु एक वाक्य या एक शब्दसे सारे व्याख्यानका परिणाम निश्चित करना ठीक नहीं है। हाइकोर्टके फैसलेका उपर्युत तत्त्व बडे महत्वका है। इस मुकद्दमेमें जिसने मुल अनुवाद किया था उससे कम दर्जेवाला उसी आफिसका नौकर उसका ठीक अर्थ प्रमाणित करनेके लिये कोर्टमें आवे यह ठीक नहीं है। अनुवादसे सदोषता अथवा निर्दोषता साबित करनेकी पद्धति ज्यों ज्यों कम होती जायगी त्यों त्यों न्याया-लयोंपर प्रजाका विश्वास अधिक बढ़ता जायगा।

हाइकोर्टमे जिरहके समय सरकारकी ओरसे मान० एडवोकेट जनरल, सिवा मि० बिनिंग, मि० स्ट्रांगमन, मि० पटवर्धन आदि, तथा मामूली सरकारी वकील हाजिर थे। इतनाही नहीं, पुलिस विभागके मि० गाईडर और पूनाके गवर्नमेन्ट प्रासीक्यूटर रा. ब. डावर भी उपस्थित थे। यह प्रश्न संदिग्ध है कि मान० एडवोकेट जनरलको इतने

मनुष्योंके सलाहकी क्या अवश्यकता थी ? इस प्रश्नका आगे चलकर खुलासा होही आयगा।

डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेटके कोर्टमें एक बात यों हुई थी कि लो० तिलकने अपने मुकद्दमेंके उपयोगके लिये तीनों व्याख्यानोंकी, कोर्ट द्वारा तसदीक की हुई, नकलोंको छपवा लिया। उसकी कुछ प्रतियाँ जब कोर्टके सामने आई तब डि० मेजिस्ट्रेटने सूचनार्थ ये वाक्य कहे कि यदि ये व्याख्यान १०८ धारामें आसकते हैं तो इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये कि इनकी प्रतियाँ बटनें न पावें। उस मौके पर आवश्यक बाकानून उत्तर देते समय श्रीयुत केलकरजीने कहा "न्यायालयकी सारी बातें प्रकाशित करनेमें कानूनका अतिक्रमण नहीं होता। वस्तुत: देखा जाय तो इसके पहलेही क्रानिकल जैसे पत्रोंने उन व्याख्यानोंका उल्लेख पहले ही किया था।"

मान० न्यायमूर्त्तिके आदरके साथ हमें आभार मानने चाहिये और यह बहुत ठीक है। उसी तरह निडर होकर कोर्टके सामने मुकदमेंको रखनेमें मान० बैरि० जिन्ना और लो० तिलकके मित्र तथा होमरूल लीगके प्रेसिडेण्ट मि० बॉप्टिस्टाने जिस कुशलतासे कार्य किया वह सराहने योग्य है।

१०-१२-१६.

र० पां० करंदीकर बी० ए० एलएल० बी०
वकील हाइकोर्ट; सातारा

आत्मनिवेदन।

इस पुस्तकको प्रकाशित करनेमें हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि सर्वसाधारण इस स्वराज्यके आन्दोलनको भली भांति समझने लगें और उसके सहायक हों। स्वराज्यका आन्दोलन देशव्यापी हो रहा है इसलिये प्रत्येक भारतवासी-का कर्त्तव्य है कि वह तन, मन और धनसे इसकी सहायता करे। इसका आन्दोलन वैधमार्गोंसे यहाँ तक हो कि हमारी शिकायतें दूर करनेके लिये हमारी बृटिश गवर्नमेन्ट बाध्य हो। हमें कुछ विशेष कहना नहीं है क्योंकि हमारे सुपूज्य नेता लो० तिलक महोदयने अपने व्याख्यानोंके द्वारा इन सब बातोंको हम लोगोंके लिये स्पष्ट कर दिया है। तिलक महोदय वास्तवमें असाधारण पुरुष हैं। बाल्यकालसे ही उनके चरित्रमें एक विशेषता देखी जाती है। जब जब वे राष्ट्रीय आन्दोलनमें पड़े हैं और उसे एक विशेष स्वरूप उन्होंने दिया है तब तब नये संकटोंने उन्हें आ घेरा है। यह कहनाही होगा कि इन संकटों तथा अपने आप्त इष्टोंके दूषणोंको सहन कर राजकीय आन्दोलनकी गाड़ीको वे बराबर हाँकते रहे।

प्रस्तुत वर्तमान समय पर विचार करनेसे यह दिखाई देगा कि "होमरूल अथवा स्वराज्य" जब आन्दोलन का एक विषय हुआ उसी समय एक विपत्तिने उन्हें आ घेरा पर इस बार राष्ट्रके सुदैवसे लोकमान्य विपत्ति मुक्त हुए अर्थात् अंग्रेजी न्याय देवता ही इस महान् यशकी भागिनी अथवा जननी हुई।

अस्तु, इस पुस्तकके मूल लेखक श्रीयुत दा० वि० गोखले बी. ए. एल एल. बी. मंत्री स्वराज्य संघ, पूनाके हम लोग बहुत आभारी हैं जिन्होंने अपनी पुस्तकका अनुवाद हिन्दुस्तानी भाइयोंके लाभार्थ प्रकाशित करनेकी हमें सहर्ष आज्ञा दी। उसी प्रकार बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, संपादक नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी, और पं० विष्णु भास्कर केलकर एम० ए० तथा पं० नारायण राव सोमण ये तीन सज्जन विशेष धन्यवादके पात्र है जिन्होंने अनुवाद करनेमें अपना अमूल्य समय हमारे लिये व्यय किया है।

हम यह भी सविनय निवेदन करना चाहते हैं कि इस पुस्तकके प्रकाशनमें अति शीघ्रता हुई है और इस वजहसे कुछ अशुद्धियोंका रह जाना संभव है। अतएव हमारे विज्ञ पाठक इसके लिये हमें अवश्य क्षमा करेंगे।

हमने सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये स्वराज्य संबंधी छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित करनेका विचार किया है। किन्तु हमें इसमें सहायताकी बहुत आवश्यकता है। हमें आशा है कि यदि हमारे स्थायी ग्राहक एक एक और ग्राहक हमारे लिये बनादेंगे तो भी हमारा काम सहजहीमें हो जायगा।

भाद्रपद शुक्ल ५,
संवत् १९७४

विनीत
गंगाधर हरि खानवलकर
ग्रन्थ प्रकाशक समिति काशी।

वर्त्तमान अवस्थाके संबंधमें

लोकमान्य तिलकके विचार।

श्रीमान् संपादक केसरी—

इस समय परिस्थिति निराली है। ऐसे समयमें मेरे विषयमें यदि सरकारको कुछ शकाएँ हों तो वे दूर हो जायँ इसी गरजसे निम्नलिखित पत्र प्रकाशनार्थ आपके पास भेजता हूं। मेरे ही मकान पर अभी हालमें गणेशजीके उत्सवके संबंधमें मेरे मित्र जब इकट्ठा हुऐथे तब येही विचार मैंने प्रकट किये थे। किन्तु मैंने उन विचारोंका अधिक प्रचारित होना आवश्यक समझा है। अतएव यह पत्र मैं आपको लिख रहा हूं। दो महीने पहले जब कारावासके पश्चात् मै सकुशल पूना पहुंचा तब मेरे मित्र मेरा अभिनन्दन करनेके लिये आये। उस समय मैंने उनसे यह कहा था कि मेरी स्थिति ठीक वैसी ही हुई है जैसी कि अरण्यमें वर्षा घोर निद्रा कर फिर लौटे हुये रिपवान विंकलकी हुई थी। इसके अनन्तर मेरे बाद छः वर्ष जो जो बातें यहाँ हुई उनके विषयमें जानकारी हासिल करने और सब बात ध्यानमें लानेके लिये मुझे कई मौके मिले। इन बातोंके देखनेसे मै आपको निश्चयके साथ कह देता हूँ कि अखबार आदिके संबंधमें इतने कड़े प्रतिबंध होने पर भी भारत अपने अंतिम ध्येयकी ओर धीरे धीरे अग्रसर होगा। लार्ड मिंटो और मोर्लेके समयमें जो सुधार अमलमें लाये गये

उनसे मालूम होता है कि सरकारके ध्यानमें यह बात बैठ गई कि राज्य शासनमें फेरफार करना आवश्यक है। इन बातोंसे यह दिखाई दे रहा है कि प्रजा और अधिकारियोंमें विश्वास और दृढ हो रहा है और प्रजाके दुःख दूर करनेकी ओर अधिकारी ध्यान दे रहे हैं। सर्वसाधारणकी दृष्टिसे विचार करने पर यह एक तरहका लाभ ही प्रतीत होता है। यह लाभ यद्यपि अन्यान्य लाभोंसे भिन्न है तथापि मुझे दृढ आशा है कि अन्तमें इन राजकीय सुधारोंमें जो अच्छी बातें हैं वे बँधी रहेंगी और जिन्हें हम नापसद करते हैं वे दूर हो जायँगी। कई लोग मुझे इन बातोंके लिये आशावादी कहेंगे पर .जिन बातों पर मेरी श्रद्धा है उन्हीमेंसे यह भी एक है। मेरा यह दृढ मत है कि ऐसाही विश्वास, अपने देशके हितके लिये और सरकारकी सहायतामें प्रवृत्त होनेके लिये कारणीभूत होता है।

दूसरी एक बात उल्लेख योग्य है। मेरी उक्त अनुपस्थितिमें यहाँके और इगुलेण्डके पत्रोंमें-उदाहरणार्थ मि० चिरोलकी पुस्तकमें मेरे लेखों और वक्तृताओंका ऐसा अर्थ किया गया है कि मुझसे अत्याचारोंको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता मिली अथवा मैने जो बातें कीं वे हिन्दुस्तानकी अंग्रेजी सरकारको उलट पुलट देनेकी इच्छासे की ! हाँ, यह बात बड़ी शोचनीय है कि अपना बचाव करनेके लिये उस समय मैं.नागरिकके नाते यहाँ स्वतन्त्र न था। तथापि इस मौके पर मेरे ऊपर जो घृणित और निराधार आरोप किए गये हैं उनका हृदयसे निषेध करना मैं आवश्यक समझता हूं। राजकीय आन्दोलन करनेवाले और लोगोंकी तरह कुछ बातोंमें--कुछ

अशमें अन्तर्गत स्वराज्य व्यवस्थाके सम्बन्धमें सरकार और मुझमें कुछ खास मत भेद है। परन्तु इसी कारणसे मेरी वृत्ति अथवा मेरा कर्त्तव्य सरकारके संबंधमें दुषित भाव व्यक्त करता है, ऐसा कहना बिलकुल ही असमँजसता है। मेरा हेतु—अथवा मेरी इच्छा कभी ऐसी नहीं हुई थी। मैं इसी समय एक बार स्पष्टतया घोषित कर देता हूँ कि आयर्लैंडके होमरूलरोंकी तरह हमारे प्रयत्न वर्तमान शासनप्रणालीमें अवश्यक सुधार करनेके लिये होंगे, न कि राज्यको उलट देनेके लिये। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागोंमें जो अत्याचार हो रहे हैं उनसे मुझे चिढ है इतनाही नहीं किन्तु मेरा तो यह मत है कि ऐसे घृणित मार्गोंके अवलबनसे हमारे राजकीय उन्नतिका मार्ग और भी कष्टमय हो रहा है। व्यक्तिशः या सार्वजनिक—किसी भी दृष्टिसे इस प्रकारके कृत्य दोषार्ह है और इस बातको मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ।

अंग्रेजी राज्यकी केवल सुधरी हुई शासनप्रणालीसे भारतकी भिन्न भिन्न जातियोंका एकीकरण होकर इसमेंसे समय पाकर एक सयुक्त हिंदी राष्ट्र निर्मित्त होनेकी सम्भावना होनेसे लोग जो यह कहते हैं कि अंग्रेजी राज्यसे लाभ हो रहा है वह उनका कहना ठीक है। स्वातन्त्राप्रिय बृटिश जातिके सिवा यदि यहाँ किसी दूसरी जातिका शासन होता तो वह इस प्रकारका राष्ट्रीय उद्देश्य ध्यानमें रखकर उसे स्पष्ट करनेमें हमारी मदद देता या नही इसमें हमे शका है। हिन्दुस्तानके सबधमें आस्था रखने वाले पुरुषोंको ये और इसी तरह के दूसरे लाभ पूर्णतया अवगत

है। मेरा यह मत है कि अंग्रेजी बादशाही तख्तके प्रति राजभक्ति की हमारी भावनाओं और मनोवृत्तियोंको एकत्र कर व्यक्त करने के लिये वर्तमान अवसर बहुत ही लाभ दायक है।

आप लोग यह जानते ही हैं कि जर्मनीके बादशाहने कई सन्धिपत्रों और बारंबार दिये हुए राज्यखंडत्वके अभिवचनोंको तोड़कर एक शक्तिहीन राष्ट्रकी सरहदपर आक्रमण किया और उक्त राष्ट्रका संरक्षण करनेके लिये ही जर्मन बादशाहके विरुद्ध इङ्गलैंडको शस्त्र धारण करना पडा। मेरा यह दृढ़ मत है कि ऐसे समय हर एक भारतवासी—चाहे वह छोटा हो या बडा— अमीर हो या गरीब—का कर्त्तव्य है कि जहा तक सम्भव हो सरकारकी मदद करे और मेरी यह राय है कि इस विषयमें लोक मत जोरोंके साथ व्यक्त करनेके लिये और और स्थानोंकी तरह सब पक्ष और सब जातियों और वर्गोंके लोगोंकी एक सर्वसाधारण बृहत्सभा पूनेमें की जाय। ऐसी बातोंके लिये पुरानी बातोंके उदाहरणकी आवश्यकता नहीं होती, पर यदि किसीको उदाहरण चाहिये हो तो सन् १८७६-८० में अफगानिस्तानसे युद्ध आरंभ होनेके समय पूनामें जो सर्वसाधारण सभा हुई थी उसका हाल पढ़ें। इससे यही सिद्ध होता है कि सरकारके सबधमें हमारी भक्ति और उसको मदद करनेकी बुद्धि हममें नैसर्गिक और अटल है और ऐसे मौकेपर हम लोग अपना कर्त्तव्य और अपनी जवाबदेही राजभक्तिके साथ पहचानते हैं।

पूना
ता० २७-८-१४

भवदीय
बाल गंगाधर तिलक।

श्री न चिं केळकर

लोकमान्य तिलक

श्री. र. पां. करंदीकर
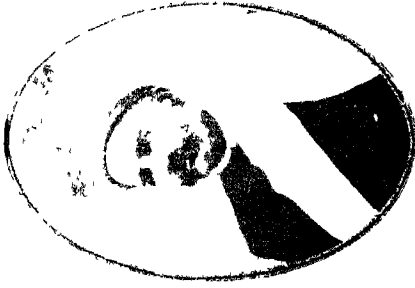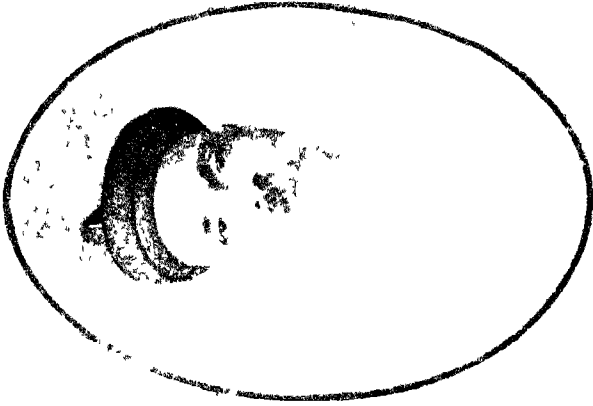
परिशिष्ट १

(सरकारके लघुलेखकोंने यह व्याख्यान जैसा शुद्ध या अशुद्ध लिखकर दिया था, उसका ज्योंका त्यों अनुवाद नीचे दिया जाता है।)

लो० बाल गंगाधर तिलकका व्याख्यान जो उन्होंने "होमरूल" पर बेलगांवमें दिया था।

ता० १ मई सन् १९१६

स्थान—१८ वीं प्रान्तिक परिषद का खेमा।

समय—संध्या ६ से ७-३० तक।

इतिहास—संशोधक मण्डलकी ओरसे जो सभा हुई थी, उसके उपरान्त तुरन्त निम्नलिखित व्याख्यान दिया गया था।

आरम्भमें माननीय डी. वी. बेलने सूचना की कि, मेरे मित्र पण्डित बाल गंगाधर तिलक 'होमरूल' विषयपर व्याख्यान देनेवाले हैं; अतः इस अवसरपर हमारी प्रांतिक परिषदके अध्यक्ष श्रीयुत दादा साहब खापर्डे अध्यक्ष-स्थान स्वीकार करें। श्रीयुक्त मासूरने इस सूचनाका अनुमोदन किया। अनन्तर दादा साहब खापर्डे तालियोंकी ध्वनिमें व्याख्यान देने उठे। आपने कहा-"हमारे सौभाग्यसे यह सुअवसर प्राप्त हुआ है कि स्वराज्य ऐसे विषय पर तिलक जैसे व्याख्याताका व्याख्यान होने वाला है और इसके साथ ही इस वर्ष जो स्वराज्य-संघ स्थापित होनेवाला है उसकी स्थापना भी इसी अवसर पर हो रही है। अतएव आप लोग कृपाकर

लोकमान्य तिलकका व्याख्यान ध्यान पूर्वक सुनें, उसपर मनन करें और उसे इस प्रकार हृदयंगम करें जिसमें आप स्वयं स्वराज्यसे सहानुभूति रखनेवाले, उसके लिये झगड़ने और उसकी चिन्ता करनेवाले और उसके सच्चे सेवक बन जायँ।

मनुष्य जिस विषयका सदा विचार करता रहता है उसीमें वह डूबा हुआ रहता है। भौंरेके सन्तति नहीं होती। परन्तु वह भिन्न जातिके कीड़ोंको पकड़ कर उन्हे ध्यानसे देखा करता है। इस तरह वह उनका ध्यान अपनी ओर खैंचलेता है और इसका परिणाम यह होता है कि वे कीडे अन्तमें भौंरे बन जाते हैं। इसी तरह आप भी इस विषयका अभ्यास करें—आपसे यही प्रार्थना करनेके लिये मुझे इस समय खड़ा होना पड़ा है। अब लोकमान्य तिलक अपना विषय विस्तारपूर्वक कहेंगे"। (cheers)

इसके बाद लो० तिलक तालियोंकी लगातार कड़कड़ाहटमें बोलने उठे। उन्होंने कहा :—

मुझसे जब आज यहां व्याख्यान देनेको कहा गया तो मैं बिलकुल न समझ सका कि मुझे किस विषय पर व्याख्यान देना होगा। मैं आपके सामने किसी भी विषयकी तैयारी करके नहीं खड़ा हुआ हूँ। मैं यहां परिषद्के कामसे ही आया था। मैं समझता हूँ कि इन दो चार दिनोंमें जिस विषयकी चर्चा होती रही है तथा कांग्रेसके पहले जो काम करनेके लिये यहां एक होमरूल लीग स्थापित की गई है आज आपको उसी विषयकी चार बातें बतला देना अयोग्य न होगा! अत. आजके व्याख्यानके लिये मै उसी विषयको चुनता हूँ।

स्वराज्यसे क्या मतलब है? इसके विषयमें बहुतोंकी कल्पना भ्रमात्मक है। कुछ इसे समझते ही नहीं और कुछ

समझते हुए भी उसका विपर्यास करते हैं। कई लोगोंको इसकी आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार इसके अनेक भेद हैं। अतः स्वराज्य किसे कहते हैं, हम उसे क्यों मांगते हैं, हम उसके योग्य हैं या नहीं, और जिनसे हमें स्वराज्य मांगना है उनसे किस ढंग से मांगना चाहिये; हमारे उद्योगकी कौनसी दिशा तथा उसमें हमारी कैसी नीति होनी चाहिये—आज मैं केवल इन्हीं बातोंके सम्बन्धमें आपसे चार सामान्य बातें कहूंगा; इसके अतिरिक्त किसी प्रकारका विशिष्ट विवेचन करनेको मैं इस समय तैयार नहीं हूँ। जो चार बातें मैं कहनेवाला हूं वे मेरे ही उद्योग और मेरे ही प्रयत्नके फल हैं सो बात नहीं है। स्वराज्यकी कल्पना बहुत पुरानी है। यह स्पष्ट है कि यह कल्पना उसी समय उत्पन्न होती है जब हम किसी ऐसे राज्य या शासनमें हों जिसे हम 'स्व' अर्थात् अपना न कह सकते हों। जब ऐसी स्थिति प्राप्त होती है तभी स्वराज्यकी आपेक्षा प्रकट होती है और तभी उसके लिये उद्योग भी आरम्भ किया जाता है। इस समय आप भी इसी स्थिति में हैं। आप पर शासन करनेवाले आपके धर्म, आपकी जाति, यहां तक कि आपके देशके भी नहीं हैं। अंग्रेज सरकारका शासन अच्छा है या बुरा, यह प्रश्न ही निराला है। स्वकीय और परकीयका प्रश्न भी भिन्न है। आरंभ हीमें दोनोंको एकमें मिला देना ठीक नहीं है। स्वकीय और परकीयका प्रश्न उपस्थित होनेपर इसे परकीय ही कहना पड़ेगा। भले या बुरे इस प्रश्नके उपस्थित होनेपर भला कहिये या बुरा। यदि बुरा कहिये तो उसमें कौनसा सुधार किया जाना चाहिये, यह प्रश्न अलग ही है। भला कहने पर यह देखना होगा कि उसमें कौनसी

ऐसी अनेकों बातें हैं जो उससे पहलेके राज्योंमें न थीं। ये भिन्न भिन्न दिया है। अतः प्रथमतः स्वराज्यकी आकांक्षा उत्पन्न होनेका कारण यह है कि पहले भारतवर्ष अनेक छोटे२ राज्योंमें विभक्त था—कहीं मुसलमानोंका शासन था तो कहीं राजपूतोंका, कहीं हिन्दुओंका था तो कहीं मराठोंका। ये स्वराज्य अच्छे थे या बुरे यह प्रश्न भिन्न है यह फिर भी कहूँगा। उसपर पीछेसे विचार करूंगा। ये सब (राज्य) नष्ट होकर भारतवर्षमें अंग्रेज सरकारका एक नियन्त्रितराज्य स्थापित हुआ। इन राज्योंके नष्ट होनेका इतिहास आज आपको बतलाना नहीं है। किस प्रकार ये नष्ट हुए यह भी बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। वह मेरा विषय नहीं है। वर्त्तमान राज्य व्यवस्थाके अनुसार भारतके राज्य कार्यका सञ्चालन थोड़से लोगोंके हाथमें होता है जिनकी शिक्षा इंग्लैडमें हुई है और जिन्होंने वहांके कालेजोंमें उत्तम प्रकारकी शिक्षा पाई है। राजाका पद केवल नामके लिये है। राजाके विषयमें आपके हृदयमें जो जो भावना उत्पन्न होती है, उसीको व्यक्त स्वरूप देनेसे वर्तमान समयके सम्राट्की भावना हो जाती है यह भावना अव्यक्त है। इस अव्यक्तको व्यक्त स्वरूप देनेसे राजा या सम्राट्की कल्पना होती है, पर वह स्वयं कारोबार की देख भाल नहीं करता। स्वराज्यका प्रश्न सम्राट्के सम्बन्धमें नहीं है और न इस अव्यक्त भावनाहीके सम्बन्धमें है इसे पहलेहीसे स्मरण रखना चाहिये। कोई भी देश हो उसमें राजा होना चाहिये; सब प्रकारकी व्यवस्था तथा देखभाल करनेवाला भी कोई मनुष्य होना चाहिये तथा उसमें किसी एक प्रकारकी शासन मर्यादा भी प्रचलित रहनी चाहिये।

अराजक राष्ट्रोंकी बात भिन्न है। ऐसे राष्ट्र कभी उन्नत नहीं हो सकते। जिस प्रकार घरमें व्यवस्था करनेवाला कोई एक आदमी होता है और ऐसे मनुष्यके न रहने पर बाहरके किसी दूसरे आदमीको ट्रस्टी Trustee बनाया जाता है, राज्यकी व्यवस्थाकी भी वही बात है। प्रत्येक देशमें उसका राजकाज चलाने वाली एक मण्डली तथा किसी एक प्रकारकी व्यवस्था होती है। हमें राजा चाहिये तथा राज्यव्यवस्था भी चाहिये। ये दोनों सिद्धांत इतिहासकी दृष्टिसे अबाधित हैं। जिस देशमें सुशासन न हो, जिस राज्यमें कोई राजा अथवा निरीक्षक मण्डली न हो उसके विषयमें महाभारतकी यह उक्ति प्रसिद्ध है कि "बुद्धिमान मनुष्य वहां एक क्षण भी न ठहरे। कौन जाने वहां कब जानसे हाथ धोना पड़ेगा, या कब अपना माल असबाब चोरों द्वारा लूटलिया जायगा—कब अपने घरपर डाका डाला जायगा या जला दिया जायगा।" गवर्नमेन्ट हमारे लिये आवश्यक है। कृतयुगके प्राचीन कालमें क्या क्या होता था इसके कहनेसे कोई मतलब नहीं। उस समयके मनुष्यों का राजाकी जरूरत न थी। उनके सब काम एक दूसरेकी भलाईका ध्यान रखकर होते थे। हमारे पुराणोंमें कई जगह कोई राजा न होनेका उल्लेख मिलता है। पर इतिहास कालमें भी किसी समय ऐसी स्थिति थी या नहीं इसपर यदि आप विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि इतिहासमें ऐसी स्थितिका पता नहीं चलता। कोई एक शासक अवश्य होना चाहिये, क्योंकि हर बार सब लोगको इकट्ठा कर शासन नहीं कर सकते। इसीलिये सदासे राजसत्ताके दो भाग होते आये हैं। एक परामर्श-दायी

मण्डल और एक कार्यकारी मण्डल। स्वराज्यके सम्बन्धमें जो प्रश्न भारतमें इस समय उपस्थित है वह ऊपरकी अव्यक्त कल्पनाके विषयमें नहीं हैं। यह प्रश्न जिन्हें हमपर राज्य करना है, जिनके नेतृत्वमें, जिनकी आज्ञासे, जिनके पथ-प्रदर्शनसे राज्यका सञ्चालन होता है उनके विषयमें भी नहीं है। यह बात निर्विवाद है कि हमें अपना कल्याण अंग्रजोंकी अधीनतामें, ब्रिटिश जातिके निरीक्षणमें, इसकी सहायता, सहानुभूति और चिन्तासे तथा इनके उच्च भावनाओंका लाभ उठाकर ही करना होगा। और मुझे इस विषयमें कुछ कहना नहीं है। (करतलध्वनि)

यह पहली बात हुई। आपलोग फिर भी दोनों बातों को भ्रमसे एक ही न समझ बैठें। ये दोनों बातें बिलकुल अलग २ हैं। हमें जो कुछ करना है वह किसी न किसीकी मददसे-इसीलिये कि आज हमारी स्थिति पंगुओंकी सी हो रही है—ही करना होगा। उन्हींके आश्रयमें रहकर हमें अपने कल्याणका साधन करना चाहिये, इस बात पर किसीका कोई विवाद नहीं है। ऐसा न होता तो आप कदापि अपनी स्वतन्त्रता न खो बैठते। अत. यदि आप यह कहें कि हमें अपना भाग्योदय बृटिश गवर्नमेन्ट और बृटिश शासनकी सहायतासे ही करना है तो इसमें कुछ लोगोंको जो और एक विलक्षणता नजर पड़ रही है वह एक बारगी दूर हो जायगी। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो इसमें किसी प्रकारका राजद्रोह नहीं है। आप अपना अभ्युदय अंग्रेजी गवर्नमेन्टकी सहायताके बिना—अंग्रेजी 'गवर्नमेन्ट' की जगह अव्यक्त अंग्रेजी गवर्नमेन्ट शब्दका व्यवहार करना अनुचित न होगा—अव्यक्त अंग्रेजी गवर्नमेन्टके अनुग्रह

तथा सहायतासे तो चाहते हैं, पर यहां दूसरा प्रश्न यह उठता है कि आखिर आप मांगते क्या हैं? इसका उत्तर भी उसी भेदमें है जो मैं आपको बतला चुका हूँ। सरकार चाहे अव्यक्तही हो तथापि जब वह व्यक्त होने लगती है तो उसके हाथों तथा उसके कार्योंसे राज्यकी व्यवस्था होती है। यह व्यक्त भाग अव्यक्त सरकारसे भिन्न है। इसकी भिन्नता वैसी ही है जैसी परब्रह्म और मायाकी। अव्यक्त शब्द मैंने वेदान्त से लिया है। निर्गुण तथा निराकार परब्रह्म भिन्न है और मायाके आवरणमें आजानेसे उसकी जो व्यक्तावस्था होती है वह अलग है। तथापि मायाके व्यवहार परिवर्त्तनशील है। क्षण २ में बदलते रहना ही मायाका लक्षण है। अव्यक्त सरकार स्थिर है पर व्यक्त सरकार क्षण २ में परिवर्त्तित होनेवाली है। इस समय जिस 'स्वराज्य' शब्दका व्यवहार किया जा रहा है वह व्यक्त सरकारसे सम्बन्ध रखता है। अव्यक्त सरकारके स्थाई रहते हुए क्षण २ में बदलने वाली व्यक्त सरकारमे किस प्रकारका परिवर्त्तन होनेसे हमारे राष्ट्रका कल्याण होगा, यही प्रश्न स्वराज्यका है। और इस स्वराज्यके प्रश्नके साथ २ यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि भारतवर्षमें जैसा शासन प्रचलित है वह किसके हाथोंमें होना चाहिये। अव्यक्त सरकार (अंग्रेज सरकारको) बदलनेकी हमारी इच्छा नहीं है। जो व्यक्त स्वरूप है, जिसके हाथोंसे अव्यक्त सरकारके कार्य किये जा रहे हैं उसीके हाथोंमें शासन प्रबन्ध न रहे, किसी औरको सौंपा जाय यही हमारा कथन है। वर्त्तमानमें जो स्वराज्य का आन्दोलन किया जा रहा है वह इसी समझसे कि इस समय यह प्रबन्ध जिनके हाथोंमें है उनसे लेकर किसी और-

के हाथोंमें आनेके पश्चात् उसकी सहायता या किसी और व्यक्त मूर्त्ति द्वारा किये जानेसे लोगोंके लिये हितकर हो।

दूसरा उदाहरण देनेके लिये कह सकते है कि सम्राट् इंग्लैंडमें रहते हैं। अंग्रेजी कानूनका एक नियम है—'King commits no wrong' राजा कभी अपराध नहीं करता। कारण यह कि उसकी सत्ता इसतरह मर्यादित की गई है कि जब कोई एक मंत्री जाकर उसे कुछ कहता है तभी उसको खबर होती है। प्रधान मंत्री अपने दायित्व पर सब काम करते है। आप लोगोंमेंसे बहुतोंने अंग्रेजी इतिहासका अध्ययन न किया हो, सो बात नहीं है। किन्तु उसमें यही सिद्धान्त मुख्य है। अंग्रेजी इतिहासमें जबसे इस सिद्धान्तका आविर्भाव हुआ तभीसे वहां राजद्रोहके अभियोगोंकी संख्या कम होने लगी और यहां इन अभियोगों की अधिकता होने लगी। राज्यका सञ्चालन करनेवाले भिन्न हैं और राजा भिन्न है। राजा एक ही रहता है, परन्तु मन्त्रिमण्डल हर पांचवें साल बदला करता है। उस समय यह कोई नहीं कहता कि मन्त्रिमण्डल बदलनेके विषयमें किसी प्रकारकी चर्चा करना राजद्रोह है। ऐसी बातें अंग्रेजी जनताके सामने नित्य ही हुआ करती हैं। राजाका मण्डल पांच वर्षमें बदले या दो वर्षमें, वह आपसमें चाहे जितना लड़े झगड़े, राजाको इससे क्या? वह निर्गुण परब्रह्म है: उसे इसका जरा भी ख्याल नहीं। तब इस समय भारतमें जो स्वराज्यका आन्दोलन हो रहा है वह इसी प्रकार प्रधान मण्डल बदलनेके विषयमें है। भारतका शासन कौन करता है? क्या सम्राट् (स्वयं) आकर करते हैं? बड़े बड़े अवसरों पर देवताओंकी भांति उसका जुलूस निका-

बना, जिसमें हम उसके प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित कर सकें क्या यह उसका काम है? फिर शासन-प्रबन्ध कौन करता है? इसे वही लोग करते हैं जो इस समय नौकर हैं अर्थात् स्टेट सेक्रेटरी, वाइसराय तथा गवर्नर, इनके मातहत कलेक्टर और तहसीलदार और सबके पीछे पुलीसके सिपाही। अमुक पुलीसका सिपाही बदलकर उसकी जगह दूसरा सिपाही भेजिये, यह कहना क्या राजद्रोह है? अमुक कलेक्टर हमें नापसन्द है, हमें दूसरा कलेक्टर चाहिये, क्या यह कहना राजद्रोह है? इस स्टेट-सेक्रेटरीको हटाकर दूसरेको उसका पद दीजिये, यह कहना क्या राजद्रोह है? कोई भी इसे राजद्रोह नहीं कहता है। पुलिसके सिपाहीके लिये जो नियम है वही स्टेट सेक्रेटरीके लिये भी है। स्टेट सेक्रेटरी जिस राजाका मन्त्री है, जिस राजाका नौकर है हमलोग उसी राजाकी प्रजा हैं। ऐसी अवस्थामें यदि कोई कहे कि इस स्टेट सेक्रेटरी या इस वाइसरायकी हमें आवश्यकता नहीं, फुलर साहबकी बंगालमें जरूरत नहीं—गवर्नरोंके सम्बन्धमें अनेक बार ऐसे प्रस्ताव किये जा चुके है—और इसका कारण भी दें तो आप कहेंगे कि इसका मस्तिष्क बिगड़ गया है और जो कारण इसने दिये हैं वे अच्छे और यथेष्ट नहीं है। पर इतिहास यह बात नहीं कहता कि उसका ऐसा कहना राजद्रोह फैलाना है। (करतल ध्वनि) हमारी मांगोंका सम्बन्ध दूसरे वर्गसे है, वह स्वराज्यसे सम्बन्ध रखता है। मेरे बातोंको अच्छी तरह ध्यानसे सुनिये। यदि आप वर्त्तमान राज्य व्यवस्था को सर्वथा उचित समझते हों तो मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है! आप कांग्रेस और कान्फरेंसोमें जाकर कहते

हैं—हमारा पटवारियान आदि हक छीन लिये गये ; जंगल विभागके सम्बन्धमें हम पर अत्याचार किया गया; आबकारी विभागकी बदौलत शराबका अधिक प्रचार हुआ; जैसी शिक्षा हमें मिलनी चाहिये वैसी नहीं मिलती आदि इन सबकी जड़ क्या है ? इसके कहदेने से ही क्या लाभ है ? आप उचित शिक्षा क्यों नहीं पाते ? आबकारी की दुकानें जहां आप नहीं चाहते वहाँ क्यों खोली जाती हैं ? जंगल विभागमें रक्षित जंगल तथा भिन्न प्रकारके जंगलोंके सम्बन्धमें नियम बनाये जाते है । ऐसा क्यों होता है ? कांग्रेसके सामने इसके बड़े बड़े लेख आते हैं । जूरी आपकी इच्छाके विरुद्ध क्यों बन्द की गई ? कर्नाटकमें आजतक कालेज क्यों स्थापित नहीं हुआ ? ये सब प्रश्न ऐसे हैं कि जिनका एक ही उत्तर है । आज हमारे विचार इस प्रकारके हो रहे हैं कि वहां कोई कालेज नहीं है अच्छा तो कलेक्टर या गवर्नरके पास प्रार्थना पत्र भेजा जाय. क्योंकि उन्हींके हाथोंमें अधिकार है । ये अधिकार आपके हाथोंमें होते, उनकी जगह आप अधिकारी होते अथवा उनका अधिकार लोक मतके सामने उत्तरदायी होता तो ये बातें न होतीं । इसके सिवा इसका दूसरा उत्तर नहीं हो सकता । यह सब इसी लिये होता है कि आप सत्ता-रहित हैं । यह सम्पूर्ण व्यवस्था यद्यपि आपहीके कल्याणके लिये की जाती है तथापि आपको उसके निर्णयका अधिकार नहीं दिया गया है । अतः हमारा मांगना एक छोटे बालकके समान है जो भूख लगने पर रोता है पर यह नहीं कह सकता कि उसे भूख लगी है । मां यह समझती है कि वह भूखा है या उसका पेट दर्द करता है । अनेक बार रोग कुछ और उपचार कुछ और ही होता है तथा इससमय आपकी भी

वैसी ही स्थिति है। आप पहलेसे यह बिलकुल नहीं समझते कि आपको किस बातकी जरूरत है या आपको किसमें अड़चन पड़ेगी?

जब इन बातोंको आप इतना समझने लगें तब आप स्वयं ही इन्हें बतलाने लगें। लेकिन इस समय आपकी स्थिति ऐसी है कि जो कुछ आप कहें उसके अनुसार काम करा लेनेकी शक्ति आपके हाथमें नहीं है। इसलिये क्या होता है? जो कुछ करना हो, जिस बातकी आवश्यकता हो—मान लीजिए कि घरमें कुआं खुदवाना हो तो उसके लिये भी कलेक्टर साहबसे प्रार्थना करनी पड़ती है। जंगलमें शेर मारना हो तो कलेक्टर साहबसे प्रार्थना कीजिए। घास नहीं मिलती जंगलकी लकड़ी नहीं मिलती, घास काटनेकी आज्ञा नहीं मिलती, तब कलेक्टर साहबके यहां अर्जी दीजिये। अर्थात् बिलकुल बेकारों और असहायोंकी सी स्थिति हो रही है। यह व्यवस्था हमें नहीं चाहिए, इससे अच्छी व्यवस्था चाहिए और वह अच्छी व्यवस्था स्वराज्य है। वही होमरूल है।

पहले पहल यह प्रश्न नहीं उठता। जिस प्रकार लड़का जब छोटा रहता है तब उसे कुछ मालूम नहीं होता, बड़े होने पर उसे सब बातें मालूम होने लगती है। तब वह यह समझने लगता है कि मेरे घरकी व्यवस्था मेरी सम्मति के अनुसार हो तो अच्छा हो। वही बात राष्ट्रकी भी है। जब वह इन बातोंका विवेचन करने लगेगा, विवेचन करनेकी शक्ति उसमें बढ़ेगी तभी यह प्रश्न उपस्थित होगा। हमारे यहां इस समय ऐसी ही अवस्था हो गई है। अवस्था विचार छोड़ दीजिए, अव्यक्त सरकारका विचार

भी छोड़ दीजिए, व्यक्त सरकारकी मर्यादामें ही आइए। तौभी यह अवस्था ऐसी है कि राजकार्य करनेवाले लोग विलायतसे ही कुछ विशेष नियमोंके अनुसार नियुक्त किए जाते हैं और उनकी नीति आपके सम्बन्धमें पहले ही से निश्चित बनी हुई रहती है। अब यह नियम चाहे अच्छे हों या बुरे। ये नियम अच्छे हो सकते हैं, खूब सुयंत्रित हो सकते हैं, व्यवस्थित हो सकते हैं, मै यह नहीं कहता कि खराब ही है। लेकिन दूसरोंकी व्यवस्था चाहे जितनी ही अच्छी क्यों न हो तौभी यह बात नहीं हो सकती कि जिन लोगोंको इस व्यवस्थाके करनेका अधिकार चाहिए उन लोगोंको (दूसरोंके द्वारा की हुई) वह व्यवस्था सदा पसन्द ही आवे। स्वराज्यका यही तत्व है। मैं यह नहीं कहता कि अधिकार मिल जांय तो हमारा चुना हुआ कलेक्टर वर्त्तमान कलेक्टरकी अपेक्षा अधिक अच्छा कार्य करे, सम्भव है कि न भी करे, या बुरा भी करे। इसे मैं मानता हूं लेकिन इन दोनोंमें भेद यही है कि हमारा नियुक्त किया हुआ कलेक्टर हमारा ही होता है और वह सदा इस बातका ध्यान रखता है कि हम किस तरह सन्तुष्ट रह सकते हैं। लेकिन जो पराया होता है वह यह समझता है कि जो बात हमारी समझमें अच्छी जान पड़ती है वह दूसरोंको समझमें भी अच्छी ही जान पड़ेगी। लोगोंकी बात सुननेकी क्या जरूरत है? मै इतना पढ़ा लिखा हूँ, मुझे इतनी तनख्वाह मिलती है, मुझमें इतनी लियाकत है, मैं जो कुछ करूँगा वह लोगोंके लिये अहितकर कैसे होगा। इसका उत्तर यह है कि तुममें इतनी घमंड है, इसी लिये तुमसे अहितकर काम होगा। (हँसी) जिसके देहमें चिकोटी काटी जाती है, उसे उसका जैसे

कोई अनुभव नहीं है, उसी तरह इसका कारण भी है। इस समय जो जो झगड़े उपस्थित हैं, उनपर यदि सूक्ष्म रीतिसे विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि इस समय जो शासन पद्धति प्रचलित है वह हमें नहीं चाहिए। यह बात नहीं है कि हमें राजाकी आवश्यकता नही है। यह भी नहीं कि हमें अंग्रेज सरकारकी जरूरत नहीं है, अथवा बादशाहकी जरूरत नहीं। जिस रीतिसे यह शासन-पद्धति होती है, उसमें हमें एक खास तरहका फरक चाहिए। और अगर वह फरक हो जाय तो अंग्रेजी सरकारके लिये उसमें कहींसे धोखा नहीं दिखाई देता। लेकिन ऐसे लोगोंको जिनका दृष्टिक्षेप हमसे निराला है उन्हें इसमें कुछ धोखा दिखाई देता है। क्योंकि वे ही लोग ऐसा कहते हैं (तालियां)। अब बहुतसे लोगोंका ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित हुआ है कि इस समय जो शासनपद्धति प्रचलित है, उस पद्धतिमें किस प्रकारका अन्तर होना चाहिए। हम जो सामान्य बातें चाहते है, कि अमुक गांवमेंसे शराबकी दूकान उठा दीजिए तो वह (अधिकारी) कहते हैं कि वह दूकान नहीं उठ सकती। चलिए, हो गया। अगर हम कहें कि नमकका कर कम कीजिए तो वे कहते हैं कि नमकके करसे जो आय होती है उसीपर हमारा ध्यान रहता है। अगर हम उसे कम कर देंगे तो हमारा उधरका काम कैसे चलेगा? पर जो व्यवस्था करता है उसीको ये सब बातें करनी पड़ती हैं। जब हम अपने घरकी व्यवस्था करने का अधिकार मांगते हैं, तब हम यह नहीं कहते कि आपको जो कुछ मिलता है वह सब हमें दे दीजिए, और उसमेंसे आप कुछ खर्च मत कीजिए। हमारा हम खर्च भी

करें और हम ही धन बटोरें। ये जो दो बातें हैं उनका संयुक्त उत्तरदायित्व हमारे ऊपर चाहिये। इस समय यही झगड़ा है। ब्युरॉक्रेसीके जो पराए लोग अधिकारीवर्गके लोग आते हैं वे कहते हैं कि हमारी मर्जी के मुताबिक काम करो और हम कहते हैं कि हमारी मर्जीके मुताबिक करो तभी ये सब दुःख दूर होंगे। आप जानते हैं कि कभी कभी छोटा लड़का अपने बापसे हठ करता है कि मैं तो २५) की टोपी लूंगा। लेकिन अगर वह खुद बापकी जगह पर होता तो इसमें संदेह ही है कि वह उस टोपीके लिये २५) खर्च करता या नहीं। बाप उस समय उसे टोपी लेनेसे मना करता है इसलिये उसे बुरा मालूम होता है। लेकिन उसे इसलिये बुरा मालूम होता है, कि यह बात उस समय उसकी समझमें नहीं आती। उसके हाथमें व्यवस्था नहीं होती इसी लिये उसे बुरा मालूम होता है। तब इस प्रकारकी राज्यव्यवस्थाका प्रचलित होना हिन्दुस्तानके लिये आवश्यक है। आज हमें यही चाहिये। आज यह बात मिल जाय तो बाकी की बातें आप ही आप हमारे हाथ आ जायेंगी। हम जो हजारों बातें मांगते हैं उन सबकी जड़ यही एक बात है। अगर यह यह कुंजी हमारे हाथमें आ जाय तो सिर्फ एकही नहीं बल्कि १०।१५ फाटक हम उसीसे खोल लेंगे। इस प्रकारका यह प्रश्न है। इसी प्रश्नकी ओर सब लोगोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये परसों यहां होमरूललीग स्थापित हुई है।

किसीको यह बात बुरी भी मालूम हो सकती है। मैं यह नहीं कहता कि यह किसीको बुरी नहीं मालूम होगी। सबको बुरी मालूम होती है। पहले कहा जा चुका है

कि अगर लड़का अनजान हो तो बाप मरते समय पंच मुकर्रर कर जाता है। वह पंच उसकी सारी जायजाद की देखभाल करते हैं। उससे कुछ फायदा भी होता है। यह बात नहीं है कि कुछ भी फायदा न हो। जब लड़का कुछ बड़ा होता है तब वह समझने लगता है कि इसमें मुझे कुछ अड़चन होती है। मुझे व्यवस्था करनेका अधिकार प्राप्त करना चाहिये। तब मैं इससे अच्छी व्यवस्था करूंगा। उसे इस बातका विश्वास होता है। यह बात नहीं है कि वह अच्छी ही व्यवस्था रख सके। अगर वह फजूल खर्ची होगा तो अपने बापकी सारी दौलत फूँक डालेगा। लेकिन वह इन बातोंको समझता है। आगे चल कर इन दोनोंमें विरोध न खड़ा हो इसलिये यह नियम बना दिया गया है कि जब लड़का २१ बरसका हो जाय तब ट्रस्टी उसकी देखभाल छोड़ दें और सब कुछ लड़केके सुपुर्द कर दें। यह जो बात व्यवस्थाकी है वही राष्ट्रके लिये भी ठीक उतरती है। जिस समय राष्ट्रके लोग सुशिक्षित हो जायँ और यह समझने लगें कि हमारी व्यवस्था किस प्रकार होनी चाहिये उस समय उनमें इस बातकी इच्छा उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है कि हमारे लिये जो काम पराए लोग करते हैं वे काम हमारे हाथमें आजायँ। लेकिन इतिहास अथवा राजकार्योंमें मजा यह है कि उसमें वह २१ बरस वाला नियम लागू नहीं है। यदि प्रथम कभी ऐसे नियमकी भी कल्पना की जा सके जो यह कहे कि सौ बरस तक तुमने इस राष्ट्रको शिक्षा दी अब तुम सब कारबार उसके हाथमें दो तो भी उसका पालन सम्भव नहीं है। यदि इसका पालन करना हो तो

उन्हें लोगोंको ही करा लेना चाहिए उन्हींका इसपर अधि-कार है। उस समय इस प्रकारकी व्यवस्था होनी चाहिए। पहले कुछ ऐसी प्रकारकी व्यवस्था थी। लेकिन आजकल यह व्यवस्था नहीं है। और हमारी इन सब माँगोंका हम लोगोंको जो दुःख होता है, जो त्रुटियां हैं, राजकार्योंमें हम लोगोंको जो असुविधाएं दिखाई देती है, उन सबका मूल इसीमें है। और प्रथम इस मूलका पुनरुत्थान करके उसके लिये जो उपाय बनाए गए हैं, उसको होमरूल कहते हैं। उसीका नाम स्वराज्य है। संक्षेपमें यह कि अपने सम्बन्धकी व्यवस्था अपने हाथमें रखनेकी माँग ही स्वराज्य की मांग है। इसके विरुद्ध इस समय भी बहुतसे लोगोंका आक्षेप है। मैंने जो व्याख्याकी है वह केवल स्पष्ट करनेके लिये की है, दूसरे पक्षके लोग सदा इसका उलटा अर्थ करते हैं। मैंने जो कुछ इस समय कहा है, तार्किक दृष्टिसे यदि उसमें कोई भूल न हो तो उस समय तक इसमें कोई दोष नहीं दिखलाया जा सकता जबतक कि इसके किसी अंशका उलटा अर्थ न किया जाय, इसलिये लोग इसमें दोष दिखलाना चाहते हैं। वे इनमेंसे कुछ वाक्योंका उलटा पलटा अर्थ करके कहते हैं कि यह बात ऐसी नहीं है, वैसी है, और तब उसका नाम रखते हैं। जो बातें हम लोग कभी मांगते ही नहीं उनको हमपर लादना हमारी निन्दा करना और एक प्रकारसे लोगोंमें हमारा उपहास करना यह कुछ समझदार लोगोंका काम नहीं है। इससे अधिक मैं और क्या कहूँ। (तालियां) अगर तुम लोगोंमेंसे भी किसीकी समझमें ऐसी भूल हो तो उसे दूर कर दो। और इस बातका अच्छी तरह ध्यान रक्खो कि

जो कुछ मैं कहता हूँ वह सुसंमत है। यह तर्क शास्त्रके अनुकूल है। यह इतिहासके आधार पर है। मैंने जो यह कहा है कि राजासे मतलब अव्यक्त राजा या सरकारसे है, उसमें किसी प्रकारका अपराध नहीं है। बीचमें देवता होते हैं। अनेक अवसरों पर परमेश्वर क्रुद्ध नहीं होता, बीचके बीच ही में देवता क्रुद्ध होते हैं। उनकी व्यवस्था करनी पड़ती है। इस सम्बन्धमें समझनेमें अगर कोई भूल हुई हो तो उसे निकाल दीजिये। उसीके लिये मैंने इतना कहा है।

अब मैं आप लोगोंको उसका स्वरूप बतलाता हूँ और इसके भी पहले मैं इस प्रश्नका भी थोड़ा बहुत विचार करता हूँ कि हम लोग इस प्रकारके राजकार्यके योग्य हैं या नहीं। अभी मैंने पंच और उसके आधीनस्थ वॉर्डका उदाहरण दिया है। उस वॉर्डमें प्रायः ऐसा होता है कि जो यह कहता है कि यह व्यवस्था दूसरेके हाथमें न जाय, ज्यों ज्यों लड़का बड़ा होने लगता है, त्यों त्यों वह रिपोर्ट भेजने लगता है कि लड़केका दिमाग खराब हो चला है। दूसरा कहता है, वह बिलकुल पागल तो नहीं हो गया है पर आधा पागल मालूम होता है। जिसमें कि वॉर्डके हाथमें और भी दो बरस तक व्यवस्था रहे। तीसरा कहता है, तुम उसके हाथमें अधिकार दे दो, मगर यह जानते हो कि उसे कई बुरी आदतें पड़ गई हैं? उसके सम्बन्धमें वे इसी तरहकी १०–५ बातें कहते हैं। इसके बाद क्या होता है? लोग उसे अदालतमें ले जाते हैं और वहाँसे निश्चय करा लेते है कि वह पागल हो गया है। इसी तरहकी बातें हमसे यहां भी होने लग गई हैं। लोगोंके हाथोंमें

अधिकार देना राजकार्यका उत्कृष्ट तत्व है। इसके सम्बन्धमें कोई कुछ नहीं कहता, क्योंकि जो लोग यहां अधिकारी हैं उनके देशमें यही प्रथा प्रचलित है। वहां जाने पर उन्हें इसी तत्वका प्रतिपालन करना पड़ता है। तब यह कोई नहीं कहता कि इतिहासका यह तत्व बुरा है। इसमें बुराई क्या है? वे यह बात स्पष्ट रूपसे कहते हैं कि भारतवासी अभी स्वराज्यके पात्र नहीं है (हँसी) और हम लोगोंमेंसे कुछ लोग ऐसे हैं जो पंचतंत्रमें कहे हुए "त्रयाणां धूर्त्तानाम्" की तरहके है। उनकी कहानी इस तरह पर है। एक बार एक देहाती सिर पर एक भेड़ी लिए आता था। एक धूर्त्तने उससे कहा कि तुम्हारे सिर पर बकरी है। दूसरेने कहा तुम्हारे सिरपर कुत्ता है। तीसरेने एक तीसरी ही बात कही। इसपर उसने उस भेड़ीको उतार दिया। वे तीनों धूर्त्त उस भेड़ीको लेकर चल दिए। उसीकी तरह हमारी भी स्थिति हो रही है। यह मनुष्य स्वभावकी बात है। इसी तरहके कुछ लोग हममें भी हैं। हमलोग क्यों पात्र नहीं हैं? इसी लिये कि हममें पात्रता नहीं लाई गई है। हम लोगोंने ऐसा काम नहीं किया है। हमारे माँ-बापने भी नहीं किया है। हम लोगोंको कभी ऐसे अधिकार नहीं मिले। लेकिन सरकारने तुम्हें कौंसिलमें तो कुछ अधिकार दिए है। मि० सिंह, चौबल प्रभृति लोग कौन्सिलमें हैं। दूसरे स्थानोंकी एकज़ीक्युटिव कौन्सिलोंमें भी चुने हुए लोग है। ये लोग जिस समय चुने गए थे, तब उनमेंसे क्या कभी किसीने यह भी कहा था कि हम पात्र नहीं हैं, हमें यह जगह मत दो? किसीने भी नहीं कहा था। (तालियां) तब हमारी सभामें

आकरके सब बातें कहनेसे क्या फायदा? जिस समय ब्युरॉ-क्रसी इन्हें कोई भारी अधिकार देने लगे उस समय यदि ये लोग उठ कर खड़े हों और कहें कि "यह अधिकार हमें मत दो हम इसके पात्र नहीं हैं। हमारे यहांका श्राद्ध ब्राह्मण लोग ही आकर करायें, हम लोगोंसे वह नहीं हो सकता" तब मैं समझूँगा कि हां, वे लोग ठीक कर रहे हैं। मेरी समझमें जो लोग किसीकी नाराजगीका खयाल रखकर ऐसी बातें कहते है और इस प्रकारके कारण दिखलाते हैं वे अपने दुर्बल स्वभावका प्रदर्शन करते हैं। (तालियाँ) हम लोग क्यों पात्र नहीं हैं? क्या हमें नाक नहीं है? आँखें नहीं है? कान नहीं हैं? बुद्धि नहीं है? लिखना नहीं आता है? पढ़ना नहीं आता है? घोड़े पर बैठना नहीं आता है? हम क्यों पात्र नहीं हैं? शेक्सपीयरके एक नाटकमें एक यहूदीने जिस प्रकार पूछा है, उसी प्रकार मैं भी आपसे पूछता हूँ कि हममें क्या नहीं है? तुमने काम नहीं किया है। हमें काम मिला ही नहीं तो हम करें कहाँसे? (तालियां) क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि तुमने काम दिया और हमने नहीं किया? उस समय तो किसीने नहीं कहा कि हम अयोग्य हैं। हमें मत नियुक्त करो। तुम उन्हें नियुक्त करते हो, उनसे काम लेते हो और पीछेसे सरकारी नियमोंमें यह भी कहा जाता है He has done his duty and so on इसके अतिरिक्त यह भी पूछा जा सकता है कि २१ बरसकी उमरका जो आदमी तुम विलायतसे लाते हो, क्या उसे पहले ही से पूरा काम करना आता है? उसे क्या करना आता है? उसे अनुभव कहाँ रहता है? वह यहां आते ही Assistant Collector

हो जाता है, और मामलतदार चाहे ६० बरसका भी क्यों न हो, पर वह उसका अफसर हो जाता है। कहां २१ बरसका कलेक्टर? (तालियां) ६० बरसका अनुभव कोई चीज ही नहीं, है? २१ बरसका आदमी आता है, और तुमपर हुकुम चलाने लगता है। वह साठ बरसके मामलेदारको प्रायः अपने सामने खड़ा ही रखता है; बैठनेके लिये कुरसी तक नहीं देता। और उस बेचारेको १५०) २००) ४००) लेना होता है, इसलिये उसे हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ा रहना पड़ता है। (तालियां) कभी किसीने इस बातका भी विचार किया है कि साहब बहादुरको अनुभव कैसे होगा, वह पात्र कैसे होंगे और यह गाड़ी कैसे चलेगी? अगर यह बात ठीक होती कि हिन्दुस्तानके लोग स्वराज्य के पात्र नहीं है, वे अपने राज्यका अच्छी तरह बंदोबस्त नहीं कर सकते तो पुराने जमानेमें इस देशमें हिन्दुओं और मुसलमानोंने कभी राज्य न किया होता। इस देशमें पहले अपने ही राज्यके व्यवस्था करनेवाले लोग थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि अंग्रेजी सरकारके आनेके पहले यहां कुछ न कुछ व्यवस्था अवश्य थी, सब जगह अंधाधुंधी नहीं थी। एक आदमी दूसरे को मार नहीं डालता था। जब ऐसी अवस्था थी तब यह कैसे कहा जाता है कि ये लोग पात्र नहीं हैं? आजकल शास्त्रों की वृद्धि हुई है, जानकारी बढ़ी है और अनुभवका एक जगह संग्रह हुआ है। इसलिये पहलेकी अपेक्षा अब हमको और भी स्वतंत्रता चाहिए, और हम लोगोंको अधिक पात्र होना चाहिए। सो तो होता नहीं, उलटे कहा जाता है कि हम लोग पात्र नहीं हैं। यह कहना बड़ी भारी

भूल है कि पहले हममें जो कुछ था उसे जाने दो। तुम्हारा यह कहना है कि "तुम्हें हम देना नहीं चाहते" ठीक है। इसके बदलेमें यह मत कहो कि तुम पात्र नहीं हो। जिसमें हमें यह तो अच्छी तरह मालूम हो जाय कि तुम हमें देना नहीं चाहते। हम लोगोंको स्वराज्य मिलेगा लेकिन वह हम लोगोंको क्यों नहीं मिलता? परियायसे कहा जाता है कि हम लोग उसके पात्र नहीं है। तुम लोगोंको सिखानेके लिये हम लोग यहां आए हैं। हम यह बात मानते है। लेकिन आप कितने दिनों तक सिखलाते रहोगे (हँसी) एक पीढ़ी, दो पीढ़ी, तीन पीढ़ी। कहीं इसका ठिकाना भी है? कि सदा हम तुम्हारे ही आधीन रहेंगे। (तालियां) कुछ सीमा बांध दो। तुम हमें सिखलानेके लिए आए हो। जिस समय हम लोग लड़कोंके लिये घरमें शिक्षक नियत करते हैं, उस समय उससे पहले पूँछ लेते है कि तुम दस बरसमें, बीस बरसमें, पचीस बरसमें, कितने दिनोंमें लड़केको सिखलाओगे? अगर हमारे अनुमानसे उसके दो चार महीने अधिक बतलाये। छः महीनेमें लड़केका जितना अभ्यास हो जाना चाहिए उतनेके लिये यदि उसने साल भरका समय बतलाया, तो हम उससे कह देते हैं कि तुम किसी कामके आदमी नहीं हो, जाओ हम दूसरा शिक्षक रख लेगें। (तालियां) इस प्रकार लोगों पर—उन सब लोगों पर जिनकी शिक्षा इन अधिकारियोंके हाथमें है, जिन्हें सुधारना जिन अधिकारियोंका कर्त्तव्य है, वह कर्त्तव्य पालन करना तो एक ओर रहा, प्रयत्न होता है दूसरी ओर। कहते हैं कि हम चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, इन लोगोंका इस कामके लिये तैयार हो सकना

ही असम्भव है ....
तुम्हारे सरीखे आदमी, तुम्हारे जैसे बुद्धिमान्, तुम उन्हें काम पर लगाते हो, उनसे काम लेते हो और यह बात भी नहीं है कि उनपर सख्ती कम करते हो। (खालसा)* मुल्कोंमें क्या हो रहा है? व्यवस्था कुछ रुकी हुई नहीं है। मैसूरमें कौनसा काम रुका पड़ा है? कौन लोग काम करते है? मैसूरके राजा हिन्दू, मन्त्री हिन्दू, प्रजा हिन्दू और नीचेके अधिकारी भी हिन्दू ही है। जब वे मैसूर जैसा बड़ा राज्य चला लेते है तब मैसूरके बाहर दो जिलों में कहा जाता है कि इन लोगोंसे काम नहीं चल सकता। (हँसी और तालियां) मैसूरमें छः जिले है, उनमें छः पात्र है और आठ पात्र नहीं हैं, बस इसी प्रकारकी उनकी बातें है। हम लोगोंमें निःस्सन्देह पात्रता है। (तालियां) अब चाहे किसी कारणसे तुम उसे कबूल करो और चाहे न करो। क्या यह सिद्ध करनेके लिये प्रमाण है कि हममें पात्रता है? देशी रजवाड़ोंका हाल मैंने बतलाया है। दूसरा प्रमाण और देता हूँ। आप दस वर्ष तक जरा अलग रहें और तब देखें कि सब काम चलता है या नहीं। (तालियां और हँसी) अगर न चले तो दस बरस बाद फिर सब अपने अधिकारमें ले लीजिएगा। (तालियां) आपको अधिकार है।..................स्वराज्य नहीं, स्वराज्य नहीं के माने क्या है? हम क्या कहते हैं? क्या हम यह कहते हैं कि अंग्रेजी सरकारको हटा दो? लेकिन मैं यह पूछता हूँ कि सिविल सर्वेन्टसवाले कारबार चलावें तब बादशाहको क्या और हमारे बेलवी साहब चलावें तब

---

* यहां तात्पर्य देशी रियासतोंसे है।

क्या ? (तालियां) क्या इसमें बादशाहका कोई नुकसान है ? वह राज्य कायम ही है, वह बादशाह कायम ही है। फरक यही होगा कि पहले उसके पास जो गोरा नौकर था, उसकी जगह अब काला होगा। (तालियां) तब यह विरोध कौन करता है ? जो लोग अधिकारारूढ़ हैं, वही यह विरोध करते है। इसमें बादशाहकी ओरसे विरोध नहीं होता। बादशाहकी दृष्टिसे इसमें कोई अराज-कत्व या राजनिष्ठाका अभाव नहीं है, राजद्रोह भी नहीं है। राजद्रोहका मतलब है राजाका द्रोह। लेकिन राजाके माने क्या सिपाही है ? (हँसी) मैंने पहले ही कह दिया है कि यह भेद पहले से ही करना चाहिए। अगर कल आप यह कहे कि पुलिसके सिपाहीको निकालो तो क्या इसमें राजद्रोह हो जायगा ? पुलिसके सिपाही ऐसा ही समझते हैं। (हँसी) इसी तरह जरा और ऊपर बढ़िये तो आपको मालूम हो जायगा कि जो कुछ आप मांगते हैं वह ठीक है, उचित है, न्याय्य है, मनुष्य स्वभावके अनुसार है। अन्य राष्ट्रोंने भी वही किया है। सिर्फ हमारे यहां ही नहीं हुआ है। स्वराज्य, स्वराज्य, स्वराज्यके माने क्या ? यह नहीं कि तुम्हें अंगरेजी राज्य नहीं चाहिए। इसकी जड़में ही भूल है। किसी न किसीका कुछ न कुछ उसमें हेतु है। तुम्हें फँसानेमें ही जिनका हित है वे ही लोग ऐसी बातें कहते हैं। उनकी बातोंपर जरा भी ध्यान मत दो। यदि तुम यह समझते हो कि हम भी और आदमियोंकी तरह आदमी ही हैं, तो विलायत जानेपर उनके बुद्धिकी परीक्षा होती है। उसमें हमलोग बढ़ चढ़कर निकलते है। तब फिर क्या कहा जाता है ?

तुम्हारी बुद्धि तो अच्छी है, तुममें शील, धैर्यादि गुण नहीं हैं, उनके जैसा तुम्हारा स्वभाव नहीं है। मैं इस बातको थोड़ी देरके लिये मान लेता हूं। लेकिन यह बात नहीं है कि ये सब गुण आ भी न सकते हों। (हँसी) जिनका जन्म सेवा करनेमें ही गया उनका स्वभाव किस तरह ऐसा हो जायगा? अगर यह कहा जाय कि जिसने २५ वर्ष तक मुंशीगीरीका काम किया, साहबके बतलाए हुए हुकुम लिखे, और उस पर साहबके दस्तखत कराकर भेजे और ३०–४० बरसतक उसकी यही आदत पड़ती गई तो इसमें सन्देह नहीं कि यदि पहले पहल हमें कोई और काम कहा जायगा तो उसे करनेमें अड़चन पड़ेगी। पर हां, यह कभी नहीं कहा जा सकता कि ऐसे लोग जिस पद्धतिसे काम अभी करते है उस पद्धतिका अंत हो जानेपर आगेकी पीढ़ी भी तैयार नहीं होगी। इसलिये मेरी समझमें हम लोग स्वराज्यके पात्र हैं। अब मैं आपको थोड़ेमें यह बतलाउँगा कि हम लोग क्या प्राप्त करना चाहते है और हम लोगोंको मांगना क्या चाहिए? और तब मै अपना भाषण समाप्त करूंगा। आप लोग यह जानते है कि हिन्दुस्थानका राजकार्य कैसा है। लेकिन उसमें बतलानेकी बात यह है कि वह एक विशिष्ट नियमके अनुसार होता है। उसके नियम निर्धारित है। चाहे स्टेट् सेक्रेटरीके अधिकार हों और चाहे गवर्नर जनरलके अधिकार, उसमें पद्धतिके तीन बड़े भाग हैं। विलायतमें स्टेट् सेक्रेटरी साहब हैं। हिन्दुस्थानमें दिल्लीमें गवर्नर जनरल है। इनके नीचे इलाकोंमें एक एक गवर्नर हैं। इनके नीचेके कर्मचारियोंको अभी जाने दीजिए। लेकिन बड़ी व्यवस्था इन्हीं तीन प्रकारकी

है। अब यदि उसमें हर एकके विषयमें विचार किया जाय तो स्टेट् सेक्रेटरीको कौन नियुक्त करता है? हम नहीं करते। यह जो रचना हुई है वह कम्पनी सरकारके सिद्धान्त पर हुई है। जिस समय इस देशमें ईस्ट इन्डिया कम्पनीका राज्य था उस समय सब काम व्यापारी नीतिपर होता था, इसी बातकी ओर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता था कि कम्पनीके हिस्सेदारोंको सबसे अधिक मुनाफा कैसे मिले। कम्पनीके जो डाइरेक्टर होते थे वे आजकलके स्टेट् सेक्रेटरीकी जगहपर रहते थे।

आप कह सकते है कि सारा राज्य चलानेके लिये यह एक प्रकारका ठेका दिया हुआ था। पेशवाओंके समयमें मामलतदारी ठेकेपर दी जाती थी। उस समयके सरकारी कानूनोंके अनुसार भारतका शासन मानो ईस्ट-इंडिया कंपनीका व्यापार था। उससे जितना लाभ हो सके, उठाया जाय। कंपनीके डाइरेक्टर विलायत में रहते थे। उनका ध्यान सदा इस बातकी ओर रहता था कि डाइरेक्टरों अर्थात् हिस्सेदारोंको कितना नफा मिलना चाहिये। इधर गवर्नर जनरल के पास पत्र आता था कि इस साल हमें इतना नफा मिलना चाहिए। इतनी आमदनी करके हमारे पास भेजो। शासन की यह व्यवस्था थी कि लोगोंका उसमें हित नहीं था। ग्वाले और उसकी गऊ का हिसाब था। गौ दूध नहीं देती तो वह कहता है कि पानी मिला-कर उसे पूरा करो। वही हाल हिन्दुस्तानका था। आगे चलकर वादविवाद से यह सिद्ध हुआ है कि यह शासन-पद्धति ठीक नहीं है। और जिस समय यहांका शासन महाराणी विक्टोरियाने, या यों कहिये कि पार्लिमेन्टने अपने

हाथमें लिया उस समय उन्हें भी यह व्यापारिक पद्धति पसंद नहीं आई ! उन्होंने यहाँका राज्य-प्रबंध अपने हाथमें ले लिया, यह एक बात हुई । और यह राज्य-पद्धति उसी व्यापारिक नीतिके अनुसार चलाई गई है जिसमें विलायतमें डाइरेक्टर रहते थे और उनके नौकर यहाँ काम करते थे । डाइरेक्टरोंकी जगह पर स्टेट् सेक्रेटरी अभी है। उनका जो गवर्नर होता था उनकी जगह पर गवर्नर जनरल हैं । और तब क्या हुआ ? प्रबंध राजा ने अथवा पार्लिमेन्टने अपने हाथमें लिया लेकिन नौकरोंकी जो प्रणाली थी यह ज्यों की त्यों बनी रही । यह बात सन् १८५८ वाले विद्रोह के बाद हुई । तब से आज तक बराबर उसी कंपनीकी नीति पर बने हुए नियमों और अवस्था के अनुसार हिंदुस्तानका कारबार चल रहा है। यदि राज्य-प्रबंध वास्तवमे राजाके हाथमें गया था तो उस दशामें कंपनीका यह स्वरूप भी जाना चाहिये था । वह राजा है और हम उनकी प्रजा हैं । प्रजाका कल्याण करना राजाका धर्म है और उस धर्मके अनुसार जो नियम हों उनके अनुसार व्यवस्था होनी चाहिए। लेकिन यह व्यवस्था ऐसी हुई कि डाइरेक्टर गए और उनकी जगह पर स्टेट् सेक्रेटरी आए। हिंदुस्तानमें कितना धन खर्च होना चाहिए और कौनसा कर लगना चाहिए, यह कौन तय करेगा ? स्टेट् सेक्रेटरी। गवर्नर जनरलके हाथ में यह अधिकार नहीं रक्खे गए हैं। यह मुख्य अधिकारी हैं। इनके नीचे गवर्नर नौकर हैं । और उनके नीचे दूसरे नौकर है और सब कारबार उन्हीं स्टेट् सेक्रेटरीकी संमति, विचार और सलाहसे होना चाहिए। यही आज·

कबका सिद्धांत है। आगे क्या हुआ? शासन-प्रबंध महारानी विक्टोरियाके हाथमें चले जाने पर यद्यपि उन्होंने बड़ा भारी घोषणा-पत्र निकाला पर तो भी उस घोषणा-पत्रके सिद्धांतपर शासन नहीं हुआ। राजकीय सिद्धांत वही व्यापारी कम्पनीके सिद्धान्त पर और राजकीय व्यवस्था भी उसी कम्पनीके सिद्धान्त पर और घोषणा-पत्र बीचके बीचहीमें व्यर्थ। (हँसी और तालियां) ऐसी अवस्था हुई। उस समय यह बात हम लोगोंको मालूम नहीं हुई। मैं समझता हूँ कि यदि उस समय आजकलके बराबर शिक्षाका प्रचार होता तो लोगों ने यह अवश्य कहा होता कि स्वयं महारानीने राज्य-सूत्र अपने हाथमें लिया है इसीलिये राज्यकी व्यवस्था प्रजाके हितकी होनी चाहिए। कंपनीने जो (व्यवस्था) की वह केवल अपने लाभके लिये की थी। उस समय हम लोगोंने यही कहा होता कि उन सिद्धांतोंमें, उन व्यवस्थाओंमें अंतर होना चाहिये। लोगोंने बहुत वर्षों तक यह झगड़ा चलाया। यदि बहुत ही संक्षेपमें कहा जाय तो भी दादाभाई नौरोजी अभी तक एक ऐसे आदमी जीवित* हैं जिन्होंने यह व्यवस्था देखीथी और उनकी त्रुटियां बतलाई थीं। उन्होंने इस कार्यका उपक्रम किया था। क्या उपक्रम किया? उन्होंने कहा कि कम्पनीकी प्रणाली और इस प्रणालीमें क्या अन्तर है? हमें तो कुछ भी अन्तर दिखाई नहीं देता। इनमें जितने नियम बने हैं सब कम्पनीकी नीति पर। इनमें लोगोंका क्या कुछ भी फायदा है? तब ये व्यवस्थापक सभायें (कौन्सिलें)

---

* शोक की मि० दादाभाई नौरोजी अब संसारमें नहीं रहे।

निकलीं। वह भी ऐसी कि जिनमें गवर्नर जनरल ही हम लोगोंको नियुक्त करें। पहले लोगोंके चुननेका अधिकार नहीं था। धीरे २ म्युनिसिपालिटियोंमें तुम्हारे काम करने वाले घुसे। व्यवस्थापक सभाएँ तो हो गई, पर अन्तिम कुंजी अब भी उन्हींके हाथमें है। व्यवस्थापक सभाओंमें वादविवाद कीजिए, वादविवाद करनेका आपको पूरा अधिकार है। यह धन इस काममें खर्च हो इसके लिये वादविवाद कीजिए, खर्च होगा या नहीं, यह हम तै करेंगे। आप अपने मुहँ और मनसे चाहे जितना काम कीजिये इसमें हमारा कोई हरज नहीं है। रातभर जागकर अपनी स्पीचें तैयार कीजिए, अन्य समाचार पत्रोंके बदलेमें हम उसे बंबई गजेटमें छाप देंगे। बस इतना ही फरक है। इसमें मिला कुछ भी नहीं? मिलनेकी आशा दिखाई गई है। महाभारतमें एक श्लोक है। उसमें कहा गया है—"आशां कालवतीं कुर्यात्" अधिकार तुम्हें दिए जायेंगे, लेकिन जब तुम उसके पात्र हो जाओगे तब। हम हिंदुस्तानमें नहीं रहना चाहते। जहां तुम तैयार हुए वहां हम यह तुम्हारी थाती तुम्हारे सुपुर्द करके स्टीमरपर बैठके विलायत चले जाएँगे (तालियां)। इसके लिये कुछ समय निश्चित होना चाहिए। दो वर्षमें देंगे, दस वर्षमें देंगे। आगे चलकर ऐसा समय आया कि—"कालं विघ्नेन योजयेत"। दस वर्ष कहे गए थे, लेकिन ये दस वर्ष बड़े खराब बीते, इसलिये उन सबको बढ़ाकर पंद्रह करना पड़ा। 'आशां कालां विघ्नेन योजयेत्' विघ्न आए। तुम्हींने विघ्न डाले होंगे। हमने तो नहीं डाले। हम तो अच्छे समयकी प्रतीक्षा करते थे। अब उसमें कुछ और बहाना मिलना

चाहिए। उन्हें बहाना मिला। बहाना कैसे मिला? उसे बहाना ही नहीं कह सकते। इसलिये कोई और बहाना निकाला। यह एक प्रकारकी नीति है। जब तुम्हें देना ही नहीं है तब कहते क्यों हो? यह बात नहीं है कि ये सब बातें आज कलके नीति-शास्त्रके और राजकीय ग्रंथोंमें लिखी हों। पुरानी परंपरा चली आई है! यह ब्यूरॉक्रेसी बराबर इसी तरह हमें टाल रही है। पिछले पांच पचास बरसोंसे स्टेट सेक्रेटरी और गवर्नर जनरल तक इसी तरह टालते आ रहे है। जहां तुमने जरासी गड़बड़ की तहां हम कल ही पांचकी जगह छ. मेंबर कर देंगे। लेकिन उन पांचके छः हो जानेसे हमारा क्या लाभ? खाली हममेंसे एकाध और आदमीको वहां व्यर्थ चार दिन गवाने पड़ेंगे (तालियां) इसके सिवा उसमें और कोई लाभ नहीं है। अगर तुम छः के बारेमें भी झगड़ो तो हम आठ कर देंगे। और उनके जवाबमें अगर जरूरत होगी तो हम अपने दससे बारह कर लेंगे। (हँसी और तालियाँ) लेकिन इस तरह कोई नतीजा नहीं निकल सकता। यह बात अच्छी तरह लोगोंकी समझमें आ-चुकी है। तुम्हें जो कुछ अधिकार हमें देना हो वह हमें पूरी तरहसे दो। तुम्हारे अधिकार चाहे कितने ही बड़े क्यो न हो, एक शिक्षा-विभागकी व्यवस्था ही लीजिये, उसमें बहुतसे नीचे काम करनेवाले हमीं लोगोमेंसे है। ऊपर एक साहब रहता है। वह इसलिये रक्खा जाता है कि जिसमें उनके मुहँ और बुद्धि की लगाम खींचे रहे। अब चाहे बीस वर्ष तक नौकरी करो तो भी यही कहना पड़ेगा कि साहबके बिना काम नहीं चल सकता············ ····

इसमें दो भेद दिखाई देते हैं। यहां जब किसी मालीको

बाग तयार करनेके लिये कहा जाता है, तो वह पहले गमले देखता है, लेकिन फॉरेस्ट डिपार्टमेंटमें जब बड़े बड़े पेड़ तैयार करने होते हैं तब गमलोंकी जरूरत नहीं होती; बीजोंके थैले आते हैं और खाली कर दिए जाते हैं। तब पेड़ खूब मनमाने बढ़ते हैं। उनमेंसे कुछ छोटे भी होते हैं और कुछ बड़े भी। यही व्यवस्था यहाँ भी है। इसी व्यवस्थाके कारण हम लोगोंके पेड़ बढ़ने नहीं पाते, बल्कि इस बातकी भी चिंता रहती है कि बागमें गमलोंमें लगाए हुए पौधे छोटे और सुन्दर दिखाई दें और उनके फूल हाथसे तोड़े जा सकें। उन्हें उसी ढंगपर चलाया जाता है जिसमें वे छोटे ही रहें, बड़े नहीं। इसी प्रकारका उनके साथ व्यवहार किया जाता है और इसी प्रकार उनसे काम लिया जाता है। और जब तक पचीस या तीस बरसके बाद ये लोग कहने लगते हैं कि हमलोग असलमें कामके पात्र नहीं हैं। लेकिन हमें यह पद्धति नहीं चाहिए, हमें अंग्रेजी सरकार चाहिए, हमें इसी राज्यछत्रके नीचे रहना है। लेकिन स्टेट सेक्रेटरीके नामसे जो दामाद (हँसी) खड़ा किया गया है वह हमें नहीं चाहिए, और नहीं तो कमसे कम इतना तो अवश्य चाहिए कि उसे संमति देनेवाले मंडलमें हमारे चुने हुए लोग रहें। यह पहला सुधार होना चाहिए। इसके सिवा हम ही लोगोंके मतसे यह भी निश्चित होना चाहिए कि हिंदुस्तानका खर्च कौन करेगा, धन कितना संग्रह किया जायगा और कर कितना लगाया जायगा। (तालियां) जो कर हम बतलाएँ वह उठा दिया जाना चाहिए, यह कहेंगे कि खर्च कैसे चलेगा, तो हम आगे चलकर देख लेंगे। हम इतना जानते हैं

कि पासमें जितना धन होता है उतना ही खर्च करना पड़ता है और जितना खर्च होता है उतना ही रुपया वसूल करना पड़ता है, हम इस बातको अच्छी तरह समझते हैं। आगे चलकर हम इसकी व्यवस्था कर लेंगे। होमरूलका दूसरा तत्व यह है कि अधिकार लोगोंके हाथमें रहना चाहिए, अच्छे आदमियोंके हाथमें अर्थात् लोगोंके चुने हुए आदमियों के हाथमें रहना चाहिए। आजकल यूरोपमें बहुत बड़ी लड़ाई हो रही है, लड़ाईमें कितना रुपया खर्च होना चाहिए यह बादशाह नहीं निश्चित करता मि० आसक्विथ निश्चित करते है। अगर मि० आसक्विथके किए हुए कामपर लोगोंको कुछ आपत्ति हुई तो वह विषय पार्लिमेंटके सामने जाता है और अगर मि० आसक्विथसे कोई भूल हो जाय तो उन्हें इस्तिफा देना पड़ता है। अगर उनके इस्तीफा देनेकी नौबत आगई तो क्या राजद्रोह हो गया? व्यवस्थामें अंतर है। प्रबंधमें अंतर है, पद्धतिमें अंतर है, और पद्धतिमें का पूरा अंतर हमलोग चाहते है। राज्य डूबेगा, राज्य जायगा, ये सब विचार बिलकुल बाहरी हैं। वे हमारी मर्यादा, हमारी दृष्टिमे आते ही नहीं और न हम इन बातोंको चाहते हैं। और फिर हम यह भी कहते है कि अगर राष्ट्रको सुखी होना हो—आज जो हज़ारों झगड़े उपस्थित है उन्हें यदि दूर करना हो—तो पहले इस राज्य-पद्धतिको बदलो। मराठीमें (हिन्दीमें भी) एक कहावत है " घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों, रोटी जली क्यों " और इन सबका एक ही उत्तर है—फेरा न था। पानको उलटना पलटना चाहिए था, रोटीको भी उलटना पलटना चाहिए था। उसीतरह घोड़ेको अगर फेरा होता तो वह न रुकता। इसका

मतलब यह है कि जंगलोंके झगड़े, आबकारीके झगड़े, गांव और जमींदारीके झगड़े केवल हमारे हाथमें सत्ता न होनेके कारण ही होते हैं। यदि इनका थोड़ासा भाषांतर किया जाय तो यही कहा जायगा कि ये सब बातें स्वराज्य न होनेके कारण हैं। (तालियाँ) हम लोगोंको स्वराज्य मिले यही उसका मूल है। तब हम लोगोंको दूसरेके नचानेपर न नाचना पड़ेगा। हम यह भी नहीं कहते कि स्वराज्यमें ऐसा होगा ही नहीं। जब हमें धनकी कमी होगी और अधिकार हमारे हाथमें होंगे तब हम कर बढ़ावेंगे, खुद बखुद बढ़ावेंगे अन्यथा।खर्च कहांसे चलेगा? लेकिन वह कर खुद बढ़ाया जायगा इसलिये कुछ मालूम नहीं पड़ेगा। जब हम इस दरवाजेसे जाने लगें तो विदेशी विद्वान लोग कह सकते हैं कि इस दरवाजेसे नहीं उस दरवाजेसे जाओ; लेकिन अगर उस दरवाजे पर कोई आकर खड़ा हो जाय और कहे कि इस दरवाजेसे मत जाओ तो हमें उसको धक्का देकर जाना पड़ेगा। यही बात स्वराज्यमें भी है। यह रुकावट ब्यूराक्रेसी की है। हमें यह रुकावट नहीं चाहिये। स्वराज्यकी माँगें ऐसी ही है कि उनके साथ राजद्रोहका कोई संबंध ही नहीं है। बादशाहका भी संबंध नहीं है। यहाँ तक कि अव्यक्त सरकारका भी संबंध नहीं है। अपने घरकी जो कुछ व्यवस्था हो वह आप करो; इससे होगा यह कि एक तो तुम्हारा मन शांत रहेगा। तुम्हें जो कुछ करना होगा, उसे तुम अपने लिये हितकारक समझकर ही करोगे। यही नहीं बल्कि खर्च भी आप ही आप कम करोगे। मैं नहीं कह सकता कि किसी देशी रियासतमें भी कलेक्टरको २५००) तनखाह

मिलती है या नहीं। संसार भरमें कलेक्टरका काम करनेवाले मनुष्यको यदि कहीं सबसे अधिक वेतन मिलता है तो वह हिंदुस्तानमें ही है। (तालियाँ) पुराने जमाने के राज्योंमें एक कलेक्टरको २५००) रुपए तनख्वाह देना मानों तीस हजार सालानाकी जागीर देना था। अपने स्वराज्यमें क्या हमने कभी तीस हजारकी जागीर दी है? तीस हजार रुपए कम नहीं होते। लेकिन इसमें एक कारण है। हरएक बातका कुछ न कुछ कारण होता है और उसे ध्यानमें रखना चाहिए। इन्हें पचीस सौ रुपए विलायतमें लड़कों-बच्चोंके लिये भेजने पड़ते हैं। विलायतकी ठंढी हवामेंसे चलकर यहाँकी गरम हवामें आकर अपना स्वास्थ्य बिगाड़ना पड़ता है-सिर्फ तुम्हारे कल्याणके लिये। तब फिर उन्हें इतनी बड़ी तनख्वाह क्यों न दी जाय? उन्होंने इतनी मेहनत की, इतना स्वार्थत्याग किया, इतने कष्ट भोगे तब तुम उन्हें इतना रुपया भी नहीं दोगे? यह बात अगर कही जाय तो पहले पहल देखनेमें तो बहुत ठीक जान पड़ती है। लेकिन अब मुख्य प्रश्न यह है कि उन्हें विलायतसे यहाँ आनेके लिए कहा किसने? (तालियाँ) हम उन्हें बुलाने नहीं गए थे। जैसी तुम्हारी योग्यता होगी, वैसा तुम काम करोगे, तुम्हारे बराबर योग्यता हममें भी होगी पर हम तुमसे थोड़ी तनख्वाहमें काम करेंगे। यहाँ आदमी मिलते हैं। तब फिर क्यों उन्हें इतनी अधिक तनख्वाह दी जाती है? हम लोगोंकी शिक्षामें व्यय करनेके लिये धन नहीं मिलता। कहा जाता है कि लोकोपयोगी कामोंके लिये हमारे पास धन नहीं है; इसलिये पहले इन्हीं सब बातोंका अंत होगा। काम खूब अच्छी तरह चलेगा।

पहले बहुत अच्छी तरह न चले। रुपएमें आठ आना कम चलेगा, लेकिन वह काम हम ही लोगोंका चलाया हुआ होगा और हम लोगोंकी अनुमतिसे ही होगा; इसलिये जो कुछ होगा उसका मूल्य अधिक होगा। इस प्रकार अच्छी व्यवस्था करनेके लिये कहना चाहिए, इस समय जो कानून है उन्हें दुरुस्त करना चाहिए। इन्हें पार्लीमेन्टसे दुरुस्त कराना चाहिए। हम और किसीसे नहीं मांगने जायंगे। फ्रान्ससे प्रार्थना करके नहीं माँगना होगा। Allies हों तोभी (उनसे प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं) अंग्रेज लोगोंसे-अंग्रेजी पार्लिमेन्टसे प्रार्थना करनी होगी, यह स्थिति उनके सामने रखनी होगी। इसलिये जो कुछ करना हो अगर तुम २०-२५ वर्ष तक उनके लिये उद्योग करते रहोगे तो उसका फल प्राप्त हुए बिना कभी न रहेगा। आजकल जो लड़ाई छिड़ी हुई है, उस लड़ाईके कारण ऐसा समय आ गया है कि ऐसे उपाय किए जाँय जिनसे हिन्दुस्तानका मूल्य, हिन्दुस्तानका शौर्य, हिन्दुस्तानका धैर्य, और स्थैर्य बढ़ सके। अगर सरकारको यह बात मालूम होजाय कि ये लोग आप ही इस बातकी उठान कर रहे है तो आशा है कि हमारी मांग और भी जल्दी सफल हो। इसलिये इस विषयको मैंने बराबर अपने सामने रक्खा है। दूसरी ओर भी इस विषयकी चर्चा हो रही है। इस कामके लिये हमने जो यह 'संघ' स्थापित किया है वह ऐसा है कि इस उद्योगके संबन्धमें आज नहीं तो कुछ दिनों बाद प्रत्येक स्थानपर मुझे अथवा किसी औरको सब लोगोंके सामने इस विषयको उपस्थित करना पड़ेगा। आज इस समय मुझे आपसे यही कहना है कि इस विषयकी बराबर चर्चा करते रहिए,

सदा उसपर ध्यान रखिए, समझिए कि उसका उपयोग क्या है और इस बातकी अच्छी तरह मीमांसा कर लीजिए कि उसमें राजनिष्ठा कितनी है और अराजकता कितनी है। मेरा जो कुछ कथन है वह चाहे इसकी अपेक्षा अधिक ही क्यों न हो तो भी मैंने संक्षेपमें उसका सारांश आप लोगोंको सुना दिया है। अगर आप लोगोंमें, महाराष्ट्रमें, हिन्दुस्तानमें इस विषय पर विचार आरम्भ हुआ तो कभी न कभी इस उद्योगमें यश अवश्य ही मिलेगा। बात चाहे परमेश्वरके हाथ हो, पर तोभी वह होगी अवश्य। यह हम मानते है कि हमारे हाथमें नहीं है। लेकिन संसारमें कर्मका परिणाम बिना हुए नहीं रहता। कर्मका फल कभी न कभी मिलता ही है। जितनी जल्दी मैं कहता हूँ चाहे उतनी जल्दी फल न मिले, हमारे देखते चाहे वह न मिले, चाहे हमें उससे कोई लाभ न हो, पर उस कर्मका फल मिलना तो अवश्य चाहिए। (तालियां) और फिर कर्मके नियमानुसार जो कर्म किया जाता है उससे दूसरा कर्म उत्पन्न होता है उसी तरह तीसरा उत्पन्न होता है और यह परम्परा बराबर चलती है। चाहे देरसे हो या जल्दी। हम भी तो यह कब कहते है कि हमारे आंखोंके सामने ही हमारा मोक्ष हो, हम यह कब कहते हैं कि अमुक मनुष्यके हाथसे ही हो। अभी आपकी परिषदमें यह प्रस्ताव पास हुआ है कि मॉडरेट्स और नेशनेलिस्ट्सके पक्ष हमें नहीं चाहिए। अर्थात् दोनों में से किसीको स्वराज्य देना बराबर है, अगर कल तुम्हारे सिपाहीको भी अधिकार मिले तोभी उसमें हर्ज नहीं है। तुम कहोगे कि सिपाही इतना बड़ा अधिकार कैसे चलाएगा सिपाही कभी तो मरेगा ही। तब फिर हम देख लेंगे

(तालियां) हमें हक चाहिए, अमुक विशिष्ट प्रकारकी सुख-कर व्यवस्था हमें चाहिए। वह हमें मिलेगी। हमारे बाल-बच्चोंको मिलेगी। उसके लिये जो कुछ उद्योग करना हो वह करो। इसे अपना काम समझकर इसके लिये उद्योग करो। मुझे विश्वास है कि यदि परमेश्वरकी कृपा से इस उद्योगका फल तुम्हारी आंखोंके सामने न हुआ तो तुम्हारे आगेकी पीढ़ीको बिना मिले न रहेगा। (तालियां)

दूसरा परिशिष्ट।

(सरकारके लघु-लेखकोंने शुद्ध या अशुद्ध जैसा व्याख्यान लिखकर दाखिल किया था, उसीका यह अनुवाद दिया जाता है।)

लो० बाल गंगाधर तिलकका "होमरूल" पर नगरमें पहला व्याख्यान।

(ता० ३१ मई १६१६.)

श्री० चौकर वकीलने कहा—

सज्जनो! आज आपके नगरका महाभाग्य है। आज आप लोगोंको श्रीयुत् लो० तिलकका (तालियां) उपदेशामृत सुननेको मिलेगा। इसलिये इस विषयमें कुछ अधिक न कहकर मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि जिस विषय पर वे कहेंगे और जो कुछ वे विवेचन करेंगे उसे आप लोग चुपचाप और शांत अंतःकरणसे सुनें और उसीके अनुसार काम करनेकी ठानें। आप लोगोंसे इतनी ही प्रार्थना करके (तिलकजीकी ओर इशारा करके) मैं आपसे व्याख्यान आरंभ करनेकी प्रार्थना करता हूँ।

लो० तिलक बोले—

सज्जनो! आप लोगोंके सामने और कुछ कहनेके पहले मेरा कर्त्तव्य आप लोगोंके प्रति कृतज्ञता स्वीकार करना है। यहां बुलाकर आप लोगोंने मेरा जो सम्मान किया है और मुझे जो मानपत्र दिया है उसके लिये आभार मानना मेरा पहला कर्त्तव्य है। आप लोगोंने मेरा जो आदर किया है

वह चाहे जिस हेतुसे किया हो, पर मुझे इस अवसर पर आप लोगोंके सामने जो कुछ कहना है, वह अपने कामके संबंधमें कहना है। शायद यह बात आप लोगोंको ठीक न जान पड़े कि आप लोगोंने मुझे यहां बुलाया और मै यहां आकर आप लोगोंसे अपना काम कहूँ, यह एक प्रकारका विरोध है। यदि आप लोग यह समझें कि तिलक यहां आए और उन्होंने लोगोंसे अपनी ही बात कही; तो उसके संबंधमें मुझे यही कहना है कि जो बातें मैं कहनेवाला हूँ उसमें जितना लाभ मेरा है, उतना ही आपका भी है और इसलिये इस जगह उन बातोंके कहनेमें मुझे कोई दिक्कत नहीं जान पड़ती। आजतक अनेक प्रकारसे भिन्न भिन्न स्थानोंमें आपके देशके हितके संबंधमें वादविवाद और विवेचन हुआ है। सब लोगोंके लिये हितकर कौनसी बातें है? बहुतसी बातें हितकर है। पारलौकिक धर्म हितकर है, उसी प्रकार नीति धर्म भी हितकर है। खाने पीनेका सुभीता होना भी हितकर है। हम लोगोंका व्यापार बढ़े, प्रजा बढ़े, शान्ति और सुख बढ़े और सुरक्षित रूपसे ये सब बातें हों, इन सब बातोंकी मनुष्यको आवश्यकता है। लेकिन इन सब बातोंका विवेचन इतने थोड़े समयमें, जो मुझे दिया है, होना संभव नहीं है। इसलिये उसमेंसे जो मुख्य बात है, जो हजारों आदमियोंके विचारमें उच्च ठहर चुकी है, जिसके विषयमें इस समय चारों ओर चर्चा हो रही है, उसके संबंधमें आज मैं आप लोगोंसे कुछ कहूँगा। वह बात स्वराज्य है। (तालियां) अपने घरकी जितनी बातें हैं वह सब आप लोग अपनी सत्तासे करते हैं। यदि मुझे कोई काम करना हो और वह खास मेरा ही काम हो तो

उसके लिये किसी दूसरेसे पूछनेकी मुझे आवश्यकता नहीं होती, किसीकी आज्ञा नहीं लेनी पड़ती, अथवा किसी दूसरे की सम्मति लेनेकी हमें आवश्यकता नहीं होती ; लेकिन सार्वजनिक विषयोंमें यह बात नहीं है।

जैसा हमारा कल्याण है वैसा ही और सब लोगोंका भी है। लोगोंका जीवननिर्वाह किस प्रकार उत्तम रीतिसे होगा, उनकी स्थिति अधिक सुखकर किस प्रकार होगी उस पर विचार करनेसे हमें मालूम होता है कि जिस बातको हम चाहते हैं उसीमें हमारे हाथोंमें सत्ता न होनेकी बाधा दिखाई पड़ती है। एक स्थानसे दूसरे स्थानको रेल लाइन ले जाना हो तो यह बात अधिकारमें नहीं। इसी प्रकार व्यापारके विषयमें हम चाहे जितनी बार यह कह लें कि अमुक धन्धेको देशमें उत्तेजन दिया जाय, पर जहां वह धन्धा होता हो वहांसे उसका ज्ञान प्राप्त कर, हमारे देशमें जिन लोगोंका जो व्यापार है उसे घटाकर अपने व्यापारकी वृद्धि करना, ये सर्वथा हमारे अधिकारके बाहरकी बातें हैं। हम जिस बातको लें उसीमें यही अड़चन दिखाई पड़ेगी। हम शराबको भी नहीं रोक सकते। कुछ बातें ऐसी भी हैं जो हमें तथा सरकारको भी अप्रिय हैं, पर सामान्य राज्यव्यवस्था का जो प्रवाह बह रहा है उसमें फेरफार करना, थोड़ा सा भी फेरफार करना, हमारे अधिकारमें नहीं है। हमने आजतक अनेक बार अपने कष्टोंको स्पष्ट कहा और सरकार ने उसे सुना। पर सब कष्टोंका मूल क्या है? वह कौनसी बात है जो हमारे कहे अनुसार हमारी स्थितिका सुधार होनेमें रुकावट करती है? हमारी अड़चनें क्या हैं? इस पर आज ५० वर्षोंसे अनेकानेक बुद्धिमान पुरुषोंने विचार

कर इसका एक कायदा ढूँढ़ निकाला है और वह अधिकार-का हम लोगोंके हाथोंमें न होना ही है। सार्वजनिक विषयोंमें अनेक लोगोंके अनेक मत हैं। कोई कहता है, 'तुम्हारे हाथमें सत्ता क्यों नहीं? तुम शराब मत पीना बस मामिला खतम है। उपदेश सचमुच मीठा है; पर केवल उपदेशके सहारे सब लोग नहीं रोके जा सकते। इसके लिये सत्ताकी आवश्यकता है, यह सत्ता जिसके पास नहीं उससे यह काम नहीं हो सकता। यदि केवल उपदेशों ही से काम चल जाता तो हमें राजाकी जरूरत ही न पड़ती। लोगोंकी जैसी इच्छा हो उसके अनुसार कार्य करानेके लिये ही राज्यव्यवस्थाका निर्माण हुआ है। राज्यव्यवस्था आपके हाथोंमें न होनेसे आपमेंसे हज़ारों लोग किसी बातको पसन्द करते हों और जिनके हाथोंमें राज्यव्यवस्था है उन्हें वह पसन्द न हो तो वैसी बात कभी भी न होने पावेगी। अकालोंकी व्यवस्थाको ही लीजिये। अकालोंमें जुलाहोंकी बड़ी हानि होती है, यह बात जिस दिन सरकारके ध्यानमें आगई उसी दिन इसका थोड़ा बहुत प्रबन्ध कर दिया जाता है। हमारा व्यापार नष्ट हो गया है। आढ़तका कारोबार पहलेसे ही चला आता है; वह पहले न था और अब नहीं है, सो बात नहीं है। आढ़तका व्यवसाय प्रचलित है। भेद इतना ही है कि आप लोग पहले जहां हमारे व्यापारके आढ़तिये थे वहां अब विलायतके व्यवसायियोंके अढ़तिये बन बैठे हैं। आप यहांसे कपास खरीदकर विलायत भेजते हैं और जब उसी कपासके कपड़े विलायतसे बनकर यहां आते तो उसे आढ़तपर खरीदकर उसे हमारे हाथ बेचते हैं। आढ़तका रोजगार कायम रहा, उसमें फेर यह

हुआ कि आढ़तके रोजगारसे अपने देशको जो अधिक लाभ होता था वह जाता रहा; अब इससे जो कुछ लाभ होता है वह विलायत वालोंहीको होता है। वस्तु, व्यवसाय सब वही हैं, पर उनकी व्यवस्था में अन्तर आजानेसे हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। वर्तमान स्थितिमें देशकी भलाईका कोई भी काम नहीं किया जा सकता। पहले हम समझते थे कि अंग्रेजी गवर्नमेंट वास्तवमें परकीय है। उसे परकीय कहना राजद्रोह नहीं है, जो वस्तु परकीय हो उसे परकीय कहना राजद्रोह नहीं—किसी प्रकारका अपराध नहीं है। परकीयतासे क्या होता है? परकीय तथा स्वकीयमें जो भेद है वह यह कि परकीयकी दृष्टि भिन्न होती है, परकीयोंके विचार भी परकीय होते हैं और सामान्य बर्ताव इस प्रकारके होते हैं जिससे वे जिनके लिये परकीय हैं उनके कल्याणकी ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति नहीं होती। जो मुसलमान राजा अहमद नगरका शासन करते थे (मैं मुसलमानोंको परकीय नहीं कहता) वे इसी देशके निवासी बन गये थे और कमसे कम वे यहांके उद्योग धन्धोंकी वृद्धि चाहते थे। धर्म भिन्न हो सकता है। जो मनुष्य अपने लड़के बालोंको भारतमें रखना चाहता हो और जिसके लड़के बाले यहां रहना चाहते हों वे यहां रहें। उन लड़के बालोंका, तथा भारतमें रहने वाले दूसरे मनुष्यों का कल्याण करनेकी जिसकी इच्छा हो वह परकीय नहीं। परकीयतासे मेरा अभिप्राय धर्म सम्बन्धी परकीयतासे नहीं।

जो मनुष्य इस देशके निवासियोंकी भलाईका कार्य करता है वह परकीय नहीं हो सकता, फिर वह मुसलमान हो या अंग्रेज इससे कोई मतलब नहीं। परकीयताका सम्बन्ध

हिताहितसे है। परकीयता निश्चय ही गोरे या काले चमड़ेमें नहीं रहती। परकीयता धर्ममें नहीं। परकीयता व्यापार—व्यवसायमें नहीं। जिस देशमें रहना है, जिस देशके लोगोंमें मिलकर अपने बाल बच्चोंको रहना है जिस देशमें अपनी भावी सन्तानोंको रहना है, उसके सुदिन लाने, उसका कल्याण करने, उसके हितके काम करनेकी इच्छा रखने वाले मनुष्यको मैं परकीय नहीं समझता। कदाचित् यह मेरे साथ एकही देवमन्दिरमें प्रार्थना करने न जायगा, कदाचित् मेरे और उसके रोटी बेटीका व्यवहार न होगा; किन्तु ये सब प्रश्न गौण हैं। जो मनुष्य भारतके कल्याणके निमित्त प्रयत्नशील हो वह हमारी रायमें परकीय नहीं…… …………प्रारंभमें मेरी धारणा थी कि इसमें कोई विशेषता नहीं। पेशवाई समाप्त हुई, मुसलमानोंका राज्य जाता रहा और (देश) अंग्रेजोंकी आधीनतामें आया। राजाका कर्त्तव्य है कि वह ऐसे सब काम करे जिनसे राष्ट्रका अभ्युदय हो, राष्ट्रका लाभ हो, उसकी उन्नति हो और वह दूसरे राष्ट्रोंकी बराबरीका दर्जा प्राप्त करे। जो राजा ऐसे कार्य करता हो वह परकीय नहीं। और जो ऐसे कार्य नहीं करता, जिसकी दृष्टि केवल अपने मूल देश तथा अपने जातिवालोंके लाभ पर लगी रहती है वह परकीय अवश्यमेव समझा जायगा…………………पहलेहीसे हजारों प्रश्न उठते आ रहे हैं। खेतोंका लगान बढ़ाया गया, जंगल विभागकी व्यवस्था भिन्न प्रकारकी की गई—इस प्रकार जो जो बातें होती आई उनके सम्बन्धमें हम २५-३० वर्षोंसे लगातार सरकारके कानोंके पास चिल्लाते आ रहे हैं। तथापि उन भिन्न भिन्न विभागों, भिन्न भिन्न व्यवसायों,

भिन्न भिन्न व्यापारों, भिन्न भिन्न उद्योग धन्धोंकी व्यवस्था हमारे कहनेके अनुसार नहीं की गई। ५० वर्षोंका यही मुख्य प्रश्न है। इसके कारणकी जाँच करते हुए प्रारंभमें हम लोगोंका विश्वास था कि सरकारको इसकी खबर होने पर वह तुरन्त ही हमारे इच्छानुसार कार्य करने लगेगी। हम समझते थे, सरकार परकीय है। उसे (असल मामलेकी) खबर नहीं होती। यदि हममेंसे १०-५ प्रमुख लोग एकत्र होकर कहें तो वह उसपर ध्यान देगी। वह इतनी उदार बुद्धिकी इतनी चतुर है कि उसे इस बातकी खबर होते ही वह इसपर ध्यान देगी और इसका प्रतिकार करेगी। पर खेद है कि यह समझ धीरे २ जाती रही। सरकारके ५० वर्षोंके वर्त्ताव ही इसके कारण हुए। आप कितना ही शोर गुल करें, कितना ही आन्दोलन करें, कितने ही कारण दिखावें, उसकी ही (सरकारकी) रिपोर्टोंके अंक उसके सामने उपस्थित करें, तथापि उसकी आंखोंमें कुछ ऐसा विकार हो गया है कि उसे स्वयं अपनी ही रिपोर्टोंके अंक नहीं सूझ पड़ते। वही दलील (तथा) वही कारण उसे मान्य नहीं होते। हम लोग कोई बात कहें तो वह उसी बातको पकड़ बैठती है जो हमारे कथनके विरुद्ध हो। संभव है कि आपसे कोई कहे कि इसमें तो कोई विलक्षणता की बात नहीं है। आपका राज्य मुसलमानोंका रहा हो वा हिन्दुओंका, पेशवाओंका रहा हो या नगरके बादशाहोंका, (पर) अबही ये सभी राजा नष्ट होकर अंग्रेजोंका अधिकार स्थापित हुआ है। अतः उनका अपने फायदेके लिये काम करना उचित ही है, फिर इसपर आप लोगोंको चिल्लानेका क्या कारण? हममेंसे बहुतोंका ऐसा ही मत है। कुछ लोगोंका यह कहना है कि आपका यह

चिल्लाहट केवल सरकारका जी दुखाने तथा उसके मनमें एक प्रकारका विकार उत्पन्न करनेका कारण होती है, अतएव इस चिल्लाहटको बंद कीजिये। वह जो कुछ दे उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कीजिये। वह रोटीका चौथाई टुकड़ा दे तो उसे आनन्दसे स्वीकार कीजिये और उसका अहसान मानिये। मैं इन सब मतोंको नापसन्द करता हूँ। मेरा मत यह है कि कोई गवर्नमेन्ट चाहे वह इंग्लैण्डकी हो चाहे कहीं की, गवर्नमेन्टकी हैसियतसे उसका एक प्रकारका कर्त्तव्य है। गवर्नमेन्टका एक प्रकारका धर्म है। उसपर एक प्रकारका दायित्व है। इस दायित्वकी जब वह उपेक्षा करती है तो मैं कहता हूँ कि वह गवर्नमेन्ट ही नहीं। गवर्नमेन्टका अधिकार है। गवर्नमेन्टका साधारण लोगों पर जो प्रभुत्व है चाहे वह उसने युद्धमें जीतकर प्राप्त किया हो या लोगोंने ही उसे भूल सौंपा हो?·········तथापि गवर्नमेन्टके कुछ कर्त्तव्य अवश्य हैं। हमारे और आपके जैसे कुछ कर्त्तव्य हैं वैसे ही जिसे हम गवर्नमेंट कहते हैं उसके भी कुछ कर्त्तव्य अवश्य हैं। कुछ कार्य उसे अवश्यमेव कर्त्तव्य हैं। गवर्नमेन्टने कुछ कर्त्तव्य स्वीकार कर लिये हैं। सड़कें बनवाना, डांकखाने स्थापित करना, तार लगवाना आदि कार्य क्या गवर्नमेन्ट नहीं करती है? अवश्य करती है। कल कोई आदमी कहे कि गवर्नमेन्ट सड़कें नहीं बनवाती तो यह उसकी खुशी है; वह चाहे बनवावे चाहे न बनवावे, तो आप सब लोग जो यहां एकत्र हैं उसे दोष देंगे और कहेंगे—जब ये कार्य न किये जायँगे तो फिर हमें टैक्स देनेकी क्या जरूरत है? गवर्नमेन्ट हम लोगोंसे जो टैक्स वसूल करती है, यदि वह उसका उपयोग लोगोंको आराम पहुँचानेमें

न करे तो इस दशामें हमसे किसी तरहका टैक्स वसूल करनेका उसे हक ही नहीं है। गवर्नमेन्ट इन्हें हमारे ही आरामके लिये वसूल करती है। कोई मनुष्य गवर्नमेन्टकी उत्तमताका प्रतिपादन करने लगता है तो वह आपको क्या दिखाता है? हमेशा यही जवाब दिये जाते है कि गवर्नमेन्टने सड़कें खुलवाईं, रेलें चलवाईं, तार और डाकखाने स्थापित कराये—क्या उसने ये सुभीते आपके लिये नहीं किये? तब आप क्यों गवर्नमेंटके नाम पर चिल्लाया करते हैं? मैं यह नहीं कहता कि ये बातें नहीं की गईं पर जितनी की गई है उतनी काफी नहीं है। ये बातें की गईं और अच्छी तरह की गईं। पहलेके राज्योंने ये बातें नहीं की थी; अंग्रेजी गवर्नमेंटने इन्हें किया और उनसे बढ़कर किया—यह उसके लिये शोभा की बात है। परन्तु जो कार्य वह नहीं करती है उन्हें हम उसे क्यों न बतावें? जो काम उसने नहीं किया, जिसके करनेकी स्वयं उसकी इच्छा नहीं दिखाई पड़ती—अनेक भांति से समझाने पर भी जिस ओर उसका ध्यान नहीं जाता—उस बातको हम न कहें। कहनेसे उसका अपमान होता है। जिस गवर्नमेंटकी ऐसी समझ हो वह सच्ची गवर्नमेंट नहीं। फिर सच्ची गवर्नमेंट कैसी है? इसपर थोड़ा विचार करना उचित है। वर्त्तमान और प्राचीन पद्धतिमें बहुत बड़ा अन्तर है। आजकल एक प्रकारका भ्रम उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। कलेक्टर साहब अथवा और भी जो सिविलियन यहां आते हैं और जिन्हें अंग्रेजी भाषामें 'ब्युराक्रेसी' (अधिकारिवर्ग) कहा जाता है, गवर्नमेंट नहीं हो सकते। पुलिसका सिपाही गवर्नमेंट नहीं है।

हमारे देशपर ब्रिटिश राष्ट्रकी जो सत्ता है उसपर आघात न पहुँचाते हुए, उसे कमजोर न बनाते हुए, उसे स्थिर रखकर, आप जो कुछ करना चाहें कर सकते हैं—यह कथन किसी प्रकार राजद्रोहपूर्ण नहीं हो सकता। हमें अंग्रेजोंके आधिपत्यकी आवश्यकता है, पर बीचके भंडारियोंकी नहीं (तालियां) धान्य यजमानकी है, सामग्री यजमानका है, पर बीचमें इन भंडारियोंका न मालूम क्यों पेट दुखता है; अतः उन्हें बरखास्त कीजिये और वे अधिकार लोगोंको दीजिये जिसमें हम अपने अपने घरोंकी व्यवस्था यथोचित देख सकें। इसी प्रकारका स्वराज्य हम मांगते हैं। स्वराज्यका अर्थ यह नहीं है कि अंग्रेजी गवर्नमेंट दूर कर दी जाय, सम्राट्का आधिपत्य राष्ट्र से हटा दिया जाय और उसके स्थानमें देशी राज्योंमेंसे किसी एकका आधिपत्य स्थापित किया जाय। स्वराज्यका अर्थ वही है जो मि० खापर्डेने बेलगांवमें बताया था अर्थात् हमें देवताओंको अलग नहीं करना है बल्कि उनके पुजारियोंको अलग कर देना है। देवताको रखना है, पर इन पुजारियोंकी कोई आवश्यकता नहीं। हमारा दूसरा कहना यह है कि ये इन जगहों पर हमीं लोगोंमें से ही नियुक्त किये जायें। कलेक्टर, कमिश्नर आदि मध्यस्थ बिलकुल अनावश्यक है। आजकल आप लोगोंपर कौन प्रभुता चलाता है? सम्राट् आकर नहीं चलाते क्योंकि वे विलायतमें रहते हैं। हमारी कुछ बातें उनके पासतक पहुंचाई जाँय तो वे आपके कल्याणकी कुछ व्यवस्था करें। फिर आपका कल्याण क्यों नहीं होता? इसीलिये ये पुजारी ....
(तालियां) ये लोग चतुर हैं। आप कहते हैं ये पुजारी

हमें न चाहियें। वे कहेंगे हमने परीक्षा पास की है; इसलिये काम करते हैं। ये सभी बातें सच हैं। परन्तु पुजारियोंका ध्यान अपनी वृत्तिके अंश (बड़ी बड़ी तनखाहों) पर अधिक रहता है। इसलिये ये पुजारी हमारे हाथोंमें होने चाहिये। पंढरपुर पुजारियों और इनकी स्थिति एकही जैसी है (तालियाँ) इसे अपने हाथमें रखनेके लिये तो लोग (Bureacracy) पूजाधिकार माँग रहे हैं उनके हाथोंमें पूजाधिकार न रहे तो क्या इसमें सम्राट्की कोई हानि नही हो सकती है? नहीं कुछ भी नहीं। यह कह सकते हैं कि अंग्रेज लोग सम्राट् की जाति के हैं। परन्तु जब हम लोग भी सम्राट् की प्रजा हो चुके हैं तो फिर क्या काली प्रजा और क्या गोरी प्रजा, उस (सम्राट्) के लिये इनमें कोई भेद नहीं हो सकता। ऐसा भेद करनेकी उसकी इच्छा भी नहीं है। स्वराज्यका अर्थ है म्युनिसिपल लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट। परन्तु यह एक अर्थ है यही यथेष्ट नहीं है। कलेक्टर का हुक्म होते ही आपको उसे मानना ही पड़ता है। उसे (कलक्टरको) हर एक बातमें कूदनेका अधिकार है उसे यह भी अधिकार है कि वह प्रेसिडेन्टको बुलाकर कहे तुम अमुक काम करो। न करने पर उसे प्रेसिडेन्टको निकाल देनेका अधिकार है। फिर स्वराज्य कहां है? (तालियां) स्वराज्य शब्दका अर्थ जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूँ यह है कि सम्राट् तथा अंग्रेज जातिकी सत्ता अक्षुण्ण रहे और शेष सम्पूर्ण व्यवस्था करनेका अधिकार पूर्णरूपसे लोगोंके आधीन कर दिया जाय यही स्वराज्यका परिभाषा है। जो कुछ हम माँगते हैं उसका यह मतलब नहीं कि अंग्रेजी गवर्नमेन्ट के अधिकार कम हो जाय या वह यहांसे चली जाय और उसकी

जगह जर्मनोंका आधिपत्य स्थापित हो। इनके विरुद्ध वर्त्तमान युद्धमें यह सिद्ध हो चुका है और समस्त संसार ने इसे देख लिया है कि जर्मन गवर्नमेन्टका यहां आना हमें किसी प्रकार इष्ट नहीं है। यही नहीं, इसी गवर्नमेन्ट का आधिपत्य इस देश में स्थिर रहे इसके लिये हमारे हज़ारों लोग आज अत्यन्त दूर तथा ठंढे प्रदेशोंमें जाकर प्राण दे रहें है। (तालियाँ) फिर बाकी क्या रहा? यह राज्य स्थिर रहे, यह राज्य नष्ट होकर जर्मनोंका राज्य यहां कायम न होने पावे, यदि इन सब बातोंके लिये हम अपने विचारानुसार रुपये पैसे—यद्यपि हम अंग्रेजोंके बराबर धनी नहीं है,—देते हैं हमारी शक्तिके अनुसार हमारे लड़के बाले लोग वहां जाकर अपने प्राणोंको समर्पण करते हैं और इस प्रकार जो कुछ कर सकते हैं कर रहे हैं। फ्रान्स, जर्मनी तथा अन्य राष्ट्र उनकी प्रशंसा कर रहे है। (तालियाँ) अंग्रेजी गवर्नमेंट के प्रति हमारी कैसी निष्ठा है और उसकी हमें कितनी इच्छा है—इसका प्रमाण हमने अपना रक्त बहाकर दिया है। (तालियाँ) हम नहीं समझते कि कोई मनुष्य इस बातका इससे अधिक प्रमाण देसकता है। अतः आज यह बात निस्संशय सिद्ध है कि हम यहां अंग्रेजी गवर्नमेन्ट-का ही आधिपत्य चाहते हैं और इसके अनुसार हम प्रयत्न भी कर रहे हैं। जब ऐसी स्थिति है तो ये बीचके लोग जो नियुक्त किये गये हैं क्यों नहीं बरखास्त कर दिये जाते और वे अधिकार हमें क्यों नहीं दिये जाते जो बृटिश सम्राज्यके अन्यान्य देशवालोंको प्राप्त है? हम उनसे न बहादुरीमें कम है और न विद्यामें। हममें कर्तृत्व है। सब कुछ होने पर भी हमें अधिकार क्यों नहीं दिये जाते?

सम्राट्को अपनी काली और गोरी प्रजामें भेद क्यों करना चाहिये? सम्राट्को ऐसी सलाह किसने दी है? अंग्रेजी राजसत्ताकी विशेषता यही है कि सम्राट् लोगोंकी सलाहसे काम करते हैं। मन्त्रिमण्डलको उन्हें ऐसी सलाह क्यों देनी चाहिये? अस्तु, वर्त्तमान राजसत्ता जिसके हाथोंमें है अर्थात् जो अधिकारीवर्ग है वह गोरा है। काला भी उनमें सम्मिलित होने पर वैसा ही हो जाता है। वर्त्तमान पद्धतिके अनुसार एक नेटिव (देशी) विलायतसे पास कर आवे और यहाँ उसकी नियुक्ति कलेक्टरके पद पर कर दी जाय तो वह भी उनमें मिलते ही वैसा ही हो जाता है। आप यह न समझें कि मैं केवल गोरोंके विषयमें कह रहा हूँ। इसीलिये हमें यह पद्धति नहीं चाहिये। एक या दो आदमियोंके उनमें आ मिलनेसे क्या बिगड़ सकता है? उनके कार्योंमें कोई विशेषता नहीं रह सकती। अतएव यह पद्धति उठा देनी चाहिये। एक दो मनुष्योंकी नियुक्तिसे हमारा समाधान नहीं हो सकता। तब, इस पद्धतिको किसने चलाया? सम्राट्ने इसे नहीं चलाया। महारानी (विक्टोरिया) का घोषणा-पत्र दूसरी ही तरहका है और वर्त्तमान शासन पद्धति बिलकुल ही भिन्न है। इस समय हमारे पास कोई भी ऐसी बात नहीं है जिससे हम अपना कल्याण कर सकें। हमारी इच्छा हो कि हम अमुक विदेशी माल का महसूल बढ़ाकर स्वदेशी मालको उत्तेजन दें तो यह हमारे वसकी बात नहीं है। हम सोचें कि देशमें अमुक उद्योग धन्धेकी आवश्यकता है, उसे हमें आरम्भ करना चाहिये और उसकी शिक्षाके लिये बाहरसे वेतनयुक्त शिक्षक बुलानेकी व्यवस्था करनी चाहिये, तो यह बात भी हमारे हाथोंमें

नहीं है। ये कितनी छोटी बातें है। लिखना, पढ़ना सीखना सबके लिये आवश्यक है। कोई मनुष्य चाहे मुसलमान हो या किसी धर्मका हो, किसी जातिका हो, पर उसे थोड़ा बहुत लिखना पढ़ना आना ही चाहिये। इस बातको आज संसारके सब लोगोंने माना है। इस विषयमें अब कोई शंका नहीं रह गई है। लिखना पढ़ना सीखनेसे मनुष्यका कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। यह किसीको नई बात बताना नहीं है। फिर हमारे यहां यह बात क्यों नहीं होती? इसी लिये कि द्रव्यका अभाव है। यह कारण किसकी ओरसे बताया जाता है? अधिकारीवर्गकी ओरसे। इनकी तनख्वाह २५००) है उसे ३०००) करनेके लिये रुपया चाहिये। Exchange Compensation की भी यही दशा है। जब रुपये या चांदीका भाव घट गया था तो गवर्नमेन्टने हुन्डीके लिये ६ करोड़ रुपये निकाले थे। उस समय रुपया मिल गया था। ये सब बाते जो हो रही हैं वे आपके हाथोंमें अधिकार आये बिना बन्द नहीं की जा सकतीं। शिक्षाके लिये रुपये नहीं है और कलेक्टरको २५००) तनख्वाह देनेके लिये रुपये हैं। इस बातको हमलोग उतनी स्पष्टतासे नहीं कहते और न बतलाते है। यदि सत्ता हमारे हाथोंमें होती तो हम जिस दृष्टिसे इस बातका विचार करते, वर्त्तमान अधिकारीवर्ग उस दृष्टिसे विचार नहीं करते। पहले पहल हमसे कहा गया था कि शिक्षाके सम्बन्धमें द्रव्य व्यय किया जायगा। लोगोंमें साक्षरता बढ़नेसे हजारों अपराध कम होते है, वे अपने काम काज अच्छी तरह सम्हालने लग जाते हैं। वे समझने लगते है कि किस बातमें लाभ और किस बातमें हानि है। जब लोगोंकी अवस्था इस प्रकार

की हो जाती है तब उनका शासन करनेके लिये ७५००) रुपयेके ओहदेदारकी जरूरत नहीं रहती। ५००) रुपयेके अहलकारसे काम चल सकता है और २०००) रुपये हमें शिक्षा में खर्च करनेके लिये बच सकते हैं। आज किसी भी देश में इतनी बड़ी तनख्वाहके अधिकारी नहीं हैं। भारतके वाइसरायको प्रतिमास २००००) रुपये मिलते हैं और इंग्लैन्डके प्रधान मन्त्रीको केवल ५०००) ही मिलते हैं। जो इंग्लैन्डमें रहकर सम्पूर्ण साम्राज्यकी व्यवस्था करता है उसे ५०००) मासिक मिलता है और भारतकी व्यवस्था करने वालेको २००००)। ऐसा क्यों होता है? इसका उत्तर कुछ नहीं है। यह इसलिये होता है कि इसका खर्च भारत के मत्थे पड़ता है (तालियां) यह देश भारतवर्ष है। आओ और खाओ। किसी औरकी दूकानका प्रबन्ध आपके आधीन दिया जाय तो आप यदि अपनी दूकानमें ५०) रुपये तनखाह देते हों तो उसे (वहांसे) १००) रुपये देंगे, यदि वह मनुष्य (कर्मचारी) आपकी जाति या समाजका होगा। वर्त्तमान व्यवस्था इसी ढंगकी है। इस व्यवस्थासे आपकी कोई भलाई नहीं। यह बात कुछ पहले ही पहल हमारी निगाहमें नहीं है, आज ५० वर्षोंसे यह बात हमें दिखाई दे चुकी है। सन् १९०६ में जब कलकत्तेमें कांग्रेस हुई थी उस समय दादाभाई नौरोजी (तालियां) ने यह बात स्पष्ट बतला दी थी कि मेरा ५० वर्षोंका अनुभव सबको बतलाता है कि इस समय जो अवस्था है और जो एक प्रकारका अन्याय किया जा रहा है उसका प्रतिकार करनेका एक ही उपाय है और वह अधिकारोंका लोगोंके हाथों में आना है। उन्होंने इसे Self-Government का नाम

लिया। हमारे घरोंमें क्या किया जाना चाहिये, हमारे ग्राममें क्या किया जाना चाहिये, हमारे देशमें क्या किया जाना चाहिये, हमारे देहातोंमें क्या किया जाना चाहिये, आदि बातोंकी व्यवस्था हमे स्थिर करनी चाहिये। हमारी स्थिर की हुई व्यवस्था थोड़े खर्चमें होगी, उत्तम रूपमें होगी, और कहां ज्यादा खर्च करना चाहिये और कमी करनी चाहिये इस विषयमें हम जो निर्णय करेंगे वह लोगोंके लिये अधिक हितकर होगा। अधिकारी कहते हैं तुम बुद्धिमान् नहीं हो, जो कुछ समझता है वह हमें ही समझता है। अधिकारियोंकी दृष्टि सबसे पहले अपनी तनखाह हथियाने की ओर रहती है। खजानेमें आमदनी पहुँची कि उनकी तनखाहकी रकम पहले निकलनी चाहिये। उनका सैनिक व्यय पहले निकलना चाहिये। उनकी सब व्यवस्था पहले होनी चाहिये। फिर जो आमदनी बचती है वह शिक्षा तथा अन्य उपयोगी कामोंमें लगाई जाती है। वे यह नहीं कहते कि शिक्षा अप्रयोजनीय है। उनकी दृष्टिमें शिक्षा कोई अनिष्ट वस्तु नहीं है। परन्तु सब खर्च निकालने पर लोगोंको शिक्षा देनेका सम्भव हो तो उनके और सुभीते भी देखने का पीछेसे विचार किया जाता है। हम प्रथम इस बातका विचार करेंगे कि हमारे हाथमे अधिकार आने पर हम यह व्यवस्था कर सकेंगे या नहीं। यदि हम समझते हों कि ऐसे काम करने वालोंको अधिक वेतन देना पड़ता है और इसमें कमी करनी चाहिये तो हम उनसे कहेंगे कि यह काम आपको देशके वास्ते करना होगा। इन सब बातोंका विचार जब इस रीतिसे होने लगेगा उस समय हम जो कुछ करना चाहेंगे उसका योग्य पारितोषिक हमें प्राप्त हो जायगा।

यह केवल विचार हुआ। आपकी अड़चन कहाँ है? मराठीमें एक मामूली कहावत है कि किसी ने किसीसे तीन प्रश्न किये—घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों और रोटी जली क्यों? इन तीन प्रश्नोंका उसने एक ही उत्तर दिया और वह यह कि "फेरा नहीं"। इसी प्रकार हमारे देशमें शराबकी खपत कम क्यों नहीं होती, जंगलमें लोगोंपर अत्याचार क्यों होता है, शिक्षाके लिये द्रव्य क्यों नहीं मिलता है इन सब प्रश्नोंका भी एक ही उत्तर है, अर्थात् आपके हाथोंमें अधिकार नहीं है (तालियां) और ये अधिकार जब तक आपके हाथोंमें न आवेंगे तब तक आपका भाग्योदय भी न होगा। सम्राट् चाहे कोई हो उसके विषयमें हमारा कुछ कहना नहीं। पर जिन बातोंका सम्बन्ध व्यवहार, व्यापार, धर्म, और समाज से है उन्हें हमें अवश्य करना है। उन बातोंके करनेकी सत्ता थोड़ी बहुत हमारे हाथोंमें आये बिना—शर्त यह है कि अन्तमें पूरी पूरी आनी चाहिये—पूर्ण रूपसे हमारी अधीनतामें आये बिना हमें अपने लिये समृद्धि, भाग्योदय, लाभ या उत्कर्षके दिन देखना असम्भव है। औरोंके मुहँसे पानी नहीं पिया जा सकता; उसे अपने ही मुहँसे पीना पड़ेगा। वर्त्तमान व्यवस्था ऐसी ही है—(दूसरोंके मुहँसे पानी पीनेकी) हमें अपना जल—अपने कुएँका जल आप निकालकर और आपही पीना चाहिये। यदि यह कुआं सरकारका हो तो एक रुपया मासिक टैक्स देना पड़े तो दीजिये। पर हमें सत्ता दरकार है। वह हमारे आधीन न होनेसे हमारा निस्तार नहीं। राज-नीतिका यह सिद्धान्त प्रायः निश्चित है-इतिहास, नीति-शास्त्र तथा समाज शास्त्रकी दृष्टिसे प्रमाणित है। तब आप पूछ सकते हैं कि

हमें इतने दिनों तक यह क्यों नहीं बताया गया? इस सम्बन्धमें मुझे दो शब्द कहना है। वह सत्ता हमारे हाथोंमें आवे। उसके आनेका समय आज दिखाई पड़ने लगा है। इतने दिनों तक इंग्लैंडके सामान्य लोगोंकी यह भावना थी कि भारतसे जहां तक फायदा उठाते बने उठाया जाय। वे भारतको एक प्रकारका बोझसा समझते थे। इंग्लैंड वाले समझते थे भारतके ३० करोड़ मनुष्य कभी न कभी हमारा राज्य डुबा देंगे। उनके हथियार छीन लेने चाहिये और उन्हें जहां तक दास्यता तथा दाबमें रखना संभव हो, रखा जाय। पर आज यह स्थिति बदल चुकी है। वर्त्तमान कालमें युरोपमें जो युद्ध हो रहा है उसके कारण यह समझा जाने लगा है कि ब्रिटिश साम्राज्यके भिन्न भिन्न अवयवोंका संयोग हुए बिना साम्रज्य उतना शक्तिशाली नहीं हो सकता जितना कि उसे होना चाहिये। आज उनमें इस प्रकारकी बुद्धि जागृत हुई है कि हमारे जो दूसरे देश हैं— आस्ट्रेलिया, केनाड़ा, न्यूजीलैंड—जहां साहब लोगोंकी आबादी है और जिन्हें उपनिवेष कहा जाता है उनकी सहायता हमे दरकार है। आप लोग यदि इस बुद्धिका लाभ उठावें तो आपके लिये भी कुछ न कुछ स्वत्व प्राप्त कर लेनेका अवसर आया हुआ है। आपसे कोई नहीं कहता कि ये स्वत्व आप तलवारके बलपर प्राप्त करें! पर आज राष्ट्रकी बुद्धि बदली हुई है। भारत इंग्लैंडकी कुछ सहायता कर सकता है। भारत सुखी रहे तो इससे इंग्लडेको ही एक प्रकारका वैभव, एक प्रकारकी शक्ति और एक प्रकार गौरव मिलेगा। इस तरहकी बुद्धि इंग्लैंडमें जागृत हुई है। इस बुद्धिका इस समय लाभ न उठाया गया तो फिर ऐसा

अवसर नहीं आनेका। अधिकारिवर्ग इसे बुरा समझता है। इसमें किसका नुकसान है ? नुकसान सम्राट्का नहीं; किन्तु अधिकारी वर्गका है। इसीसे उन्हें यह बात बुरी लगती है। और वह इस समय यह उपदेश करते हैं कि हम यहां इसलिये आये हुए हैं क्योंकि तुम लोग स्वराज्यके अयोग्य हो। मानो उसके आनेके पहले भारतमें कहीं स्वराज्य था ही नहीं और हम सब लोग लुटेरे थे तथा एक दूसरोंका गला काटनेको तैयार रहते थे। पेशवाई (शासन) में राज्य-व्यवस्थाका अभाव था मुसलमानोंमें भी राज्य व्यवस्था नहीं थी। हम लोग राज्य प्रबन्धकी योग्यता न रखते थे, हमें सड़कें बनवाना न आता था और लोग सुखी किस प्रकार रह सकते थे यह हम नहीं जानते थे। नाना फड़नवीस मूर्ख थे, मलिकअंबर मूर्ख थे, अकबर और औरंगजेब मूर्ख थे। अतएव इन्हें हमारे कल्याणके लिये यहां आना पड़ा और आप अद्यापि अपक्वबुद्धि बालक हैं। (हँसी) अच्छा हम घड़ी भरके लिये इसे भी मान लेते हैं कि आप लोग अभी बालक ही हैं। परन्तु आप बालिग कब होंगे ? कानूनमें २१ वर्षका होने पर बालिग समझा जाता है। इन्होंने ५० वर्षों तक हमपर शासन किया तौभी हम बालिग न हो सके तो इन्होंने ५० वर्षोंमें यहाँ आकर कौनसा कार्य किया ? हिन्दुस्तानके लोग नाबालिग थे तो उन्हें सयाने करना किसका कर्त्तव्य था। यह कर्त्तव्य इन्हींका था। वही राज्यकर्त्ता थे। मेरा तो यह कहना है कि इन्होंने यह कर्त्तव्य पालन नहीं किया अतएव हम बालक हैं यही नहीं, किन्तु ये राज्य करनेके अयोग्य भी हैं (तालियां) जो लोग ५० वर्षोंमें अपनी प्रजाका सुधार न

कर सके वे अपने अधिकार दूसरोंको सौंप दें यही अच्छा है। जो मैनेजर ५० वर्षों तक आपकी दुकानकी मुनीमी करता रहा हो और इन ५० वर्षोंमें बराबर घाटा ही होता रहा हो तो आप उसे क्या कहेंगे? (यही न कि) महाशय आप प्रस्थान करें, मैं अपनी व्यवस्था स्वयं कर लूंगा। दूसरा नीच दर्जेका होगा, कम बुद्धिमान् होगा, तथापि इतना तो जानेगा कि दूकानका प्रबन्ध करते हुए उसमें घाटा न आने देना चाहिये। कमसे कम इतना तो उसे जानना ही चाहिये। जो लोग हमें कहा करते है कि तुम अभी योग्य नहीं हुए तो उनका कहना स्वार्थ साधनके लिये है। यह कथन यदि सत्य हो तो इससे एक तरह पर उनकी बेइज्जती है—वे अयोग्य सिद्ध होते है, और असत्य है तो स्वार्थ साधनके लिये है। इसके सिवा हम इससे और कोई परिणाम नहीं निकाल सकते 'हम अयोग्य है' इसका क्या अर्थ है? हमे क्या हुआ है? हम म्युनिसिपेलिटीका प्रबन्ध कर लेते है। कोई विलायतसे परीक्षा पासकर आता है और उसे कलेक्टरका पद सौंपा जाता है तो वह उस पदके काम कर लेता है। गवर्नमेंट उसकी शिफारस करती है। परन्तु लोगोंको स्वराज्यके अधिकार देनेके समय सब लोगोंको-करोड़ोंको-साफ नालायक कह देना और अयोग्यताके सार्टिफिकेट दे डालना स्वयं अपनी ही अयोग्यताका प्रदर्शन करना है (तालियां)

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके आक्षेप स्वराज्य पर किये जाते है। पहली बात मै कह ही चुका हूँ कि वे (अधिकारी) एकबारगी समस्त राष्ट्रको अयोग्य बतलाते है। परीक्षा लेनेको कहा जाय तो वह भी नहीं ली जाती।

अयोग्य, अयोग्य—इसका क्या अर्थ है ? अपने और हमारे दोनों आदमियोंको काम पर लगा दीजिये। फिर देखिये कि वह (हमारा आदमी) ठीक काम करता है या नहीं। काम करनेका अवसर नहीं दिया जाता तथापि (हमें) अयोग्य कह दिया जाता है। जिन्हें यह अवसर दिया गया है क्या वे अयोग्य सिद्ध हुए हैं ? व्यवस्थापिका सभाओंके जो लोग मेम्बर है वे क्या अयोग्य हैं ? क्या वे कभी अयोग्य कहे गये है ? क्या तुमने कभी उन्हें अयोग्य कहा है ? नहीं। फिर अयोग्यका क्या अर्थ है ? तुम देना नहीं चाहते। छाँछ न देनेके लिये क्या किसी हीलेकी जरूरत है ? आज रविवार है, आज छाँछ नहीं है। वर्त्तमानमें ऐसा टालमटोलसे काम निकाला जा रहा है। मुझे यह जानना है कि आप यह टालमटोल न चलने देते हुए जमकर आकांक्षा करनेको तैयार है या नहीं। यदि आप आकांक्षा करनेको तैयार न हुए, यदि आपने इसके लिये आग्रह न किया और आजका मौका मुफ्तमें खो दिया तो ऐसा मौका फिर १०० वर्षों तक नहीं आनेवाला है। अतएव आपको तैयार होना ही चाहिये। मै जानता हूँ कि यदि हम तैयार होकर बलपूर्वक कहना आरम्भ करें तो यह असम्भव नहीं है कि कोई पुलिस सिपाही हमें 'तू' कहकर सम्बोधित करे। परन्तु इसे सहना ही चाहिये। इसका कोई इलाज नहीं। सत्ता हमारे हाथमें नहीं। तू मूर्ख है, जा अपना काम देख,—यह बात हम उस पुलीस सिपाहीको नहीं कह सकते। वह पुलिस इन्सेपक्टरकी आज्ञा मानता है। परन्तु मैं आप लोगोंसे यह कह सकता हूँ कि यदि आप सब धर्म और जातिवाले निश्चय तथा एकताके साथ एकत्र होकर

गवर्नमेन्टसे इसी समय इसके लिये माँग करें, आग्रह करें, इसके लिये जिस खर्चकी आवश्यकता हो उसे करनेको तैयार हों, और यह बात गवर्नमेन्ट परही नहीं, परंतु सारे संसार पर यह प्रकट करदें कि यह माँग पूरी किये बिना हम तृप्त न होंगे हमें सन्तोष न होगा—यदि इतनी दृढ़ता आपमें हो तो मुझे विश्वास है कि परमेश्वरकी कृपासे यह माँग शीघ्र ही पूरी होगी। यह आपके निश्चयका फल होगा। क्या धर्म और क्या राजकारण सभीमें निश्चयकी आवश्यकता है। परन्तु साहसके बिना मनमें ऐसा निश्चय नहीं आता। 'जो हो' कहनेसे काम नहीं चलेगा। उसके अच्छे या बुरे होनेसे ही हमारा प्रयोजन है। हम इसीकी माँग करेंगे। हम इसके लिये द्रव्य एकत्र करेंगे और जो खर्च या परिश्रम दरकार होगा, करेंगे और जबतक हमारी यह मांग पूरी न करदी जायगी तब तक यह आन्दोलन बन्द न करेंगे। यदि हमारे जीवन कालमें यह काम पूरा न हुआ तो हमारे लड़के बाले भी यही आन्दोलन जारी रखेंगे। जब इस कार्य में इस प्रकारकी आसक्ति होगी तभी इसका फल प्राप्त होगा। भक्तिके बिना परमेश्वरसे फल नहीं मिलता, राजासे नहीं मिलता इस लोके तथा परलोकमें नहीं मिलता। यदि आपका ऐसा विश्वास न हुआ तो दृढ़ प्रयत्न करने पर भी उससे किसी फलकी प्राप्ति न होगी। विश्वास प्रथम आवश्यक है। धनवान और गरीब दोनोंमें विश्वास होनी चाहिये। गरीबको अपनी तरहपर सहायता करनी चाहिये और अमीरको अपनी तरहपर। जो बुद्धि वाले हैं उन्हें बुद्धिसे सहायता करनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्यके मनसे यह बात लगी रहनी चाहिये। यदि यह हर समय आपके

मनसे नहीं लगी रहती, यदि आप उद्योग करनेके लिये तैयार नहीं, तो अपयशका बोझ लोगोंके सिर लादना निरी मूर्खता होगी। कदाचित् मूर्खता शब्द आपको बुरा लगा होगा। मैं इसे आवेषमें कह गया। परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमने आज भी उतनी दृढ़ता, उतनी आस्था और उतनी निष्ठासे प्रयत्न करना आरम्भ नहीं किया है जितनीसे कि चाहिये था। यदि कोई साहब (युरोपियन) हमसे पूछे—तुम्हें अधिकार देनेसे क्या अव्यवस्था नहीं होगी? तो हम कहते हैं—हाँ, हाँ हमारे पास मनुष्योंका अभाव है। तैयार किये हुए मनुष्य नहीं हैं! और फिर हम घरमें साहबपर हँसते हैं; हंसना नहीं चाहिये (तालियां हँसी) घरमें हँसनेसे काम न चलेगा, मुहँ पर जवाब देना चाहिये। हमें जा बात सच जान पड़े उस बातका प्रतिपादन करेंगे और उसे लोगों, अधिकारियों बल्कि सम्राट् तकके सामने कहनेको तैयार रहना चाहिये। जिस दिन आप इसके लिये तैयार हो जायँगे उस दिन—विशेषतः इस युद्ध के समाप्त होनेपर—राज्यव्यवस्थामें कुछ परिवर्तन करना ही पड़ेगा। यदि आज जैसी राज्यप्रणाली है वैसी ही रही तो इंग्लैंड युरोपियन राष्ट्रोंमें कोई अधिकार न पा सकेगा। इंग्लैंड इस समय सबसे बलवान है। गवर्नमेन्ट सर्वोपरि शक्तिशालिनी है, परन्तु उसे उसी रूपमें स्थिर रखने लिये वर्त्तमान राज्यव्यवस्थामें कुछ न कुछ फेर फार अवश्य होना चाहिये। वस्तुतः वह यही कहते है कि परिवर्त्तन किया जाय, भारत नहीं कहता कि परिवर्त्तन किया जाय। इसमें कोई न कोई दोष है। आज मैं खड़ा हूं; कल दूसरा खड़ा होगा और कहेगा कि इसमें तुम्हारा कल्याण नहीं है,

इस समय जो व्यवस्था है वही उत्तम है। गवर्नमेन्ट दयालु है। अधिकारि वर्ग बुद्धिमान है। अतः उसीकी इच्छासे चलना श्रेष्ठ होगा...........व्यापारी वर्गकी यह स्थिति नहीं है। बुद्धिमान मनुष्योंकी यह स्थिति नहीं है। मुसलमान आदि किसी धर्मकी यह स्थिति नहीं है। मुझे जो बात कहनी है वह मुसलमानोंके लिये, हिन्दुओंके लिये या व्यापारियोंके लिये ही नहीं होगी। सबके लिये होगी। सबके लिये एक ही औषधि है। यह औषधि सत्ता है; उसे अपने अधिकारमें लीजिये। वह आपके अधिकारमें आ जानेपर हमारे आपके जो झगड़े होंगे उन्हें हम आप निपट लेंगे। सत्ताको अपने अधिकारमें कर लेनेपर ये झगड़े निपटानेके लिये आपके पास बहुत समय होगा। यदि धर्म सम्बन्धी विश्वासमें मतभेद होगा तो भी हम उसे मिटा लेंगे। इसलिये हमें सत्ताकी आवश्यकता है। जो कुछ हमें अपने देशके लिये करना है उसे जितना हम जानते है उतना परकीय कदापि नहीं जानते। उनकी दृष्टि भिन्न होती है। अतएव अंग्रेजी गवर्नमेन्टका शासन स्थिर रहे और वही अंग्रेज सम्राट् जिस प्रकार वह साम्राज्य पर राज्य करता है उसी प्रकार भारत पर भी करेगा। परन्तु और और उपनिवेशोंमें जैसी व्यवस्था है वैसी ही यहां भी होनी चाहिये। उपनिवेशोंमें सत्ता, स्वामित्व, नियम रचनाका अधिकार सब कुछ उन्हीं (उपनिवेशवालों) के हाथ में है। इससे सम्राट्की कोई हानि नहीं होती। यह अंग्रेजी राज्यके दूर करनेका प्रयत्न नहीं किन्तु लोगोंके लिये उसे अधिक समाधानकारक बनानेका है। इससे कुछ लोगोंकी रोटियां छिन जायँगी, इससे इनकार नहीं हो सकता। (तथापि) केवल इन्हीं

लोगोंके लिये सम्राट्ने भारतको अपने अधीन रख छोड़ा है ऐसा हम नहीं समझते। ऐसा प्रबन्ध कुछ कारणोंसे हुआ होगा। वह दूर हो जाना चाहिये। सम्राट्को लोगोंके हाथमें अधिकार दे देने चाहिये और भारतीय और ब्रिटिश गोरी और काली प्रजामें किसी प्रकारका भेद न रखना चाहिये। सम्राट्की जैसी प्रजा वह है, वैसी ही हम भी है उसे जितने सुख है उतने ही हमें भी मिलने चाहिये। अनेक बुद्धिमान्, विद्वान् और विचारशील मनुष्योंने जिस वस्तुको इन सबकी कुंजी बताया है वह 'स्वराज्य' है। उसका समय आज आगया है। उस (स्वराज्य) का अर्थ मैं आपको पहले ही समझाकर कह चुका हूँ। उसका समय आगया यह भी मैं आपको बता चुका हूँ। परन्तु सभी बाते मौजूद हैं तौभी अन्तिम वस्तु आपका दृढ़ निश्चय है। जिस व्यवस्थाके विषयमें मैं कह रहा हूँ वह होने वाली होगी तो भी आप उसे प्राप्त न कर सकेंगे इसलिये आपका निश्चय आवश्यक है। उसकी प्राप्तिके सम्बन्धमें दैवयोगसे एक प्रकारका आन्दोलन इस समय आरम्भ हो चुका है। हालहीमें मैंने स्वराज्यके सम्बंधमें उद्योग करनेके लिये बेलगांवमें एक संस्था स्थापित की है। कांग्रेसके सामने तो यह विषय पहलेहीसे है और इसकी कुछ न कुछ व्यवस्था भी अब अवश्य ही करेगी। तथापि कई एक प्रान्तोंने अपनी व्यवस्था करली और उसे सहायता दी। कमसे कम इतना धैर्य अवश्य होना चाहिये कि यदि कोई जैसे—कलेक्टर, कमिश्नर आदि—'पूछे तुम्हें क्या चाहिये' तो हमें सत्ता चाहिये, सत्ता हमारे हाथोंमें होनी चाहिये। सरकारी नौकर लोगोंके नौकर समझे जाने

चाहिये। आप यह न सोचें कि आगे हमारे हाथोंमें सत्ता आने पर हम युरोपियनोंको नौकरियाँ न देंगे। यदि वे अच्छा काम करेंगे तो हम उन्हें नौकरियां देंगे और जो (वेतन) उचित समझेंगे देंगे। परन्तु उन्हींको हमारा नौकर होना होगा, उनके नौकर हम न होंगे। इस प्रकार की अभिलाषा मनमें रखकर यदि आप उद्योग करेंगे तो यह बात साध्य होने योग्य है। इसके लिये जिसे मददकी जरूरत हो वह कीजिये। इसे कहनेके लिये जो लोग आपके पास आवें उन्हें जिस प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता हो उसे करनेको आप तैयार रहें। भिन्न भिन्न स्थानोंके लोग केवल पूना, बम्बई और नगरके ही नहीं, मद्रास, बंगाल आदिके भी—सब स्थानोंके लोग तैयार होंगे तो यह बात शीघ्र साध्य है। इसकी सिद्धि के लिये—शीघ्र सिद्धिके लिये इसके उद्योगमें लग जाइये। इतना आपसे निवेदन कर और उसी तरह शीघ्र ही उस समयके आनेकी आशा रखकर कि जिसमें भारतके लिये कोई न कोई फल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगा इस व्याख्यानमें मुझसे जो कुछ प्रमाद हुआ हो या आप लोगोंके विषयमें जो कुछ अनुचित कहा गया है उसके लिये आपकी क्षमा मांगता हूँ। आप लोगोंका मैं अत्यन्त आभारी हूँ (तालियां)।

परिशिष्ट ३

(सरकारके लघुलेखकोंने यह व्याख्यान जैसा शुद्ध या अशुद्ध लिखकर दिया था, उसका ज्योंका त्यों अनुवाद नीचे दिया जाता है।)

लो० बाल गंगाधर तिलकका दूसरा व्याख्यान जो उन्होंने "होमरूल" पर नगरमें दिया था।

ता: १ जून सन् १९१६

स्थान—पुराना कपड़ा बाज़ार, नगर।

समय—रात ६-१५ बजे।

श्री० चौकर वकीलकी प्रार्थनापर लो० तिलकने निम्न लिखित वक्तृता दी।

कल यहां मेरा व्याख्यान हुआ था। मैंने समझा था कि अब दुबारा फिर व्याख्यान देनेकी बारी न आवेगी। स्वराज्य के विषयमें जो दो चार सामान्य बातें एक घंटेमें मै कह सकता था उस समय मैंने वह कह दीं। पर यह विषय ऐसा व्यापक है कि उसपर एक ही क्या दस व्याख्यान भी हों तो वे पूरे नहीं हो सकते। अतएव कल इस विषयकी जो दो एक बात छूट गई थीं वेही बातें आज मै कहूँगा। इन बातोंसे यह विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा, लोगोंकी समझमें जल्दी आवेगा, लोगोंकी कल्पनाएं और विस्तृत होंगी। साधारणतः मेरा यह मत है कि हमें जो कुछ सुधार चाहिये हैं वे स्वराज्यके सुधार हैं। आपको वह कथा मालूम होगी कि जिसमें उस बुढ़ियाने यह बरदान

माँगा था कि मैं अपने जीते जी अपने नाती पोतोंको सोनेके बर्तनोंमें खाते देखूँ। इस वरदानमे उसने अपने दीर्घ जीवनकी प्रार्थना की। साथ ही लड़का होनेकी इच्छा प्रदर्शित की, धनवान् होनेकी भी प्रार्थना की और अन्तमें नाती पोतोंके देखनेकी अभिलाषा भी प्रकटकी। इस छोटेसे वरदानमें उसने सब बातें इकट्ठा माँग ली। ठीक वैसी ही बात स्वराज्यकी है। यदि स्वराज्य नहीं मिलेगा तो औद्योगिक उन्नति नहीं होगी, किसी तरहकी प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा आदि सब बातोंका मिलना सम्भव नहीं है। स्वाराज्य यदि नहीं मिलेगा तो केवल स्त्री शिक्षा बढ़ाकर ही काम न चलेगा, औद्योगिक सुधारोंसे भी कुछ न होगा, न सामाजिक सुधार कुछ कर सकेंगे। ये सब स्वराज्यके अंग है। पहले अधिकार चाहिये। जहाँ अधिकार होंगे वहीं बुद्धि भी होगी। बुद्धिमानी अधिकारसे अलग नहीं रह सकती। यदि रहे भी तो वह किसी कामकी नहीं है। किसी देशमें इस विषयको इतने विशद रूपसे समझानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती पर हमारे देशमें उसकी विशेष आवश्यकता है। इसका कारण यही है कि हम स्वराज्य भोगी नहीं है। कुछ लोग हमारे इन कार्योंपर यह आक्षेप करते हैं कि आप सामाजिक सुधारोंकी ओर क्यों ध्यान नहीं देते? यह हम लोगोंका कथन नहीं है यह दूसरोंका कटाक्ष जो एक सीधे मार्गपर चलने वाली गाड़ीको घुमाकर दुसरे निराले मार्गपर ही ले जाया चाहते है। ऐसी अनेक जातियाँ है जो समाज-सुधारमें बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। ब्रह्मदेशमें समाज सुधार बहुत हुआ है। वहाँका धर्म एक ही है। वहाँ उन्हें

जो बात बतलाइये वे करनेके लिये तैयार रहते हैं उनके लड़के जिससे चाहते है उनसे विवाह करते हैं पर राष्ट्रीयत्व की भावना किसी बातमें भी नहीं दिखाई देती वह देश पूर्णतया परतन्त्रताकी बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ है और अब क्या चाहिये ? हम एक राष्ट्र है हमें इस संसारमें कुछ न कुछ करना ही है। मनुष्यके जो अधिकार प्रकृतिसिद्ध हुए है वे हमें चाहिये हैं—स्वतन्त्रता हमें चाहिये। अपने कारोबार देखनेके हक हमें चाहिये हैं। ये सुधार यदि हमें न मिलेंगे तो हमारी एक आशा भी सफलीभूत न होगी। यही सब सुधारोंकी जड़ है। न कोई अधिकार है न कोई बुद्धिमानी ही काम आती है। केवल पुस्तकीय बुद्धिमानी व्यर्थ है। ऐसी यदि आपकी कल्पना हो कि राज्यकर्ता हमारे ऊपर जो राज्य करने आये हैं वे हमसे अधिक बुद्धिमान हैं और उनमें विद्या भी अधिक है। मेरी निजकी यह कल्पना नहीं है। उनकी जैसी विद्या, उनकी जैसी बहादुरी, उनकी जैसी कर्तृत्वशक्ति हम भी दिखा सकते हैं। शायद वह आज न दिखाई दे पर वह हममें है। ज्योतिषमें जिस तरह योग–अवसर–बतलाए हुए हैं उसी तरह इतिहासमें भी योग होते है। मुसमानोंका राज्य जब शिथिल हो रहा था उसी समय महाराष्ट्रोंका उदय हुआ। आगे चलकर अंग्रेज़ हिन्दुस्तानमें आये और उनकी प्रगति होकर सारी सत्ता उनके हाथोंमें चली गई। उनकी हम जो बड़ाई गाते हैं, उनकी कर्तृत्वका हमें जो अभिमान मालूम होता है चाहे वह सच हो या झूठ–वह अभिमान, उनकी वह प्रशंसा आदि सब बातोंका कारण उनकी सत्ता है। और जब इस अधिकारके अंशतः भी तुम हिस्सेदार होंगे तब तुम्हारी

बुद्धिमत्ता दिखाई देगी। बहुत सी बातें हमें आज चाहिये हैं। हमारे उद्योग धंधोंमें सुधार होने चाहिये; पर वे क्यों नहीं होते ? उन्हें कौन रोकता है ? इसके कारणका विचार किया जाय तो मालूम होगा कि औद्योगिक सुधारों को हमने नहीं रोका, आर्थिक सुधार हमने नहीं रोका। जिस राष्ट्रमें उन्नत होनेके लिये अपनी कर्तूत दिखानेके मार्ग खुले हुए हैं उसी राष्ट्रके गुण दृष्टिगोचर होते हैं...... तुममें बुद्धि होती है और उस बुद्धिसे किसी बड़े अधिकारी को मदद कर जब वह तुम्हारी पीठ ठोकता है तब तुम्हें मालूम होता है कि तुममें कुछ कर्तृत्व है। यह एक तरह की कमी—अप्रगति शीलता जो उत्पन्न हुई है वही सारे राष्ट्रको घेरे हुए है। कहते है कि मुझसे नहीं होगा-मैंने कभी किया नहीं-मुझे कहींसे सनद नहीं मिली,-इसके पहले ही तू क्यों चिल्लाता है कि अमुक बात मुझसे न होगी। इस तरह कहकर भिन्न मार्गका अवलम्बन करते है। कमसे कम हमारे महाराष्ट्रमें इस तरह लोग कहकर स्वराज्यके आन्दोलनमें बाधा पहुँचावें यह बड़े दुर्दैव की बात है। इस बातका विचार करना चाहिये कि क्या हमने ये बातें की। राष्ट्रके लिये उपयुक्त साधन तैय्यार करनेका गुण महाराष्ट्रमें अवश्य है, पर उन गुणोंका उपयोग करनेका अवसर इस समय हमें नहीं मिल रहा है। दूसरा कुछ कीजए, स्त्रियोंको सुशिक्षित कीजिये, यह कीजिए वह कीजिए ऐसा कहनेसे हमारी उधर प्रवृत्ति नहीं होती (हँसी) किसीको इसमें (स्वराज्यके आन्दोलनमें) कुछ धोखा मालूम होता हो तो वे उन बातोंको करें पर मेरी दिलजमई नहीं हो सकती, न हुई है-और जो कुछ थोड़ेसे वर्ष और

बाकी रह गये हैं-उनमें भी होनेकी सम्भावना नहीं है। (हँसी)। और और विषयोंके संबंधमें बोलना व्यर्थ है। हम लोग आज बहादुरी, विद्या और चतुरतासे पूर्ण नहीं हैं। हमारी स्त्रियाँ पढ़ी लिखी होनेपर वह पीढ़ी इन गुणोंसे युक्त होगी-पर होगी तो हमारे ही वीर्यसे—(हँसी) ऐसी यदि किसीकी समझ है तो वह गलत है। मैं यह नहीं कहता कि स्त्री शिक्षा हमें नहीं चाहिये बल्कि इधरका आन्दोलन बन्द करनेके लिये जब उधर घूमनेको कहा जाता है तब हम यह कहते हैं कि राष्ट्रको मुर्दा बनानेका यह उपाय है। हममें यदि शक्ति नहीं है किसी बातको प्राप्त करनेकी हिम्मत नहीं है तो पढ़ी लिखी स्त्रीसे जो संतान उत्पन्न होगी वह हमारे पुत्र हमारे उद्धारका प्रयत्न करेंगे ऐसा कहना निरी मूर्खता है। (हँसी) तुम्हें अपने पैरोंके बल खड़ा होना चाहिए। तुम्हें इन बातोंको करना चाहिये और उसमेंसे मुख्य बातको पहले करना चाहिये। जिन्होंने आज ५० वर्ष तक प्रयत्न किये हैं उनका यह अनुभव है कि स्वराज्य इन सब प्रतिबंधक फाटकोंकी कुंजी है। यह यदि तुम्हारे हाथ लग जाय तो फुटकर सुधार सहजहीमें हो सकते है। तुम्हें यदि स्त्री शिक्षा आदि सुधार करने हों तो करो मेरा कहना कुछ भी नहीं है पर वे सब बाते इसकी (स्वराज्यका) पोशाक है। इसी बातको लक्ष्य कर मैंने कल जो कहा था उसी विषय पर मैं आज भी कहूँगा। स्वराज्यका अर्थ अंग्रेजोंको यहांसे निकाल देना नहीं है—बादशाह कोई हो उससे हमें कुछ मतलब नहीं है। हमारे हक हमें मिल जांय बस यही हम चाहते है। फिर चाहे वे किसी बादशाहके दिये क्यों न

हों। इंग्लैण्डमें, राजा है पर वहां अंग्रेजोंको हक है या नहीं? इंग्लैण्डका राजा ही हमारा बादशाह है। यदि इंग्लैण्डमें उसका राजत्व कायम रह कर अंग्रेजोंको स्वतंत्रताके हक मिलते है तब भारतमें वही राजा बादशाह कायम होकर ब्रिटिश नागरिकत्वके हक हम लोगोंको मिलनेमें कौनसी अड़चन है? किसी प्रकारकी अड़चन नँ होनी चाहिये। यह जो अनर्गल बात फैलाई गई है कि होमरूल—स्वराज्य-का आन्दोलन राजद्रोही है और उसे राजद्रोह समझ अभी हालहीमें मिसेज बीसेन्टसे दो हजारकी जमानत ली गई है-यह निरर्थक है यह आक्षेप बादशाहका नहीं है, प्रजाका नहीं है बल्कि यह बीचवाले जो दलाल है उनका है (हंसी) हमारा कहना बस यही है कि यह राज्य व्यवस्था बदलनी चाहिये। राजा न बदलना चाहिये। जिस पद्धतिसे, जिस व्यवस्थासे इस समय शासन हो रहा है उसके न बदलनेसे, उसमें आवश्यक परिवर्तन न होनेसे हिन्दुस्तानी अधिक नामर्द—शूरत्व हीन हो जायगे। कुछ लोगोंका कहना है कि.......... ..खानेको तो मिलता है—किसीको मारते नहीं-पशु पक्षीतक आरामसे खाते पीते है। पेटभर खानेको मिलना कुछ पुरुषार्थ नहीं है। अपने परिवारका पोषण करना पुरुषार्थ नहीं है। "काकोपि जीवति चिराय बलिंच भुँक्ते" कौवा भी अपना निर्वाह करता है। कौवोंको खेत तयार नही करने पड़ते। उसे प्रति दिन पका पकाया भात मिल जाता है। उदरनिर्वाह कर राज्य नियमोंकी मर्यादामें उन्होंने जो मार्ग खुले रक्खे हों उन्हीं मार्गोंका अवलंबन कर हुक्म मानने, उन्हींके कथनानुसार उदर निर्वाह करनेमें मैं पुरुषार्थ नहीं समझता। पशु धर्ममें और

इसमें भेद नहीं है। मनुष्यमें यदि मनुष्यत्व चाहिये हो तो हमारी बुद्धि हमारी कुशलता, हमारी हिम्मत आदिके लिये कुछ प्रदेश साफ रहना चाहिये। हिन्दुस्तानके लिये वैसा खुला प्रदेश नहीं है। अतएव यदि तुम्हारा कुछ कर्तव्य है तो वह यही है कि इस अधिकारका कुछ अंश अपने हाथोंमें लो। थोड़ा ही अंश क्यों नहो। नगर जिला परिषदके अध्यक्ष श्रीयुत केलकरका यह कहना बहुत ठीक था कि थोड़ेहीमें हम स्वतन्त्र रहें—हमारा धन हमें खर्च करनेका, हम जो कर देते हैं उनको उचित रीतीसे व्यय करने आदि बातोंका विचार हम अपनी बुद्धिसे न करेंगे, दस पांच आपसके बड़े लोगोंकी सलाह न लेंगे और इस तहरकी उमेदें न करेंगे तो सृष्टि नियमानुसार—मनुष्योंमें जो इस प्रकारके कार्य करनेकी बुद्धी रहती है वह हममेंसे कम होजायगी और इस प्रमाणसे पशुओंकी कोटिम हम अधिकाधिक मिलते जायंगे। स्वराज्य क्या वस्तु है? और उससे क्या होगा? स्वराज्यका मतलब यह नहीं कि अंग्रेज कलेक्टर बदल कर उसकी जगह हिन्दुस्तानी रक्खा जाय। वे अंग्रेज रहें तो भी हमें चाहिये ही हैं। अमुक मनुष्यको बदल कर अमुक मनुष्यको रखिये ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। शायद गोरा मनुष्य तनखाह देनेपर हमारा भी नौकर रहे और अच्छा हो तो हम उसे रखेंगे भी; पर यह व्यक्तिगत वाद नहीं किन्तु राष्ट्रका वाद है। मुख्य प्रश्न यह है कि अमुक राष्ट्रको पशुकी तरह चलाना चाहिये या उस राष्ट्रमें मनुष्य हैं यह समझ कर उनकी मनोवृतियों को और स्वतन्त्र बुद्धियोंको कुछ उत्तम मार्ग बतला कर उन्हें सुधरे हुए राष्ट्रोंकी पंक्तिमें लाकर बिठाना चाहिये।

इस दृष्टिसे विचार करनेसे तो सिवा स्वराज्यके—अधिकार प्राप्तिके बिना—कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वह सत्ता—वह अधिकार जब एक बार हम लोग पा जायंगे—तब हम हजारों बातें कर सकेंगे। पुनेमें बड़ा भारी प्रयत्न इसलिये किया गया कि अमुक जगह शराबकी दूकान—सरकारको भले ही उससे हजार दो हजार मिलते हों—उठ जाय उसे उठाने को हम लोगोंको अधिकार नहीं है। अमुक जगह शराबकी दूकान रहनी चाहिये या न रहनी चाहिये इसके लिये इतने बड़े पत्र—व्यवहार की क्या आवश्यकता है? इस बड़े प्रयत्नके लिये जितने कागज खर्च हुए हैं उतना शायद दुकानका मुनाफा भी न होगा। (हंसी और तालियां) यह जो इतना द्राविड़ी प्राणायाम करना पड़ता है और फेर-वटोंसे काम लेना पड़ता है वह सब बन्द हो और अधिकार हमारे हाथोंमें आवें तभी हमारे वंशपरंपरागत गुणोंका उत्कर्ष हो सकता है। उन गुणोंका हम जिस तरह चाहे उपयोग करनेमें स्वतन्त्र रहेंगे। यही स्वराज्यका अर्थ है और दूसरा कोई नहीं। थोड़ा ही क्यों न हो पर वह दुख-दाई नहीं होता। अब कोई यह सवाल करे कि स्वराज्यके लिये इतने भगीरथ प्रयत्न क्यों करते है? इसका उत्तर यही है कि एक राष्ट्रीयत्वकी बुद्धि व्यक्तिकी अपेक्षा समुदाय अथवा समाजका लाभ करनेका जो कर्त्तव्य है उसे करें, भूले नहीं। एक समय वह था जब महाराष्ट्र देशमें ऐसे पुरुषरत्न थे जिनमें उनके उद्देश्यकी जागृति सदा बनी रहती थी। पर दुर्भाग्यवश वह मनुष्य स्वभाव लुप्त हो गया। हमारा काम यदि कोई दूसरा करता है तो हम कहते हैं कि चलो ठीक हुआ। काम होनेसे मतलब भला, बुरा पह-

चाहनेकी बुद्धि अभी हम लोगोंमेंसे नष्ट नहीं हुई है। अंग्रेज हमारा राज्य चला रहे हैं और हम लोग बैठे हुए है। पशुशालामें यदि गन्दगी हो तो वह साफ की जाती है-Sanitation-देखते हैं समय पर खाने को देते है, पानी पिलाते हैं पर यदि पशु यह प्रश्न करें कि यह-व्यवस्था हम लोगोंके हाथमें आनी चाहिये। (हँसी) तो..................मनुष्यों और पशुओंमें भेद इतनाही है कि शहरका Sanitation कलेक्टर साहब देखते है, रोग इत्यादि फैले हो तो उनके दूर करने का उपाय वे करते है, अकाल पड़ने पर उसके निवारणकी व्यवस्था भी वही करते हैं, तुम पर कोई बिपत पड़े तो उससे बचानेका प्रयत्न भी वही करते है। अर्थात् हमारी अवस्था ठीक वैसीही हुई है जेसी पिंजरों में फसे हुए तोते की। ऐसी स्थिति हमें नहीं चाहिये : इसका केवल एक कारण यह नहीं है कि वे हमपर हुकूमत कर रहे है बालिक जिन प्रणालीसे वे कार्य कर रहे हैं उससे हमारे शरीरों के गुण प्रायः लुप्त हो रहे हैं। वे इस तरह नष्ट न हो, उनका विकास करनेके लिये हमें अवसर मिले, वे करते है वही हम करें बस इससे बढ़ कर और कुछ नही चाहिये। वे जो करते है उसे छोड़कर भिन्न कोई दूसरा काम हमें करना नहीं है। पर जैसी स्थिति है वैसी होना बहुत ही बुरा है। केसरीमें एक ऐसे तोतेकी कहानी प्रकाशित हुई थी। सर रविन्द्र नाथ टागोरने अपने आत्म चरित्रमें एक परतन्त्र और एक स्वतन्त्र तोतेकी बात चीत दी है। जिसमें स्वतन्त्र तोता परतन्त्र तोतेसे कहता है, कि बाहर मैदानमें बड़ा आनंद है। जहां चाहे तहां घुमनेको मिलता है। जब चाहे तब भोजन मिलता है। यह आनंद तुम्हें

कहाँ है ? परतन्त्र तोतेने जवाब दिया कि भाई तुम जो कहते हो वह सब ठीक है पर यह सोनेका अड्डा जिसपर मै बैठा हूँ वह मुझे बाहर कहां मिलेगा ? हम लोगोंकी ठीक वैसीही स्थिति है ! स्वराज्य मिलने पर उसे कैसे चलावेंगे ? न कोई देता है न लेता है और तुम यह चिन्ता कर रहे हो कि स्वराज्य मिलने पर उसे किस तरह चलावेंगे ? यदि वह बंद तोता बाहर आयगा तो उसे वह पिंजरा कहाँ मिलेगा, वह सोनेका अड्डा कहाँ मिलेगा। वैसीही हम लोगोंकी भी स्थिति हुई है और यह अवस्था स्वाभाविक नहीं है, यह कृत्रिम है। कई वर्ष पिंजरेमें बंद रहनेके कारण उस तोतेमें जैसी यह भावना उत्पन्न हुई उसीतरह अधिकार हीन होनेसे हम लोगोंमें भी वही भावना उत्पन्न हुई है। यह हमारी असल स्वाभाविक-मनुष्यकी स्वाभाविक-भावना नहीं है। जिस तरह तोतेकी यह भावना स्वाभाविक नहीं उसी प्रकार हमारी यह राष्ट्रीय भावना भी स्वाभाविक नहीं है। जो काम आ पड़ता था उसे करनेके लिये जो लोग सदा तैयार रहते थे उन्हींके वंशज हम लोग भी है और यदि हम उनकी सच्ची संतान है तो वैसा मौका मिलने पर उनके गुण हममें प्रगट होने चाहिये और होंगे यही विश्वास कर हमें उद्योग करने चाहिये यही मेरा कहना है। अनुवंशिक संस्कारोंका यदि कुछ मूल्य है तो उसे दीजिये नहीं तो यह कहना छोड़ दीजिये कि ये फलानेके लड़के, फलानेके नाती हैं। इस समय हम लोगोंमें बहुतसे सरदार हैं। वे कहते हैं कि हमारे नाना-सरदार थे, हमारे परदादा सरदार थे। उनमें उनके-पूर्वजोंके रक्तके गुण विद्यमान हैं। पर उन्हे जो जागीरें मिली हैं उन्हें बचाने

के लिये वे साहबोंकी (!) जिस तरह हो सके सेवा करते हैं। अच्छा इनको तो जाने दीजिये। पर हम तुम जिन्हें कुछ भी नहीं मिलता—वे भला क्यों उनके फन्देमें फँसते हैं? राष्ट्रपर जो इस तरह की एक छटा फैली हुई है उसे हमें दूर करना है। यह ग्रहण है। चंद्र-ग्रहण जब होता है तब लोग दान करते हैं, परन्तु तुम्हें जो ग्रहण लगा हुआ है उसे छुड़ानेके लिये तुम एक पैसा भी खर्च करनेके लिये तैयार नहीं हो। इतनाही नहीं बल्कि उसको हटाने के लिये तुम जरा इधर उधर हिलना भी नहीं चाहते हो। पहले चंद्र-ग्रहण आदिमें ब्राह्मण जपतप किया करते थे। तुम इस ग्रहणके लिये कौनसा जप कर रहे हो? कौनसा प्रयत्नकर रहे हो? इसके लिये क्या आप किसीको एक पैसा भी देनेके लिये तैयार हैं? नहीं, बिलकुल नहीं। अधिकारी आक्षेप करते हैं कि हिन्दुओंको अधिकार देंगे तो मुसलमान किस तरह राजी होंगे? हिन्दुओंको स्वराज्यके अधिकार दिये जाँय तो मुसलमानोंको नहीं मिलेंगे। हिन्दुओंके हाथोंमें अधिकार चला जायगा तो वे मुसलमानोंपर अत्याचार करेंगे और मुसलमान अधिकार सम्पन्न होंगे तो हिन्दुओं पर अत्याचार करेंगे। ये बातें ये लोग तुम्हें कहते हैं। ऐसा क्यों करते हैं? तुम्हें भ्रममें डालनेके लिये। तुम्हें इनकी बातोंका खूब विचार करना चाहिये। ये सिविल सर्विस वाले लोग तुमसे कहीं अधिक होशियार हैं। वे अधिकार अपने हाथोंमें रखना चाहते हैं। यह इसापनीतिकी "अयाणां धूर्तानाम्" वाली कहानीका सा व्यवहार है। राजकीय कामोंमें यदि तुम कुछ मांगते हो तो वे तुम्हें बतलाते हैं कि तुम कमजोर हो, नामर्द हो तुम्हारे विरुद्ध मुसलमान

खड़े होंगे। यदि मुसलमान कहते हैं कि हमें इसमें कोई हर्ज नहीं है, तो किसी और तीसरेकी ओर उँगली दिखाते है इसी तरह यह धूर्तता चल रही है। इस धूर्ततामें न फँस कर वैध मार्गोंसे हक प्राप्त करनेके लिये बराबर आगे बढ़ते रहो। उस मार्गपर चलते रहो और बीचमें कोई कुछ कहे तो बिलकुल मत सुनो। तुम सदा यह कहनेके लिये तयार रहो कि अमुक वस्तु हमारी है और वह हमें चाहिये। जब तक तुम दृढ़ निश्चय नहीं कर लोगे तबतक कुछ नहीं हो सकता। यदि कोई पुलिस अफसर पूछता है कि "क्यों तुम तिलकका या मिसेज एनीबसेन्टका व्याख्यान सुनने गये थे" तो उत्तर मिलता है कि "हाँ खतम होते होते गया था। दूर बैठा था। मैं अच्छी तरह सुन भी न सका (हँसी) नहीं भी कैसे कहा जा सकता है क्योंकि पुलिसकी नजर सबों पर होती है। ऐसा डर तुम लोगोंके हृदयमें क्यों समाया है? 'हमें स्वराज्य चाहिये' यह कहनेमें डर क्या है? जो कुछ अड़चनकी जगह है वह यही है। श्रोतासे यदि पूछा जाता है तो पीछेसे ठीक कह देता है पर पुलिस के पूछने पर कहता है कि "मैंने अच्छी तरह नहीं सुना। दो चार आदमी वैसा कह रहे थे। मेरा वैसा मत नहीं है।" इस काममें डरपोक बननेसे काम नहीं चलेगा। डरपोक होनेसे कोई देवता प्रसन्न नहीं होते। वह देवता जानते रहते हैं कि तुम्हारे चित्तमें क्या है? और ये जो सब जानने वाले देवता है उनमें स्वतंत्रता देवीका इस विषय पर बड़ा कटाक्ष है। तुमें जो चाहिये है स्पष्ट शब्दोंमें मांगो और देंगे, शायद एक दो बार इनकार कर जाँय। पर कितनी बार नाहीं करेंगे? यह निश्चय समझ

इसलिये कि यह मामूली काम नहीं है। हर एक देवता, जबतक तुममें कुछ सामर्थ्य नहीं होता डर दिखलानेका प्रयत्न करते हैं। हमारे योग शास्त्रोंमें भी देवता साधनेका आदेश है। वे साधकको डर दिखलाते हैं पर साधकको कार्य दृढ निश्चयके साथ अभ्यास करते रहना चाहिये। योगशास्त्रका यह प्रमेय है कि डरकी कुछ भी परवा न कर दृढ निश्चयके साथ अपना कार्य करते रहनेसे देवता प्रसन्न होते है। यही न्याय भी है। राजकीय विषयोंमें भी यही बात है और दूसरा कोई मार्ग नहीं है। 'हमें वही चाहिये उसे (स्वराज्यको) प्राप्त करेंगे और उसे प्राप्त किये बिना अपने प्रयत्न नहीं छोड़ेंगे, जब तक ऐसी दृढ भावना तुममें नहीं होगी तब तक यह बात हो नहीं सकती। डर हमेशा पीछे लगा रहेगा। पुलीस पीछे पड़ जायगी। खुफिया पुलीस पीछा करेगी। पर अन्तमें कार्य सिद्धि अवश्य होगी। इन लोगोंकी घुड़कियोंसे मत डरो किन्तु यह समझो कि यह इसीका निश्चित परिणाम है। अंग्रेजीमें एक मसल मशहूर है कि 'अँधेरेसे निकले बिना उजियाला कैसे दिखाई दे'? सूर्यको सबेरे उगनेके लिये अँधेरेमेंसे जाना पड़ता है। साधारण लोगोंके समझकी यह बात है। शास्त्र ऐसा नहीं मानता। अँधेरेसे बिना गुजरे उजियाला नहीं दिखाई देगा उसी तरह इन झंझटों, यन्त्रणाओं और लोगोंकी घुड़कियोंके बिना पार किये स्वतन्त्रताकी प्राप्ति नहीं होगी। दृढ़ निश्चयकी बहुत आवश्यकता है। स्वराज्य की व्यापकता मैने आपको बतलाई है उसके लिये प्रयत्न भी उतनेही जोरोंके साथ होने चाहिये। ईश्वरके कृपा से आज पृथ्वीमें परिवर्तन हो रहे हैं। भाविक शब्दोंमें

इसका मतलब यह है कि ईश्वर सहायता देनेके लिये तैयार है। पर ईश्वरके तैयार होनेपर आप कहां तैयार है? (हँसी) ईश्वर स्वस्थ है। आकाशमेंसे वह तुम्हें सौगात भेजे! नहीं; ईश्वर भी ऐसा नहीं करता और यदि वह ऐसा करे भी तो उसका उचित उपयोग नहीं होगा। क्योंकि तुम डरते हुए चल रहे हो और जब डरोगे तब जैसे हो वैसेही बने रहोगे। और उसका कुछ भी उपयोग न कर सकोगे। अर्थात् ईश्वरकी यदि कोई निश्चित जगह हो तो उसे वहां फिर लौटा दो। पोस्टसे जाती हो तो भेजिये। (हँसी) राष्ट्रीय हक क्या है यह मैने आपको बतला दिया है। अब आज मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि सत्ता अर्थात् अधिकार हम लोगोंके हाथमें आनेसे क्या होगा तथा राष्ट्रपर उसका क्या परिणाम होगा? मेरे मित्र श्री. केलकर बतलाही चुके है कि स्वराज्यका मतलब अंग्रेजोंको यहाँसे निकाल कर अपना अधिकार करना नहीं है। कुछ लोगोंको अवश्य निकालना पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि राजाको न मानकर राजसत्ता हाथमें ली जाय अर्थात इसका असल तात्पर्य है प्रजाके हकोंको हाथमें लेना। इस एक राष्ट्रको गुलाम रखनेमें इंग्लेंडको क्या कुछ लाभ है? इस बातका यदि पूर्णतया विचार किया जाय और इस समय सारे संसारकी अवस्था देखी जाय तो यह दिखाइ देगा कि कभी न कभी इंग्लैंडको उसके सम्राज्यके अवयवों-प्रान्त और देशों-को स्वतन्त्र करना पड़ेगा। कभी न कभी यह बात अवश्य होगी और होनी चाहिये। पर हम यदि उसके लिये कुछभी न करें तो क्या होगा? कुछ नहीं, तुम्हारी स्थिति ठीक वैसीही होगी जैसी कि उस मनुष्य

की होती है जो सारी रात चोरकी ताकमें बैठा रहे और उसके आनेके समय सो जाय। ऐसी हालतमें यदि स्वराज्यके हक मिल भी जाय तो क्या लाभ होगा? क्या होगा इसका हाल मैं आपसे थोडेहीमें कहता हूँ। पेशवाओंके समयमें क्या हुआ? इसके लिये थोड़ासा इतिहास देखनेकी आवश्यकता होगी। उस समय महाराष्ट्रमें उचित रीतिसे काम हो रहा था। ऐसी पेशवाई जिन्होंने डुबाई और डुबाने पर जो कमिश्नर हुये वे Elphinstone साहब थे। वे उस इतिहासके साक्षी हैं। वे कहते हैं कि इतने बड़े पूना शहरमें रातको कभी चोरी या डाका नहीं पड़ा। शराब बिलकुल नहीं बिकती थी। उसके आनेकी मनाई थी। जमाबंदी आदिकी पद्धति जो नानाफरनवीसने जारी कर दी थी उसीकी नकल आगे की गई। इतनाही नहीं बल्कि जमाखर्च कैसे रक्खा जाय-accounts कैसे हो इस शासनका विकाश पेशवाईके समयमें ही हुआ और वेही अकांउटस् अब भी रक्खे जाते है। प्रान्तोंका शासन किस तरह करना चाहिये यह हम लोग भली भांति जानते थे। नानाफरनवीसका गुप्तचर विभाग इतना उत्तम था कि वे यह सहजहीमें समझलेते कि अमुक सरदारने अमुक मनुष्यसे भोजन करते समय ऐसी ऐसी बातें कहीं। (हंसी) एक समयकी ऐसी बात बतलाते हैं कि खोपोली घाटसे बम्बई सरकारने रेजीडेण्टके पास गोला बारूद म्याने (पालकी) में भरकर भेजी। पूनाकी कचहरी से हुक्म दिया गया कि अमुक तारीखको जो पालकी घाट पर होकर गुजरे वह रोक ली जाय। वे जान गये थे कि पालकीमें गोला बारूद जाने वाली है। आगे रेजिडेण्टने

प्रार्थना की कि हमारी पालकी क्यों रोकी गई ? तब नाना-फरनवीसने जवाब दिया कि "इसका विचार तुम्हें स्वयं करना चाहिये। हमने पालकी जब्त की है, उसे नहीं छोड़ेंगे। राज्यमें जो कुछ हो उसकी खबर राजाको लगती ही रहे। हमने भी वैसा ही किया है।" C. I. D. चाहिये ही, उसे नामंजूर कौन करता है ? यदि राजाको सब बातें मालूम न रहेंगी तो राज्यका काम चल ही नहीं सकता। सी० आई० डी० के विषयमें हम लोगोंकी कोई शिकायत नहीं है। शिकायत है तो केवल उनकी काम करनेकी पद्धति पर। (हंसी, तालियां) जिसे राज्य करना है उसे सब विभाग चाहिये। पुलिस चाहिये, खुफिया विभाग चाहिये, रेवेन्यू विभाग चाहिये, जुडिशल विभाग चाहिये, सब विभाग चाहिये। लेकिन सब बातें रुकती कहां है ? एक ही जगह। यही कि सब कारोबार लोगोंके हाथमें—हम लोगोंके द्वारा चलाया जाना चाहिये। सुधार किसे नहीं चाहिये है ? सब लोग सुधारोंको पसन्द करते हैं। नानाफरनवीसके जमानेमें चिट्ठीयां भेजकर काम लिया जाता था। अब C. I. D तारसे काम निकाल सकती है। ऐसे ऐसे साधन अब प्रस्तुत है। इन्हीं सब से लाभ उठाकर काम चलाना होगा। पेशवाओंका राज्य जब नष्ट हुआ उस समय नगर, सातारा, पूना ये पेशवाके अधिकारमें थे। वे बादको अंग्रेजोंके हाथमें आये। पेशवाओंके जो हस्तक थे, जो उस समय बड़े बड़े सेनापति थे ऐसे सेनापतियों और जागीरदारोंमें मुखिया बड़ोदा होलकर, सेंधिया अंग्रेजोंसे मिलनेके कारण बच गये और पेशवा नष्ट हो गये। यह १८१८ का इतिहास है। आज

इन तीनोंकी कैसी दशा है और पूनाके आसपासके मुल्क या जिलोंकी कैसी अवस्था है इन बातों पर पूर्ण विचार कीजिये। ये तीन जिले अंग्रेजी सरकारके अधीन हुए और इनका सारा कारोबार धीरे धीरे एक ब्यूराक्रेसीके हाथोंमें चला गया। इस ब्यूराक्रेसीका सिद्धान्त यही है कि लोगों की बातोंको न सुनना। पहले गवर्नर, फिर कमिश्नर, कलेक्टर, असिस्टेण्ट कलेक्टर, तहसीलदार, नायब तह-सीलदार थानेदार, पुलिस, इस तरह ब्यूराक्रेसीके अधि-कारी हैं और प्रजाका जो कुछ काम है वह येही लोग करते हैं। बड़ी सरकारको जो बात भली मालूम होती है उसीके अनुसार वह आदेश करती है और नीचेकी सरकारोंमें उनका प्रबन्ध हो जाता है। पहले पहल यह प्रबन्ध बहुत ही अच्छा मालूम हुआ। यह भी कहीं कहीं सुनाई देने लगा कि बाजीरावकी धींगा धींगी कम हुई और हम लोग सुरक्षित हो गये। परन्तु यह ठीक वैसाही हुआ जैसे कि घी तो दिखाई दे पर उसका कुप्पा न दिखलाई पड़े। (हंसी) वह बादको धीरे धीरे दिखाई देने लगा। सारे अधिकार इन अधिकारियोंके हाथोंमें चले गये और जो उस समयके लोग बचे थे उन्हें उससे अच्छा उपदेश मिला। हम लोग रेलका उपयोग करने लगे अमुक जगह हम पहुँचेंगे या नहीं यह जल्दी बतलानेके लिये हम तार भेज सकते हैं। हम लोगोंमें कुछ शिक्षाका प्रसार हुआ ये सब फायदे हुए अवश्य, पर असलमें जो हमारे अधिकार थे वे सब धीरे धीरे अधिकारियोंके हाथोंमें चले गये। कम्पनीके समय हीमें धीरे धीरे वे जा चले थे और १८५८ में जो एक्ट पास हुआ था तबसे आजतक कुछ अधिकार छिन गये। इन

४८ वर्षोंमें क्या हुआ ? अधिकारी बलवान हो गये। शक्तिशाली हुए। लोगोंके अधिकार कम हो गये। वे यहां तक कम होगये, कि कुलकर्णी (पट्टेदार आदि) भी अधिकारियोंको नापसन्द होने लगे। उन्हें सब नौकर चाहिये हैं। जिनके खानदानमें हम हैं, वे भी गये।

जो पुराने जमानेमें बड़े बड़े सरदार, इनामदार, मनसबदार आदि थे उन्हें सरकारने घर बैठे पेन्शन देनेका बहाना दिखलाकर उनसे वे अधिकार कम कर डाले। वे (सरदार) भी सोचने लगे चलो अच्छा हुआ। घर बैठे रुपया मिलही जाता है। इतनी दिक्कत उठानेकी क्या आवश्यकता है? पर उस समय इन लोगोंमेंसे किसीने यह नही कहा कि हम लोगोका सेना रखनेका, तथा सरकार के लिये लड़नेका हक छीना जा रहा है। इन्हीं सब बातों के समयपर न होनेसे हम लोगोंकी ऐसी स्थिति हुई है। ५०। ६० वर्षोंमें इन सब प्रान्तोंके अधिकार युरोपियन अधिकारी वर्गके हाथोंमें चले गये है। इससे आप यह न समझें कि मै युरोपियन अधिकारियोंको बुरा समझता हूं। वे बहुत पढ़े लिखे होते है। विलायतसे जो अच्छे विद्यार्थी आते है उन्हें ये जगहें दी जाती है। उनकी कर्तृत्वशक्ति अधिक रहती है। इतनी होने पर भी हम लोगोके लिये काम करनेमें उन्हें बड़ी घटी उठानी पड़ती है। विलायतकी आबो हवा ठंढी और यहां की गरम है—इसीलिये उन्हें बड़ी बड़ी तनखाहें देनी पड़ती है। हां ये सब बातें हम कबूल करते है। मेरा केवल कहना यही है कि हमारे उस कामको करनेके लिये तैयार रहते हुए और वह हमारा होते हुए उसे दूसरे क्यों करें? वे अच्छा करते है या निकम्मा, यह सवाल ही

दूसरा है। हमारे कामोंका, हमारे हितोंका प्रतिबंध होनेसे हमारे चित्त शक्तिहीन हो रहे है हमारे हृदयोंकी आशायें कम हो रहीं है। हम लोगोंका पुरुषत्व नष्ट हो रहा है। इसीलिये हमें ये सब नहीं चाहिये। ये लोग व्योपारी हैं। क्या तुम्हें अपनी दुकानके लिये होशियार मुनीम नहीं मिल सकता? क्यों नहीं, पर क्या तुम उसे दुकान सौंप कर बिलकुल अलग हो रहोगे? व्यापारमें यह एक प्रश्न ही है और यह सब जगहोंके लिये है। इन प्रान्तोंकी, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, यह दशा हुई, अब बड़ोदाकी ओर देखिये। उसके इतिहासका निरीक्षण कीजिये। वहाँ सब बातें यथाक्रम होती आई हैं पर इन प्रान्तोंमें वैसी बात नही है। वहाँ की राजगद्दी कायम रखनी पड़ी और यह ऐतिहासिक परंपराके अनुसार हुआ। पुराने जमानेमें बड़ोदाकी देखभाल पूनाकी ओरसे होती थी। बाद वहाँके राजा स्वयं देखने लगे। यदि इन प्रान्तोंमें पढ़ा हुआ मनुष्य वहाँ जाकर नौकरी करता है तो वह वहाँ डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, मुन्सिफ आदि होता है। वहाँ सुबेदार हैं। दीवान है नायब दीवान है और न्यायाधीश भी है। ये लोग वहाँ काम कर रहे हैं। सब काम ठीक तरह चल रहे हैं। यदि वहाँ इस तरह शांतिसे काम हो सकता है तो यहाँ न चलनेमें कौनसी अड़चन है? देशके दो टुकड़े हुए। एक ऐतिहासिक कारणोंसे अंग्रेजोंके आधीनस्थ हुआ और दूसरा राजों रजवाड़ोंके हाथ रहा। एक भाग कहता है कि इस राष्ट्रके लोग सब कामोंके करनेमें समर्थ हैं और दूसरा भागके अधिकारी कहते हैं कि ये पात्र नहीं है। और हम भी उन्हींकी बातोंको सुनकर पागलोंकी तरह कहने लगते हैं।

इस तरह ये दो बातें हैं। अब स्वराज्य इसीलिये चाहिये है-जैसा कि आप लोगों के ध्यानमें आगया होगा-कि बड़ोदा आदिकी जो प्रबंध प्रणाली है उसीका पूना सातारा आदिके लिये क्यों न उपयोग किया जाय? अंग्रेजोंका राज्य रहेगा और वह बड़ोदा पर भी है ही। बड़ोदेका राजा स्वतंत्र राजा नहीं है। पूनामें जिस समय पेशवाओंसे बसईकी संधि हुई थी उस समय १० आना ६ आना तै हुआ था। पूनाका यदि राज्य होता तो उसका भी ऐसाही प्रबंध किया जाता, सातारा, नगर आदि भी वैसा प्रबंध कर लेते। निजामके राज्यमें वही प्रबंध है। बस ऐसाही स्वराज्य है। जो हक हिन्दुस्तानी रियासतोंको है अर्थात् बड़ोदा, ग्वालियर, आदिको हैं वैसे ही हक पूना सातारा आदिको मिलाकर जो राज्य बनेगा उसे चाहिये हैं। पर हाँ उनमें एक अंतर अवश्य होना चाहिये। हमें परंपरागत राजा इन भागोंके लिये नहीं चाहिये है। हमें हमारा चुना हुआ अध्यक्ष चाहिये है जैसा प्रबंध देशी रियासतोंका है वैसा ही उन प्रांतोंका न होना, जिनमें किसी जमानेमें उन रियासतोंकी भी बड़ी सरकार रहती थी, यह एक ऐतिहासिक पहेली है। इसका कोई कारण नहीं है कि हम वैसे क्यों न हों? मैंने आपको बतलाया ही है कि गायकवाड़, सेंधिया आदिने लड़ाईमें फौजें भेजी हैं और धन दिया है। यदि ये अधिकार हम लोगोंको होते तो हम लोग भी वैसा करते। ब्रिटिश राज्य अस्तित्व अथवा अनास्तित्वका इससे कोई संबंध नहीं है। परन्तु अधिकारियों-परकीय अधिकारियोंके अधिकार न रहनेका भेद है। यह प्रबंध भेद है, असलमें अर्थात्

साम्राज्यके अधिकारमें भेद नहीं है। मुझे याद है कि लारेन्स Lawrence साहबने सुझाया था कि स्वराज्यके आन्दोलनके विषयमें हिन्दुस्तानको विभक्त कर अलग अलग राज्य कर दिये जाँय। उनमें कुछ बुद्धिमान् पुरुष रखिये और परराष्ट्रोंसे संधि आदि करना, अंग्रेजी राज्यप्रबंधको धोखा न पहुँचाने वाली फौजी तथा जहाजी प्रबंध करना आदि जो अधिकार हैं वे अपने ही हाथोंमें रखिये। हम लोगभी यह नहीं कहते है कि वे अधिकार अपने हाथो में न रखिये ये स्वराज्य-प्रबंधके Imperial politics के प्रश्न हैं। भारतके अन्य राष्ट्रोंके साथ संबंध कैसे हों, अमुक बातके लिये लड़ाई की जाय या न की जाय। अथवा जिस पर राष्ट्रोंसे संबंध होगा उस समय कौनसी नीतिका अवलंब किया जाय आदि कुछ बातें इंग्लैण्ड भले ही अपने अधिकारमें रखे, स्वराज्य चाहने वाले उसमें दस्तं-दाजी करना नहीं चाहते। हम आज यही चाहते है कि जिस तरह रियासतों में हम अपना काम अच्छी तरह चला रहे है उसी तरह यहाँका प्रबंध करनेके लिये हमें अधिकार चाहिये। करोंसे जो आय होगी वह अमुक बातमें खर्च करना शिक्षाकी ओर खर्च करना आबकारीसे होने वाला मुनाफा कम हो तो उसे दूसरी तरफ कर लगाकर पूरा करना आदि बातें हम ही निश्चित करेंगे और उसीके अनुसार उनका प्रबंध भी करेंगे। व्यापारका प्रबन्ध करेंगे सब बातोंका प्रबन्ध करेंगे। आप उसमें हस्ताक्षेप मत कीजियेगा। हिन्दुस्तानी फ्रांस या जर्मनीसे मिलते कि नहीं यह देख लीजिये। अब भी यदि शंका हो तो वर्त्तमान अवस्थासे आपको इसका पता लगा लेना चाहिये कि हिन्दुस्तान यदि किसी

एक राष्ट्रसे संबंध स्थित रखनेके लिये तैयार है तो वह इंग्लैण्डहीके साथ। (तालियाँ) इंग्लैण्ड जाकर उसकी जगह जर्मनीके आनेमें हमारा कोई लाभ नहीं है। हमे वह नहीं चाहिये है। व्यवहारोंके दृष्टिसे देखिये तब भी आज १०० वर्षसे इंग्लैण्ड यहाँ है और जर्मनी आया भी तो वह नया रहेगा उसका नया दम, नयी उमेदें नये हौंसले, नई भूख होगी और वैसा हो कैसे सकता है? जो कुछ हो सो ठीक ही हैं। राजा हमें दूसरा नहीं चाहिये है। परन्तु हमारे जो अधिकार लुप्त हो गये है, जिससे हम लोगोंकी स्थिति यतीयोंकीसी हो गई है, वे अधिकार हमें चाहिये है। यह बात मैं ही आपको कह रहा हूँ सो नही। लारेन्स साहबने भी इस बातको कहा है कि भारतमें यदि सुधार करना हो, लड़ाईके पश्चात् यदि किसी विशेष पद्धतिका प्रबंध करना हो तो सारे हिन्दुस्तानके भिन्न भिन्न प्रान्त कीजिये।" भाषाओंकी कल्पना भी उन्हें न मालूम थी। हम उसे भी और जोड़ देते है। मराठी प्रान्त, तेलगू प्रान्त, कानड़ी प्रान्त, हिन्दी प्रान्त, आदि भिन्न भिन्न प्रान्त कीजिये। देशी भाषाओंका वाद भी इसी स्वराज्यहीमें होता है। कोई प्रश्न ऐसा नहीं है जो स्वराज्यपर अवलंबित न हो। यदि साधारण प्रबंध न होते हों तो एक गुजराती युनिवर्सिटी हो जाती पर वैसा करना हम लोगोंके हाथोंमें नहीं है। देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देनेका कौनसा ऐसा बड़ा प्रश्न है कि उसमें यह भेद उत्पन्न हो! क्या अंग्रेज अपने भाइयों को फ्रेंच भाषाके द्वारा शिक्षा देते हैं अथवा जर्मन अंग्रेजीमें या तुर्क फ्रेंचमें? ऐसे उदाहरण सामने होते हुए उनपर हम दुखित होकर लेख क्यों लिखें। हम लोग कहते हैं

वैसा क्यों नहीं होता इसीलिये कि हम लोगोंको अधिकार नहीं है। यह निश्चित करना तुम्हारे हाथोंमें नहीं है कि तुम अपने बच्चोंको कैसी शिक्षा दोगे। हम लोग लड़कोंको पढ़नेके लिये भेजते हैं पर यह नहीं सोचते कि उनकी क्या गती होगी? मतलब यह कि इस समय ऐसा कोई प्रश्न नहीं है जो कि स्वराज्यपर-अधिकारोंपर अवलम्बित न हो। फर्ग्युसन कालेजमें रानडे आदिने युनिवर्सिटीमें बहुत प्रयत्न किये। पर किसको यह सब समझाना है? सरकारको? अंग्रेजोंको उनके देशकी अवस्था मालूम रहती है। हमारे देशमें वह क्यों न हो। अंग्रजी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये १० बरस लगते है। इस आयुष्यके आठ दस वर्ष थोड़े नहीं होते। इतना समय कहीं नहीं लगता। किसी सुधरे हुए राष्ट्रमें ऐसी पद्धति नहीं है। ऐसा होते हुए भी यदि तुम्हारी दृष्टि इस स्वराज्यके ओर नहीं घूमती तो निश्चय समझो कि तुम्हारी आँखोंमें कुछ विकार हो गया है। (तालियाँ) जो कुछ हमें कहना है जो कुछ हमें प्रार्थना करनी है वह केवल हमें अधिकार पानेके लिये करनी चाहिये। किसी दूसरी बातके लिये नहीं। शिक्षाका प्रश्न साधारण है। हरएक गाँवमें पाठशाला चाहिये पर हम धन कहाँसे लावें। हम सरकारको कर देते है। क्या वह योंही मुफ्त देते है? इंग्लैण्डमें जो पद्धति प्रचलित है उसी-के अनुसार हमें शिक्षा दीजिये। खजानेमें धन है वह और और कामोंके लिये दिया जाता है पर उन कामोंके लिये नहीं जिनकी हमें अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु जैसा कि कहा गया है हिन्दुस्तान बहुत बड़ा देश है, भाषाओं पर उसको विभाजित कीजिये। चाहे गुजराती भाग अलग

लीजिये, मराठी अलग, पर उसमें हिन्दू मुसलमान कैसे लिखे? इसीके बारेमें आपसे कुछ कहूँगा। कनाडामें मुसलमान और फ्रेञ्चोंकी बस्ती है। वहाँ यदि अंग्रेज राजनीतिज्ञ इस बातको निश्चित कर सकें तो क्या वे यहाँ यह निश्चय नहीं कर सकते कि हिन्दू और मुसलमान कैसे रहें?

जैसा ऊपर कहा गया है कि यदि हिन्दुस्तानके भिन्न भिन्न प्रान्त कर दिये जाँय जैसे—बंगाल प्रान्त अलग और उसपर भारतीय अधिकारी न रखकर अभी कुछ दिनोंके लिये युरोपियन गवर्नर रक्खा जाय तो भी काम चल सकता है। लोकनियुक्त अध्यक्ष न मिलने तक आस्ट्रेलियामें क्या होता था? विलायतसे गवर्नर जाता था। उसे कौन्सिलमें जो लोकनियुक्त सदस्य बतलाते थे वैसाही करना पड़ता था। यहाँ उल्टे तुम्हें कुछ चाहिये हो तो कौंसिलमें रिजोल्युशन (प्रस्ताव) उपस्थित करो, मिहनत करो, आँकड़े इकट्ठा करो और उसके लिये एक छदाम भी न पाओ। बाकीके कौन्सिलें तनखाहे पावें। इधर तुम व्यर्थ मेहनत करो और अन्तमें प्रस्ताव अस्वीकृत हो। पास हो भी जाय तो उसे अमलमें लानेके लिये सरकार पर कोई दबाव नहीं। वह बच्चोंका खिलवाड़ है। जो उसे लड़कपन नहीं समझता उसमें उसी प्रमाणसे देशके विषयमें कम अभिमान है यही समझना चाहिये (हँसी), कुछ भी अधिकार न होनेसे यह पक्षियोंकासा छींटे हुए दानोंको पाकर लड़ना है। इससे यदि आगे चलकर हमें कुछ हक प्राप्त होंगे, अधिकार मिलेंगे तो हमारे लिये यह अच्छी—कीमती वस्तु है। नहीं तो वह किसी कामकी नहीं है। फिलहाल वहाँ क्या होता है? अच्छे २।४ सुशिक्षितोंको आपसमें भिड़ा देने

की यह दिया है। इसीलिये स्वराज्यसे क्या होगा और माँगते क्या हैं? इस बातको ध्यानमें लाइये। स्वराज्यमें हम यह माँगते हैं कि सारे भारतवर्षभर इसी प्रकारके प्रान्त (states) हों और इन प्रान्तों पर पहले विलायतसे आये हुए अंग्रेज और अन्तमें लोगोंके द्वारा चुने हुए अध्यक्ष रहें और सारे राष्ट्र संबंधी जो प्रश्न है उनके लिये एक निराली कौंसिल हो। युरोप, अमेरिका, युनाइटेड स्टेटसमें जैसी प्रणाली है उसीके अनुसार छोटे छोटे राज्य बनकर उनको एकत्र करनेके लिये जैसी वहाँ कांग्रेस है उसी प्रकारके अधिकार Imperial Council के अधिकार भारत सरकारको अपने हाथोंमें रखने चाहिये। इस समय जो भिन्न भिन्न ७। ८ प्रान्त है उनके दस नहीं बीस प्रान्त कीजिये और लोगोंको जिस रीतिसे सहल हो, पसंद हो, जिससे उनके हाथोंमें अधिकार रहें, वैसीही व्यवस्था कीजिये। यही स्वराज्यका माँगना है। इन व्यवस्थाओंके लिये शायद तुम्हें पहले कई जगहों पर अंग्रेज अफसर लाने पड़ेंगे। ठीक है। पर वे अफसर हमारे रहेंगे, लोगोंके रहेंगे, लोगोंके नौकर रहेंगे वे हमारे धनी बनकर न रहेंगे। इस समय हमें जो कुछ भारतमें सुधार करने है उनको करनेके लिये केवल हम लोगोंकी बुद्धि काम नहीं देगी। हमें इङ्गलैण्डसे, अमेरिकासे लोग लाने होंगे पर वे हमसे जवाबदेह रहेंगे—बेजवाबदेह नहीं रहेंगे। इसलिये यदि एक दृष्टिसे यह विचार किया जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह आन्दोलन युरोपियनोंके विरुद्ध है। जवाबदेह किससे? हमसे या स्वयं अपने लिये। वह जवाबदेही जब तक हमारी ओर नहीं है, उनकी जवाबदेही हमारे अधिकारमें नहीं है तब तक

जैसा चल रहा है वैसा ही चलेगा ! तब तक हम चाहे जिस दिशासे प्रयत्न करें वे सब विफल होंगे। तब तक हम किसी विषयका आन्दोलन करें उसके पैर लँगड़े पड़ जायँगे और हमारा उद्देश्य कभी सफल न होगा। जिस राष्ट्रको अपना ही हित करनेकी स्वतंत्रता नहीं है जब तक उस राष्ट्रमें यह शक्ति नहीं है कि वह अपने हितानुकूल प्रस्ताव पास करे तब तक हम नहीं समझते कि दूसरेके खिलानेसे उसका पेट भरेगा ! अब यह बात मालूम हो गई कि जिसे अंग्रेजोंमें 'Despotic rule' राजतन्त्री सत्ता कहते है—उस सत्तासे लोगोंका कल्याण नहीं होगा। कुछ लोगोंके दिलमें यह बात ठीक जम गई है। मेरा कहनेका उद्देश्य यही है कि उस के लिये तुम प्रयत्न करो। यदि उसको समझानेमें मेरे शब्द कम हों तो उसमें मेरा दोष है उस कल्पनाका कुछ भी दोष नहीं है। वह निर्दोष है। ये सब बातें उनके भिन्न भिन्न रूप एक ही व्याख्यानमें मै आपके सम्मुख नहीं रख सकता। यह जो मैने छोटे छोटे प्रान्तों या राज्योंकी कल्पना बतलाई है उसका प्रबंध कैसा होना चाहिये उसमे किसके कैसे हक होने चाहिये, जो प्रबन्ध इंडियन कन्सॉलिडेशन एक्ट १८६८ में कन्सॉलिडेशनके बारेमें हुआ है उसमे कौनसी शुद्धियाँ होनी चाहिये आदि अनेक प्रश्न है और उन पर १ नहीं १० व्याख्यान भी मै दूं तो भी पूरे नहीं हो सकते। हमारा तत्व एकही है और इसीके विषयमें व्याख्यानमें आप से कहना है। आपमेंसे जो लोग विद्या बुद्धि धन आदि किसी तरहसे इस बातका विचार करनेके जो अधिकारी हैं उन्हें यह बात स्वयंही मालूम हो जायगी। यह बात मिलेगी या नहीं, वह बात होगी या नहीं, इसमे क्या

पूछना है? प्राप्त करना हमारे ही हाथोंमें है। मेरी समझमें तो यह प्रश्न आता ही नहीं। हम इतनी मिहनत करते हैं किन्तु नहीं मिलता। हाँ, उद्योग करना तो हमारे हाथमें है। मिलने न मिलनेकी बात हमारी नहीं है। उद्योग करो। जो कुछ तुम करोगे उसका परिणाम अवश्य होगा। अपने हृदयमें इस बातको दृढ़ करलो। राज्योंमें क्या किसीने स्वतंत्रता नहीं पाई है? अन्य राष्ट्रोंमें क्या स्वतंत्रता देवी ऊपरसे गिरी है? मैं साफ कहता हूं कि तुममें हिम्मत नहीं होगी तो नहीं मिलेगी। हिम्मत यदि है तो आज नहीं तो कल १० बरसोंमें-२०बरसमें अवश्य मिलेगी। पर उसके लिये तुम्हारे उद्योगकी आवश्यकता है। तुम्हारा धर्मतत्व है "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" गीतामें क्यों कहा गया है? कथा आदि कहकर सेर आध सेर चावल कमानेके लिये? श्रेष्ठ धर्म वही बतलाते है। पश्चिमात्य इतिहास भी वही बतलाता है। इतना होते हुए भी तुम यह विचार क्यों करते हो कि कैसे होगा? किस तरह होगा? "यथा मृतपिंडकृता"..... .....मट्टीका गोला है। हम उसे विष्णु, शिव आदि कहते हैं और लोग पूजा करते है। इतनी योग्यता उस प्रतिमामें लाते है। केवल मट्टीका गोला रहता है जिसमें बिलकुल चलनेकी शक्ति नहीं जमीन पर छोड़नेसे धमसे नीचे गिरता है। उस गोलेको कुछ कृतीसे, कुछ उद्योगसे और कुछ संस्कारके द्वारा हम स्वरूप दे सकते है। तब हमारी यह देह तो उसकी तरह निर्जीव नहीं बल्कि सजीव है। मिट्टीके गोलेको यदि हम अच्छा रूप नहीं दे सकेंगे तो इसमें हमारा दोष है। उनका अच्छा रूप हम बना सकते हैं। जल्दी करनेकी बात

नहीं है। जल्दीमें कुछ नहीं मिलेगा। निश्चयके साथ यदि हम काम करें तो मिट्टीके गोलेको भिन्न स्वरूप दे सकते हैं। यह बात शास्त्रसे सिद्ध है। स्वतः सिद्ध है। अनुभव सिद्ध है। प्रमाणोंसे, इतिहाससे सिद्ध है। इतने प्रमाण सामने रहते हुए भी यदि तुम्हारा समाधान नहीं हो, तुम्हारा विश्वास नहीं जमे तो देशके भावी अभ्युदयके विषयमें सोचना छोड़ दो। हमसे माथा पच्ची मत करो। ये बातें होनेवाली है और होनी चाहिये, ऐसा विश्वास होना चाहिये। विश्वाससे ही काम होते हैं। जहाँ यह विश्वास नहीं है वहाँ कुछ हो नहीं सकता। मेरा यह कहना भी नहीं है कि यदि कुछ दें तो उसे भी न लो। जितना दें उतना लो, और अधिक माँगो, माँगते चले जाओ। (हँसी) हमने कहा कि हमें कुछ रुपये चाहिये। हमें उन्होंने (अधिकारियोंने) १०० दिये। हम उनसे पूछते हैं कि १०० रुपया दे देनेकी आपकी बुद्धि क्यों हुई? यदि आप १०० से भी कम देंगे तो हम इनके विरुद्ध क्या कह सकते है? हमें तो हजार रुपये चाहिये हैं। हजार रुपये जब हमें मिल जायँगे तब हमारी तृप्ति होगी। यदि आप दस ही दें तो हम आपका एहसान अवश्य मानेंगे। (हंसी) एहसान न मानें, सो बात नहीं है, क्योंकि यह मानवी धर्म है। हमारा कागज या कोई चीज नीचे गिर जाती है और दूसरा उसे उठादेता है तो उसे हम कहते हैं Thank you यह तो मनुष्यकी मनोवृत्ति है। मैं यह नहीं कहता उसे छोड़ दीजिये। पर इस मनोवृत्तिमें जो महत्वाकांक्षाएँ हैं उन्हें सम्पादन करने ही में मनुष्यका मनुष्यत्व है। स्वराज्य कोई फल नहीं कि वह आकाशसे टपक पड़े। मुँहमें छोड़नेके लिये एकदूसरे मदद गारकी

जरूरत पड़ती है। इसकी वेसीही तरकीब है और इसी से वह आरम्भ की गई है। मद्रासमें मिसेज एनीबेसेन्टने और यहां मैंने स्वराज्य सभ्घ स्थापित किए और इसी तरह बंगाल तथा अन्य प्रान्तोंमें भी स्थापित हो जायगें। शायद कांग्रेस इस प्रश्नको हाथमें ले और स्वयं लीग स्थापित करे जिसमें अन्य सब लोग उसमें मिलकर कामकरें। उद्योग एक ही करना है क्योंकि यह लाभका प्रश्न है। स्वराज्य हमें चाहिये और वह कैसा होना चाहिये यह हम ऊपर बतला चुके हैं और उसके होनेसे आगे चलकर कैसी अवस्था होगी सो भी बतला दिया गया है। लार्ड सभाको ये स्वप्न अभीसे दिखाई दे रहे है। हमारे लॉर्ड हार्डिंगने कहा है कि "थोड़े समयहीमें सिविलियनोंको अपने अधिकार लोगोंके हाथोंमें सौंपने पड़ेगें।" हमारे विरूद्ध पक्षके जो लोग है उन्हें अभीसे वेसे स्वप्न दिखाई दे रहे है। (हँसी) उन्हें यह मालूम हो गया है कि कुछ भी तो प्रबन्ध करना ही होगा। तुम्हें पहले एक ही उद्योग करना है और वह यह है कि पहले सारे देशमें आन्दोलन कर लोगोंका विश्वास कराना चाहिये कि यह हमारा उद्देश है। इसीके लिये हमें प्रयत्न करना है। इतनाही नही बिलायतमें जाकर हमें वहांके लोगोंको इस बातको अच्छी तरह समझा देना है और पार्लिमेण्टमें जिस समय यह प्रश्न विवादके लिये उपस्थित हो उस समय उसके सामने अपने विचारोंको अच्छी तरहसें फैलाना चाहिये। इसका योग्य मार्ग यही है कि इस समय जो इंडियन एक्ट है उसके सुधारके लिये पार्लिमेण्टमें बिल पेश किया जाय। हमें यही माँगना है कि यह कानून दुरुस्त हो जाय। जिस समय कंपनीके अधि-

कार महाजनोंके हाथोंमें गये उस समय इस एक्टमें बहुत ही मामूली फेर फार हुए। इस समय हमें उसमें एक खास तरहकी दुरुस्ती चाहिये है और वह केवल हमारेही लिये नहीं बल्कि साम्राज्यके लिये चाहिये है। यह काम सब लोगोंकी सहायता तथा अनुकूलतासे होना चाहिये इसमें मतभेद ज़रा भी न होना चाहिये। Moderates और Nationalists का एक ही उद्देश्य है अतः एक ही बात मांगकर उसीको प्राप्त करना है। इस भावनाको धारण कर जो उद्योग करना है उसीके लिये होमरूल लीग अर्थात् स्वराज्य-संघ स्थापित हुआ है। कांग्रेसके सामने यह विषय रख दिया गया है। पर कांग्रेस सालभरमें एक बार एक दिन होती है इसलिये एक मौका निकल जाने पर फिर दूसरे वर्षकी राह देखनी पड़ती है। परन्तु हमें बराबर सालभर तक इस उद्योगको करते रहना चाहिये और यह बात कांग्रेसको मन्जूर है तथा इसी उद्देश्यसे यह लीग स्थापित की गई है। इसमें विशेष झंझट नहीं कुछ नहीं, इसको कबूल कीजिये और अपनी उद्दिष्ट वस्तुको मांगिये। उसके मांगनेका हमें अधिकार है। आज हमने जो धनें मांगा है वह यही कि हरएक मनुष्य एक रुपया दे। दो रुपये Admission मेम्बर होनेकी फीस है पर उसे न देना हो तो एक रुपया देना चाहिये। ३० करोड़में एक लाख मेम्बर भी न मिलेंगे तो हमारी समझमें भारतके विषयमें बातचीत करना भी व्यर्थ है। हमारे कान व्यर्थ कष्ट पाते है। मैं समझता हूँ कि वर्षमें यह आन्दोलन सफलीभूत हो सकेगा। वार्षिक चंदा एक रुपया रक्खा गया है। १०। २० बरस आन्दोलनके लिये नहीं चाहिये। ऐसे समय

पर इस आन्दोलनके लिये एक रुपया भी न देनेका स्वार्थ-त्याग करनेकी बुद्धि तुममें न हो तो व्याख्यान सुनने भी न आओ जिसमें हमें इतनी जोरसे न बोलना पड़े। तुम्हें यदि कुछ करना है तो यही; बाकी काम इस संघके कार्यकर्ता करेंगे ही। इसके लिये कई जगहोंपर ऐसे व्याख्यान देने होंगे। लोगोंको इकट्ठा करना होगा उनको समझना होगा। पुलिस एक जगह बंदकरे तो दूसरी जगह काम करना चाहिये। इसको अधूरा न छोड़ना चाहिये। यह मत समझो कि यह बड़ी आसानीसे मिल जायगा। यह एक रुपया कुछ भी नहीं है। चित्त का दृढ निश्चय चाहिये। कोई यदि तुमसे पूछने आवे तो उसे यह स्पष्ट बतलानेकी तुममें हिम्मत चाहिये कि "हम जो चाहते है वह सर्वथैव वैध है। हम उसके सदस्य है और एक रूपीया हमने दिया है। हमें यह बात चाहिये है।" इतना कहनेकी हिम्मत न हो तो बात निराली है। सारे हिन्दुतानको—तुमको न सही—तुम्हारे वंशजोको यह बात भली मालूम होगी। तुम्हारी इच्छा भी न हो तब भी यह बात होने वाली है। तुम न सही तुम्हारी अगली पीढ़ीके लोग इसके लिये प्रयत्न करेंगे पर वे तुम्हें बेवकूफ समझेंगे यह ताना सुनना हो तो कोई हर्ज नहीं। मेरा विश्वास है कि वे प्रयत्न करेंगे। तुम इस बात पर ध्यान दो कि तुम्हें कौनसा प्रयत्न करना चाहिये और इसे कैसी मदद—देनी चाहिये? शायद पुलिस तंग करे। हो सकता है। वह पूछे कि "क्यों, मेम्बर हुए" 'हां, हो गए' यही कहना चाहिये और ऐसा कानून है। मुकदमा छोड़ और कुछ नहीं होगा पर वकील विना मेहनताना लिये तुम्हारे लिये

काम करेंगे (हँसी) एक रुपया अमुक कामके लिये दिया यह कहना राजद्रोह नहीं है और न इसका मेम्बर होना ही राजद्रोह है। इसके (एक रुपया दे कर मेम्बर बननेकी) सिवा तुम्हें और कुछ करना नहीं है। बाकी काम करनेका भार लोग अपने ऊपर ले रही है। ऐसे समय क्या महाराष्ट्रके लोग चुप बैठेंगे? कोई हो चाहे हिन्दू, चाहे मुसलमान, या मारवाड़ी या गुजराती कोई हो हमें सब चाहिये है। इसमें जातिभेद अथवा धर्म भेद नहीं है इसमें सब लोगोंको एकमें मिलकर अपने देशके लिये कार्य करना है। पहले मैंने बतलाया है कि हम लोगोंमें बहुतसे ऐसे व्यापारी आदि हैं जो अपने मुनाफेका कुछ हिस्सा धरम खातेमें रखते हैं—जैसे गोरक्षा इत्यादि। मैं पूछता हूँ कि इसके लिये भी व्यापारी एक पैसा या आधा पैसा हमें क्यों न दें? भारतवर्ष एक बड़ी गौ है। उसने हमें जन्म दिया है। उसके उद्योगपर, फलद्रुपतापर और उसका दूध पीकर हम अपना पालन पोषण करते हैं। जमा खर्च देखिये तो दिखाई देगा कि एक आना यहां एक आना वहां नामें लिखा हुआ है। किसलिये? (गोरक्षणार्थ) इसीलिये कि गौको चारा दिया जाय, कसाईके हाथमें पड़ी हो तो छुड़ा ली जाय। परन्तु इधर हम लोग आजकल काम बिना मर रहे है पर आप यह कल्पना ही नहीं करते कि यह गौ है। यह तो धर्म रक्षाका काम है, गो रक्षाका काम है, राष्ट्रका काम, है, यह राजकीय उन्नतिका काम है, यह धर्म है, उन्नति है, इन सब बातोंको ध्यानमें लाकर जो कुछ मदद आप लोगोंसे मैंने बतला ही दिया है वह एक रुपयेसे अधिक नहीं—जिससे जो हो सके कमसे कम एक वार इस संस्था

को देकर गौ रक्षा करनेके पुण्यका भागी हो। यह बहुत बड़ा कार्य है। गौके जो पुत्र हैं वे यदि कष्ट न करें तो गौ-पुत्रोंको बैल कहते हैं उसी तरह तुम भी कहलाओगे। (हँसी) साधारण गौ-पुत्रोंको लोगोंमें जो पुकारते हैं वही कहलाओगे।

ये सब बातें मैंने आपसे कहीं। ये संघ स्थापित हुए। उद्योग प्रारंभ हो गया है। उसपर आफतें आवेंगी तो उनके सहनेके लिये हम तैयार हैं और रहना पड़ेगा क्योंकि बैठे बैठे कुछ भी लाभ नहीं होगा। इस रीतिसे प्रयत्न कीजिये इसको यों मदद दीजिये, मेरा विश्वास है ईश्वर आपको, नहीं छोड़ेगा। उसीकी कृपासे ये बातें साध्य हुई हैं पर हमें तो अवश्यही प्रयत्न करना चाहिये। एक बहुत पुराना सिद्धान्त है कि "God helps them who help themselves." ईश्वर अवतार कब लेते हैं? हम जब उनसे अपने दुःख बतलाकर प्रार्थना करते है। योंही ईश्वर अवतीर्ण नहीं होते। आलसियोंके लिये अवतार नहीं होता। उद्योगी यत्नशील लोगोंके लिये होता है। इसलिये काममें लग जाइये। कानूनोंमें किस तरहकी शुद्धियाँ चाहते है यह आज बतलानेका समय नहीं है। ऐसी हरएक बातों पर इतनी बड़ी सभामें चर्चा करना कठिन है अतएव सामान्यतः मैंने जो चार बातें बतलाई और कल जो कुछ कहा था इन दोनोंको मिला दीजिये। उद्योगमें लग जाइये कि परमेश्वर आपके प्रयत्नोंको सफलीभूत करें। ईश्वरसे यही अंतिम प्रार्थना कर मै अपना व्याख्यान समाप्त करता हूँ। (तालियाँ)

ग्रन्थ प्रकाशक समितिकी राष्ट्रीय पुस्तकें ।

सरलगीता ।

इसमें महाभारतकी कथा, भगवतगीताके मूल श्लोक, उनके व्याख्या सहित नम्बरवार अर्थ और उपसंहार इतने प्रकरण हैं, उपसंहारमें गीताके आधार पर व्यक्तिगत और राष्ट्रीय उन्नतिके साधन और लक्षण बतलाये गये हैं. मूल्य बारह आना ।

जयन्त—बलभद्र देशका राजकुमार ।

महा कवी शेक्सपियरके सुप्रसिद्ध Hamlet.—the Prince of Denmark का सरल हिन्दी अनुवाद विचार करने और आनन्द लेनेकी अपूर्व सामग्री है। मूल्य बारह आना ।

महात्मा टॉलस्टायके लेख ।

चार प्रधान लेख और महात्माजीकी जीवनी । पुस्तक एक नये संसार में लेजाकर खड़ा करदेती है । मूल्य पांच आना ।

सामान्य नीती काव्य—मूल्य तीन आना ।

सुभद्राहरण नाटक—मू० छः आना ।

भर्तृहरीशतक—महाराज भर्तृहरिजीके नीति, शृंगार और वैराग्य इन तीनों शतकोंका हिन्दी पद्यानुवाद, साथ साथ मूल श्लोक भी है । मूल्य बारह आना ।

ग्रन्थप्रकाशक समिति,

बनारस सिटी।

लो० तिलक का जमानत का मुकद्दमा।

शनिवार ता० २२ जुलाई १९१६ के दिन मि० जेम्स अडोल्फस गाइडर डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलीस, सी. आई डी, ने पूना के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि० जी० डबल्यू. हेच., आई. सी. एस, की अदालतमे क्रिमिनल प्रोसीजर कोड दफा १०८ के अनुसार श्रीयुत बाल गंगाधर तिलकके विरुद्ध अभियोग लानेके लिये निम्नलिखित सूचना उपस्थित की।

दावा

निशान नं० १

पूना के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट्की अदालत में।

जेम्स अडोलफस् गाइडर

डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल आफ् पुलीस सी. आई. डी.

बनाम।

बाल गंगाधर तिलक, बी. ए., एल्: एल् बी., साकिन पूना।

क्रिमिनल प्रोसीजर दफा १०८ के अनुसार सूचना।

मै उक्त जेम्स अडोलफस् गाइडर निम्नलिखित अभियोग लगाता हूं।

१ उक्त बाल गंगाधर तिलक जिन्हें राजद्रोहके अभियोग में पहिले सज़ा हो चुकी है नीचे लिखे अनुसार एसी राज-विद्रोही बातें अर्थात् जिनके प्रसारके निमित्त इंडियन् पीनल कोडकी दफा १२४ के अनुसार सजा हो सकती है, जबानी (व्याख्यानों द्वारा) फैला रहे हैं।

२ उन्होंने 'होमरूल' पर इस तरह व्याख्यान दिये है।

(क) ताः १ मई १९१६ के दिन सायंकालको इतिहास संशोधक मंडलकी सभाका अधिवेशन होनेके पश्चात् बेलगांवमें (ख) ताः ३१ मई १९१६ के दिन अहमद-नगरके कापड़ बजारके व्यापारी लोगोंके दिये हुए मानपत्रके उत्तरमें कापड़ बजारके पीछेके खुले मैदानमें और (ग) फिर अहमदनगरमें ता: १ जून १९१६ के दिन पुराने कापड़ बजारके खुले मैदानमें व्याख्यान दिए हैं। इन सब व्याख्यानोंके अवसरों पर उन्होंने सम्राट् या कानूनसे प्रस्थापित बृटिश राज्यके विरुद्ध द्वेष तिरस्कार अथवा अप्रीति उत्पन्न की अथवा उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया।

(३) आशंका है कि यही बाल गंगाधर तिलक फिर भी वैसी वक्तृताएं देंगे।

(४) इन वक्तृताओंकी प्रतियां साथ नत्थी हैं।

(५) पेशीके दिन अदालतमें गवाह हाजिर किये जाएंगे।

दस्तखत एम सी. दावर पब्लिक प्रासीक्युटर पूना ताः २२ जुलाई १९१६	दस्तखत जे. ए. गाइडर

यह दरख्वास्त सुननेके बाद मेजिस्ट्रेट साहबने मि० गाइडरको हलफनामा देनेकी आज्ञा की तब मि० गाइडर ने नीचे लिखा हलफनामा दिया।

मि० गाइडर का हलफनामा।

(निशान नं० २)

मैं जेम्स अडोल्फस गाइडर शपथ तथा प्रतिज्ञा के साथ कहता हूं कि मैंने बाल गंगाधर तिलकके विषयमें जो सूचना की है वह मेरे विश्वासके अनुसार सत्य है। इस सूचना की सब बातें मेरे दफ्तरके कागजों, मेरे अधीनस्थ अधिकारियों की दी हुई खबरों, तथा अन्य कतिपय साधनोंके आधार पर हैं। मेरी समझमें उनसे एक अच्छी खासी अर्थात् करीब पचास हजारकी जमानत मांगनी चाहिये। तिलक एक अच्छे धनी पुरुष हैं। 'केसरी' छापाखाना तथा गायकवाड़वाड़ा उनका निजका है। उनका प्रभाव बहुत अधिक है। उनके मित्र लोग भी अमीर हैं। आजकल उनके मित्र उनके जन्मदिनोत्सवके समय उनकी भेंट करनेके लिये एक लाख रुपयोंकी रकम इकट्ठी कर रहे हैं। मेरी बलपूर्वक यही प्रार्थना है कि उनसे एक सालके लिये जमानत मांगी जाय। जिन तीन व्याख्यानोंके ऊपर मेरा कटाक्ष है वे तीन व्याख्यान तथा उनका अनुवाद मै इसके साथ उपस्थित करता हू।

डि० मजिस्ट्रेट की मुहर	दस्तखत जे. ए. गाइडर मेरे सन्मुख हस्ताक्षर की. जी. डब्ल्यू हेच्, डि. मे., पूना

इस पर डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेटने निम्न लिखित आज्ञा दी—

मेजिस्ट्रेट् साहबकी पहिली आज्ञा।

चूंकि मुझे—जी डबल्यू हेच्, डि. मे. पूना—को यह खबर लगी है कि मेरी अधिकार मर्यादा के भीतर पूनाके निवासी बाल गंगाधर तिलक राजविद्रोही बातें फैलाया करते है और इसकी पुष्टिमे बेलगांवका ता १ मई १९१६ का तथा अहमदनगरके. ता० ३१ मई और १ जून १९१६ को होम रूल पर दिए हुए उनके व्याख्यानों की सूचना निरीक्षणार्थ मेरे सम्मुख उपस्थित की गई है।

इसलिये मै यह आज्ञा देताहूं कि बाल गंगाधर तिलक यह बतलाएं कि उनसे एक वर्ष तक नेक चलनीके लिये (क्रि. प्रो. कोडकी दफा १०८ व ११२ के अनुसार) बीस हजार का मुचलका और दस दस हजार की दो जमानतें क्यों न ली जायं।

दस्तखत जी डब्ल्यू. हेच् डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट पूना.

उल्लिखित आज्ञानुसार डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि हेचने यह समन मि० तिलकके नाम निकाला।

समन।

(क्रि प्रो. कोड दफा ११४ के अनुसार)

बाल गंगाधर तिलक, नारायण पेठ, पूना शहर, के नाम।

चूंकि विश्वसनीय बातों द्वारा मुझको यह दरसाया गया है कि आप राजविद्रोही बातें फैला रहे है, इसलिये इस नोटिस (सूचना) द्वारा आपको २८ जुलाई १९१६ के दिन मध्यान्ह के बारह बजे डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट के कोर्टमें उपस्थित होकर इस बात का कारण बतलाने की आज्ञा की जाती है कि

क्यों न आपसे एक वर्ष तक शांति रक्षाके निमित्त बीस हजारका मुचलका और दस दस हजारकी दो जमानतें ली जायं। मैने अपनी दस्तखत और कोर्ट की मोहरके साथ यह सूचना दी।

ता० १२ जुलाई १६१६. दस्तखत जी. डब्ल्यू. हेच,

डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट, पूना।

यह समन पूनाके डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ पुलिस मि० वाईड्न स्वयं ता० २३ जुलाई १६१६ को नारायण पेट मे मि० तिलकके बाड़ेमें प्रातःकाल साढ़े दस बजे मि० तिलकको दिया। ता० २३ जुलाई तिलकजी के जन्मोत्सव का दिन था। वह उनका ६१वां जन्मदिन था। उस दिन भिन्न २ स्थानोंके मित्र तथा अनुयायी लोग उनके अभि-नन्दनार्थ बाडेमें एकत्र हुए थे। और जब तिलकजी उन लोगों मे बातचीत कर रहे थे तब उन्हें यह समन दिया गया।

लो० तिलककी ओरसे श्रीयुत सीताराम केशव दामले, बी ए, एल. एल. बी, वकीलने ता० २५ को मुकद्दमे की तारीख बढ़ाने और सूचना, प्रतिज्ञालेख और व्याख्यानों तथा उनके अंग्रेजी अनुवाद इत्यादि काग़ज़ पत्रोंकी नक़लें पानेके निमित्त डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट साहबके कोर्टमें दरख्वास्त दी। वह मंजूर हुई और दामलेजीको नक़लें दी जानेके बारेमें मजिस्ट्रेट साहबका हुक्म हुआ।

ता० २ अगस्तको पब्लिक प्रॉसीक्युटर खान बहादुर दावर साहब सरकार की ओरसे और श्रीयुत दामले तिलक जी की ओरसे डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट साहबके कोर्टमें उपस्थित हुए। दोनों पक्षोंके वकीलोंकी बात सुन लेनेके पश्चात् मुकद्दमेकी तारीख ७ अगस्त निश्चित हुई।

प्रथम दिन ।

सोमवार तारीख ७ अगस्त १६१६ ।

(मि. जी. डब्ल्यू. हैच, आई. सी०, एस. डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट साहब बहादुरके कोर्टमें ।)

ता० ७ अगस्त को मध्यान्हके बारह बजे लो० तिलक पूनेके डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट साहब बहादुरके कोर्टमें समनके अनुसार स्वयं उपस्थित हुए ।

सरकारकी ओरसे बारिस्टर बी. डी. बिनिंग व बैरिस्टर पटवर्धन उपस्थित थे । इनके अतिरिक्त पूने के सरकारी वकील खानबहादुर एस् सी. दावर उनकी मदद को उपस्थित थे तथा फिर्यादी मि गाइडर भी स्वयं उपस्थित थे। लो० तिलककी ओरसे बैरिस्टर महम्मद् अली जिना और बैरिस्टर येरूलकर उपस्थित थे। इनकी मदद के लिये श्रीयुत दादा साहेब करंदीकर, श्रीयुत स. रा. बखले बी ए., एल. एल. बी., हाईकोर्ट वकील, श्रीयुत काका साहेब पाटील, श्रीयुत सी के दामले, बी ए, एल एल बी.. श्री न चि केलकर बी. ए एल एल बी तथा श्रीयुत शंकर गोपाल लेले वकील (अहमदनगर) भी मौजूद थे ।

आरम्भमें बैरिस्टर बिनिंग कहने लगे कि आक्षेपित व्याख्यानोंको प्रमाणित करनेके लिये हम गवाह पेश करते हैं। परन्तु इसका बै जिनाने विरोध किया और कहा कि यह सबूत पहिलेही न लिया जाय । प्रस्तुत मुकद्दमा वारन्ट केस की नाई चलना चाहिये । और फिर्यादी का सबूत देखने के पहिले उनको अपना आक्षेप स्पष्ट करना होगा । बै. बिनिंग ने उत्तर में यह कहा कि क्या २ आक्षेप है यह संक्षिप्त में कहने

को मैं तैयार हूं। परन्तु सब व्याख्यान पढ़कर सुनाने और उनपर टीका टिप्पणी करनेका कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता तोभी मैं इतना कह सकता हूं कि आक्षेपित व्याख्यानों से निम्न लिखित भाव प्रगट होते हैं।

(१) बृटिश सरकार भारतवर्षको चिरकाल दास्य और बन्धन में रखती है।

(२) बृटिश सरकार हिन्दुस्तानके प्रति अपना कर्तव्य नहीं पालन करती। वह इंग्लैंडके हितके लिये ही राज्य करती है।

(३) बृटिश सरकार सच्ची सरकार ही नहीं है। क्योंकि जिन बातोंको लोग चाहते हैं उन बातों को करनेके लिये उनसे कहने से वह अपना अपमान समझती है।

(४) बृटिश सरकारको आत्मविषयक वृथाभिमान है। और जो जो बातें वह करती है उन सबको बिलकुल ठीक समझती है।

(५) ब्रिटिश सरकार और उसके अधिकारीवर्ग का मुख्य उद्देश्य अपने पेटकी आग बुझाना है।

(६) कलेक्टर, कमिश्नर तथा दूसरे बीचवाले लोगोंकी कोई आवश्यकता नहीं है।

(७) नामधारी साम्राज्य सत्ताके अतिरिक्त सब प्रकार की बृटिश सत्ता जहां तक हो सके शीघ्र नष्ट करनी चाहिए।

(८) पचास वर्षोंके अवकाश में भी भारतवासियों को बृटिश सरकार सुपठित नहीं बना सकी इसीलिये भारतवासियोंको अपना काम स्वयं चलानाही ठीक होगा।

(९) अंग्रेज़ लोग राज्य चलानेके लायक नहीं हैं इसलिये उनको यहांसे चले जाना चाहिये।

(१०) ठाकुरके पुजारियों अर्थात् बृटिश सरकार और उसके अधिकारियोंको निकाल देना चाहिये क्योंकि वे लोगोंका हित नहीं करते।

(११) भारतवर्षके जवाबदेह हाकिम सम्राट्से सच्ची बातें छिपाया करते हैं इसलिये भारतवर्षके साथ न्याय नहीं होता।

(१२) वाइसराय और भारतवर्षके अन्य अधिकारियों को बहुतसा वेतन मिलता है. इसका केवल यही कारण है कि वह बाहर के बाहरही भारतीय खजानेसे मिलता है।

(१३) अधिकारियोंको सबसे प्रथम इस बातकी चिन्ता रहती है कि उनका वेतन उनको बिना किसी रोकटोकके मिलता जाय।

(१४) आजकलका समय भारतवर्षके 'होमरूल" प्राप्तिके आन्दोलनके लिये अच्छा है।

(१५) सरकार इस आन्दोलनको इसलिये बुरा समझती है कि इसके यशस्वी होनेसे उसकी हानि होगी।

(१६ सब व्याख्यानोंमें सम्राटकी इच्छा और भारत-वर्षीय राज्य व्यवस्थामें बड़ा भेद दिखलाया गया है।

(१७) कम्पनी सरकारके समय गवर्नर जेनरलको विलायतसे पत्र आया करता था कि "इस वर्ष इतना मुनाफा अवश्य होना चाहिए। उसको वसूल कर लीजिये और यहां भेज दीजिये।" इसी प्रकारकी राज्यव्यवस्था रही। लोगोंके हितकी ओर ध्यान बिलकुल नहीं दिया जाता था। यह राज्यव्यवस्था अच्छी नहीं थी। साम्राज्ञी विक्टोरियाके समय पार्लमेन्टको भी यह पद्धति पसन्द

नहीं थी। परन्तु आजकलकी राज्यप्रणाली फिर कम्पनी सरकारकी पद्धति की सी ही है।

(१८) किसी भारतवासीने इस सरकारको अथवा उसके नौकरोंको यह कहकर बुलवा नहीं भेजा था कि 'आप यहां आइए' इसलिये उनकी आवश्यकता भी नहीं है।

(१९) जब कहा जाता है कि हमारी शिकायतोंको रफा कीजिये तब सरकार कुछ भी ध्यान नहीं देती इसलिये सरकार अकलमन्द और उदार नहीं है।

(२०) सरकारकी दृष्टि इतनी अंध होगई है कि उनकेही विवरणोंसे निकालके दिखलाई हुई संख्याएं उनकी नज़रमें नहीं आतीं।

(२१) यथार्थमें यह सरकार ही नहीं है। क्योंकि वह अपने सब कर्तव्योंको टाल देती है।

(२२) खास बात तो यह है कि क्या भारतवर्ष जैसे राष्ट्र को पशुवत् रखना उचित है?

(२३) यदि होमरूलके आन्दोलन का मार्ग कोई रोके तो उसको धक्का दके रास्तेसे हटा देना चाहिए।

इस प्रकारकी बातें मि. तिलक जैसे लोग जब अपठित श्रोतागणोंके सामने करते हैं तब लोगोंके हृदयोंमें सरकार विषयक अप्रीति उत्पन्न होनेका अवसर मिलता है। ये बातें होमरूलके आन्दोलनके बहानेसे कही गई हैं। सच पूछिए तो इनमें सच्चा आन्दोलन नहीं है। केवल ऐसी बातें कहकर सरकार विषयक अपना द्वेषभाव प्रकट करनेकी उनकी इच्छा दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार अपना पक्ष दरसा कर बै० बिनिंगने सरकार की ओरके गवाहोंकी गवाही लेना प्रारंभ किया।

प्रथम लघुलेखक व सब इन्स्पेक्टर त्र्यंबक भिकाजी दात्रेकी गवाही ली गई। शपथ आदि होनेके पश्चात् बै० बिनिंगने प्रश्न किए। उनके उत्तर देते समय श्रीयुत दात्रे कहने लगे, अठाईसवीं परिषदमें हाजिर रहनेके लिये मै गत मई मासमें बेलगांव भेजा गया था। मई महिनेकी पहिली तारीखकी संध्याके छः बजे परिषद्के खेमेमें श्रीयुत तिलकके व्याख्यानमें मैं हाजिर था। मि. गाइडरके हुकुमसे मै परिषद और सभामें उपस्थित रहा। मराठी लघुलिपिमें मैंने व्याख्यान लिख लिए। यही मेरा खास काम है। यह काम करते मुझको छः साल हो गए। बेलगांवके तिलकजीके व्याख्यान मैंने लघुलिपिमें लिखे है। (निशान A के कागज कोर्टके हवाले किए गए)।

बै० जिना:—व्याख्यानके रूपमें ये कागज़ सबूत नहीं समझे जायंगे। इन्हे सबूतमें बल पहुंचाने वाले ही मानना चाहिए। क्योंकि लो० तिलककी वक्तृताएं ये नहीं है। इससे केवल इतनाही निकलता है कि तिलकजीका व्याख्यान लघुलिपिमें लिख लिया गया था।

मैजिस्ट्रेट साहेबने बै० जीनाकी यह बात नोट करली।

बै० बिनिंगके प्रश्नोंके उत्तरमें कहा—इन्हें लघुलिपिसे मैंने देवनागर अक्षरांकित मराठीमें लिखा है। तिलकजीकी वक्तृता मैंने जैसी सुनी वैसी हूबहू लिखी है। (देवनागरी मराठीमें लिखे हुए कागज निशान नं० B. कोर्टके हवाले किए गए।) जिस समय मै लघुलिपिमें व्याख्यान लिख रहा था तब मैं तिलकजीसे चार पांच कदमोंके फासले पर था। तिलकजीके व्याख्यानके समय भीड़ बहुत थी। सर्व जातियोंके लोग उसमें देख पड़ते थे।

१९१६ के मई मास की ३१वीं तारीखको नगरमें कापड़ बजारके पीछेके खुले मैदानमें संध्याके ७ बजे तिलकजी ने जो व्याख्यान दिया उसमें भी मैं हाजिर था। सब जातियों के लोग उसमें थे। उस व्याख्यानको मैंने लघुलिपिमें लिखा है। निशान C के कागज कोर्टके हवाले किए गए' तिलकजी के व्याख्यानके समय मैं उनसे ४।५ कदमोंके फासले पर था। (देवनागर मराठी निशान D. वाले कोर्टके हवाले किए गए।) यह देवनागरी मराठी मेरी बुद्धिके अनुसार ठीक है। १९१६ के जून मासकी १ली तारीखको नगर में तिलकजीने जो व्याख्यान दिया था उसमे भी मैं हाजिर था। उसको भी मैंने लघुलिपिमे लिखा है। (लघुलिपिकी प्रति और उसकी देवनागरी मराठीकी प्रतियां निशान E और F कोर्टके हवाले की गईं।) बै० जीनाने जिरह मुलतवी रखी।

इसके पश्चात् अनंत कृष्ण ठाकुर बी ए. की गवाही शुरू हुई। बै बिनिंग् के प्रश्नोंका उत्तर देते हुए वे कहने लगे, मैं बंबई विश्वविद्यालयका बी ए हूं। मैं दस सालसे ओरियंटल ट्रान्सलेटर के दफ्तरमें नौकर हूं मुझको मराठी के जो कागज़ात दिखाये गये मैने पढ़े है। मैंने स्वयं अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया, परन्तु मैने यह देखा है कि वह शुद्ध है कि नहीं। अनुवाद ठीक हुआ है।

बै० जिनाने कहा, तिलकजीके व्याख्यानोंका अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत गवाह श्रीयुत ठाकुरने नहीं किया है। उन्होंने केवल उसको देखा है। असल अनुवादकको गवाह बनाके लाया जाय तो ठीक हो। मैं असल अनुवादकसे बिना जिरह किए अनुवादको मान लेनेके विरुद्ध हूं। इसके

उत्तरमें बै० बिनिंगने कहा, असल अनुवादकको हाजिर करनेका मेरा इरादा नहीं है। इस गवाहकी गवाही मेरे मतलबके लिये काफ़ी है।

बै० जिनाकी यह बात नोटकर ली गई। और तीनों अनुवादोंको सबूतके लिये कोर्टने दाखिल कर लिया G H. I. बै० जिनाने जिरह मुलतवी रक्खी।

इसके बाद बै० बिनिंगने तिलकजीके पहिले राजद्रोह के मुकद्दमों और सजाओंकी मिसलें सबूतके लिये पेश कीं।

बै० जिनाने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा तिलकजी के ऊपर इस समय जो अभियोग है वह पिनलकोडके दफा १०८ के अनुसार है। परन्तु इस बातका पहिले निर्णय होना चाहिये कि यह दफा यहां लग जाती है या नहीं। और जबतक यह निर्णय न होजाय तबतक पहले अपराधोंके कागजोंको सबूतमें लेना ठीक नहीं होगा। जब अभियोग सिद्ध होजाता है और दण्ड सुनाना होता है तब ऐसे हवाले देना ठीक होता है। उसके पहिले नहीं। यदि पहले कभी तिलकजीको राजद्रोहके लिये सजा हुई हो तो क्या इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि इस समय भी उन्होंने वही अपराध किया है? ऐसा कहना शक्य तथा योग्य नहीं है। इसलिये ये कागजात सबूतमें न लिये जायँ। बै० बिनिंगने एविडन्स एक्टकी दफा १४ अपने कथनके समर्थनार्थ कोर्टको दिखलाई। तथा इंडियन ला-रिपोर्ट पृष्ठ १३ का भी हवाला दिया।

बै० जिनाने कहा—मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि पुराने अपराधोंके कागजोंको सबूतमें दाखिल करने से कोर्टके मनमें पक्षपात आजायगा। परन्तु यह अभियोग

तिलकजीके आजकलके कामोंसे ही सिद्ध होना चाहिये। अतः इन कागजोंको सबूतमें मिला लेना उचित नहीं है क्योंकि इसका हवाला लेना मानो और लोगोंके मतपर निर्भर करता है। मजिस्ट्रेट साहबने कहा कि ये कागज सबूतमें दाखिल कर लेने चाहिये। उनमें यह लिखा है कि पहिले तिलकजीकी १८ महीने की सज़ा हुई थी और दूसरी बार ६ वर्ष की सजा और १००० रु० आर्थिक दण्ड हुआ था। बै० जिनाने कहा, सरकारने आर्थिक दण्ड माफ किया है। बै० बिनिगने सम्मति दी कि उसमेंसे आर्थिक दण्डकी बात उड़ा दीजाय।

इसके बाद बै० जिनाने कोर्टसे यह बिनती की कि चूंकि बै० बिनिगने यह नहीं दिखलाया है कि व्याख्यानों के कौन कौनसे अंश आक्षेपयोग्य हैं इसलिये उनको समझे बिना बचावके लिये सबूत मांगना आपके लिये उचित नहीं होगा। अभियोगकी दरख्वास्तमें यह नहीं दिखलाया गया है कि किस खास भाग पर सरकारका कटाक्ष है।

मजिस्ट्रेटने कहा कि वह दरख्वास्त तो कुल व्याख्यानों को आक्षेपयोग्य समझती है। यही भाव बै० बिनिगकी बातों से निकलता है। बै० बिनिगने कहा—मेरा कटाक्ष कुल व्याख्यानों पर है, भिन्न २ खास भागो पर नहीं। मैजिस्ट्रेटने कहा यह दिखलानेके लिये वादीको बाधित करना ठीक नहीं। अमुक एक वाक्य या अधिक वाक्य आक्षेपयोग्य है। बै० बिनिगने उसके समर्थनार्थ कुछ बातें दिखाई ही है।

बै० जिनाने कहा—मेरा इतनाही कहना है कि कौनसा भाग आक्षेपयोग्य है, इसका खुलासा हो जाय। जैसे कि बै० बिनिगने जो पहिली बात कही है कि, ब्रिटिश सरकारने

भारतवर्षको चिरंतन दासत्वमें रक्खा है। इस बातके समर्थ-नार्थ खराबसे खराब हिस्सा तो वे दिखला दें। यह न दिखला दिया जाय तो यही सिद्ध होगा कि सब व्याख्यानोंमें उस बातके समर्थनार्थ एक भी वाक्य नहीं है।

बै० बिनिंगने कहा, मेरेसे खास खास भाग दिखला देनेके लिये कहा जाता है तो मै उन भागोंको दिखला देता हूं; उनपर बै० जिना निशान करलें।

बै० बिनिंगने तीनों व्याख्यानोंसे आक्षेपार्ह भाग दिखा दिये।

बै० जिनाने मराठी लघुलिपिकी प्रतियां देखनेके लिये मुकद्दमा मुलतवी करनेकी प्रार्थना की। वह मान ली गई। और मुकद्दमेका काम दो बजे बंद हो गया।

दूसरा दिन।

मंगलवार ता० ८ अगस्त १९१६

बै० बैप्टिस्टा तिलकजीके ओरसे बै० जिनाकी मदद के लिये उपस्थित थे।

श्री त्र्यंबक भिकाजी दात्रेसे—बै० जीना जिरह (cross examination) करने लगे। उनके प्रश्नोंके उत्तर देते समय श्री दात्रेने कहा—निशान नं० A. का कागज प्रथम व्याख्यान की मराठी लघुलिपीकी प्रति है। मै एक मिनट में ११० से १२० शब्द तक लघुलिपीमें लिख सकता हूं। साधारण वक्ता लोग एक मिनट में ११० शब्द बोलते हैं। तिलकजी ७० । ८० । ९० शब्द बोलते है। उनके समग्र व्याख्यानको मैंने नोट किया है। कुछ भाग पेन्सिल बनाते समय छूट गया होगा। तिलकजीके व्याख्यानके समय मुझे पेन्सिल

बनानी पड़ी या नहीं, यह कुछ स्मरण नहीं है। श्री देशपांडे नामक एक पुलीस सब—इन्सपेक्टर लघुलेखक है, वे भी नोट्स लेते थे। निशान नं० A, C, और E की प्रतियां सब मेरे ही हाथकी है। निशान A. वाला सब व्याख्यान मैंने सभाके ही बीचमें साथ लिख लिया था। देशपांडे भी लिख रहे थे। हम दोनोंने मिलकर अपने लघुलेखोंपर से देवनागरी मराठी प्रति तैयार की। उनके लिये नोटोंमें कुछ शब्द ऐसे भी हो सकते है जो मेरे नोटोंमें न हों। गलती होना शक्य नहीं है। कोई वाक्य नहीं छूटा। संभवतः कुछ शब्द छूट गये होंगे 'कहीं कहीं' ये शब्द बार बार आते थे इस लिये उनको मैंने नोट नहीं किया। परंतु संकेतार्थ मैंने कुछ चिह्न रखे है। 'राज' व 'राज्य' इनमें गलती होना शक्य नहीं है। मैं स्वयं लघुलिपीमें 'राज' और 'राज्य' में भेद नहीं रखता। मैं सी. आई. डी में हूं। मुझको ७०) रु० तनख्वाह मिलती है। मैं पांच सालसे व्याख्यानोंके नोट लेता हूं। मैंने ८। ६ दिनों में देवनागरी प्रति तैयार की। देशपांडेने और मैंने मिलकर प्रति तैयार की। इस लिये कुछ भाग उनके हाथका और कुछ भाग मेरे हाथका है।

पुनः प्रश्नके उत्तरमें।

मुझको लघुलेखनके अतिरिक्त और कुछ नहीं करना पड़ता। कभी बहुत और कभी थोड़ा पर सालभर बराबर काम रहता है।

अनंत कृष्ण ठाकुरकी जिरह।

प्र०—'व्यापारी कल्पनाके तत्वपर सम्राट्की राज्य व्यवस्था है" क्या इस वाक्यका अर्थ यह नहीं होता कि इस प्रकारकी सरकारकी राज्य व्यवस्था है।

उ०—ऐसा अर्थ नहीं होता। सम्राट्की व्यवस्था ही अर्थ होता है।

मजिष्ट्रेटने कहा,—तिलकजीनें "राज्यतत्व" कहा होगा और रिपोर्टरोंने 'राजतत्व' लिख लिया होगा।

बै० जिनाने कहा कि मेरा भी यही आशय है। बै० जिनाने आगे जिरह करते हुये कहा।

प्र०—'व्यवस्था' में कुछ अड़चन नहीं। "मैसूरमें क्या अड़चन है?" इस वाक्यमें अड़चन है का अनुवाद 'obstructed' किया है, क्या वह ठीक है? उ० हां प्र०-क्या अड़ना के माने 'to stop, hinder, impede' आदि नहीं होने चाहिए? इसपर बै. बिनिगने कहा कि 'obstruct' के स्थानम 'impede' को हम मानते है। पश्चात् गवाह से फिर प्र०, 'राज्यतत्व व्यापारी कंपनी के तत्व पर" का अनुवाद आप क्या करेंगे। उ०—Sovereign's policy is in accordance with Trading company's policy प्र० यह अनुवाद ठीक है? राज्यतत्व माने State policy नहीं? उ० नहीं। 'राज्यतत्व' माने State policy पर 'राज तत्व' माने 'Sovereign's personal policy' है। प्र० राज्य तत्व और राजतत्व इन शब्दोंमे गड़बड़ी पड़ सकती है कि नहीं?

मजिस्ट्रेट:—क्या आपके प्रश्नका यह आशय है कि बोलते समय श्री तिलकने राज्यतत्व कहा और लघुलेखकने राजतत्व लिख लिया? बै. जिना—हां मेरा यही आशय है। कोर्टके यह कहने पर कि जिरह आगे बढ़ाई जाय। प्र०—'तो उसको धक्का देकर हमको आगे जाना पड़ेगा इसका अनुवाद आप क्या करेंगे? उ०—We shall have to go out by giving

him a push. प्र०—तो फिर इस अनुवादमें We have to go out यह लिखा है? उ०—दोनोंका एकही अर्थ है। प्र०—इस वाक्यकी क्रियाका कौन काल है? उ०—वर्तमान भविष्य। प्र०—इस वाक्यका अनुवाद "We may have to go out etc." यह नहीं होगा? उ०—नहीं। प्र०—वर्तमान भविष्य कालका अर्थ संभवता दर्शक नहीं होगा? उ०—नहीं, हेतु दर्शक होता है। प्र०— तो फिर 'जाना है' इसमें संभव अर्थ नही निकलता? उ०—नहीं प्र०—'सरकार' शब्द का क्या अनुवाद है? उ०—Government प्र०-इसका दूसरा अर्थ नहीं होता? उ०—सरकार शब्दके दूसरे भी अर्थ हैं। परन्तु वह प्रकरण पर निर्भर है। प्र०— ब्यूरॉक्रसीके लिये मराठीमें कौनसा प्रति शब्द है? ब्यूरॉक्रसीका मराठी में "अधिकारी वर्ग" अनुवाद होगा। परन्तु ठीक उसी अर्थका द्योतक और कोई शब्द है की नही, यह मुझे ज्ञात नहीं। प्र०—पर सरकार शब्दके बहुतसे अर्थ है न? दिवानी कोर्टको सरकार कह सकते है कि नहीं? उ०—उसको यदि उस अर्थमे प्रयुक्त किया जाय तो गलती नहीं होगी। प्र०—कलेक्टरके लिये 'सरकार' शब्दका प्रयोग हो सकता है या नहीं? उ०—किया जाय तो हो सकता है। साधारणतया किसी दिवानी या मेजिस्ट्रेटी अधिकारीके लिये वह शब्द लगजायगा। प्र०—'वृथाभिमान' का अर्थ क्या है? उ०—conceit प्र०—यह शब्द क्या किसी कोश में देखकर रक्खा है? उ०—नहीं, वह मुझको याद था। प्र०—अच्छा, यह देखिये इस कोशमें वृथाभिमानके लिये conceit शब्द न देकर over confidence शब्द दिया है। यह यहांपर ठीक होगा या नहीं? उ०—प्रकरणानुसार होगा,

दोनोंके अर्थ मिलतेही हैं। प्र०—तो फिर 'वृथाभिमान' माने over confidence ही समझा जायगा न ? उ०-हां। प्र०-'तीन धूर्तों की कहानी' में धूर्त शब्दका क्या अनुवाद है ? उ०—Rogue, डॉ. भांडारकरकी पुस्तकमें यही अर्थ दिया है। प्र०—'तुम बड़े धूर्त हो' का अनुवाद "you are a very shrewd man" नहीं है ? उ०—हां। बै० जिना-(कोर्ट के प्रति)-धूर्त के लिये Rogue प्रति शब्द ठीक नहीं है इसके स्थानमें cunning शब्द ठीक होगा। प्र०—'गुलामगिरी' का क्या अर्थ है ? उ०—slavery प्र०—इस शब्दका slavery के अतिरिक्त कोई और अर्थ नहीं है ? उ०—दूसरा कोई अर्थ संभव नहीं है।

प्र०—इस कोशमें तो 'गुलामगिरी' के लिये slavery प्रति शब्द ही नहीं दिया है। servility आदि शब्द दिये है। अब तो यह मानेंगे कि गुलामगिरीका अर्थ servility होता है। उ०—संभव है वैसा भी अर्थ हो जाय। प्र०—इन व्याख्यानों का अनुवाद किसने किया ? उ०—श्री. ओकने। प्र०—ओक कौन ? आपके अधिकारी ? उ०—हां। प्र०-तो फिर आपने यह देखा कि उनका अनुवाद दुरुस्त है कि नहीं ? उ०-वह मैने मूलके साथ मिलाके देखा और मैने उसको ठीक पाया। प्र०—अर्थात् आपने अपने ऊपरके किए हुए अनुवादको जांचकर उसपर "ठीक है" की छाप भी लगा दी। अच्छा तो ये ओक कहां हैं ? उ०—बंबईमें। प्र०—आपको वे इधर कभी मिले थे ? उ०—पंद्रह दिनोंके पूर्व बंबईमें और चार पांच दिनोंके पूर्व पूनामें भी मिले थे। प्र०—'राज्यव्यवस्था' का अनुवाद Administration of the State नहीं करना चाहिये ? इसपर बै० बिनिंगने कहा कि सरकारी अनुवाद

सही है अथवा गलत इसका विवाद न बढ़ाकर मैं बै० जिना का किया हुआ अनुवाद मान लेता हूं। उसपर बै० जिनाने कहा कि मैं तो यह नहीं कहता कि सरकारी अनुवाद ठीक है। अस्तु। प्र०— 'खरचने वालेका खर्च होता है पर भंडारी का पेट दुखता है' इस कहावतको आपने सुना है। उ०-हां। वह एक प्रसिद्ध कहावत है। प्र०—इसका अर्थ क्या है?

उ०—'पेट दुखता है' का अर्थ मालिक का खर्च करना भंडारी को अच्छा नहीं लगता। प्र०—श्री. आपटेकी कहावतोंकी पुस्तकमें उसका क्या अर्थ दिया है? उ०—मालिक खर्चनेकी आज्ञा देता है पर उसका मुनीम खर्चनेसे हिचकता है। प्र०—यह अर्थ ठीक है न? उ०—हाँ। प्र०—"इससमय जैसी राज्यव्यवस्था है ऐसी ही राज्यव्यवस्था रहेगी तो युरोपियन् राष्ट्रोंमें इंग्लंड कोई अधिकार नहीं दे सकता इसका अर्थ क्या है, आप कह सकेंगे? उ०—इसका तो ठीक अर्थ बोध नहीं होता। प्र०—राष्ट्र विषयक बात है। 'यह एक जातीय प्रश्न है कि क्या किसी विशिष्ट जातिके साथ पशुवत् व्यवहार होना चाहिए' इ० का अनुवाद पढ़ियेगा? उ०—It is a national question whether a particular nation is to be treated like a beast etc. प्र०—इस वाक्यमें पशु शब्दके लिये जो beast शब्द है उसके बदले cattle शब्द रखाजाय तो काम चलेगा या नहीं? उ०—नहीं। प्र०—'गोरू' की नाईं. इसका क्या अर्थ होगा? उ०—like cattle. प्र०—'पशु' और 'गोरू' में कुछ अंतर है? उ०—गोरूके माने गाय, बैल, आदि और पशु माने बड़े बड़े जानवर जैसे कुत्ता, सुअर आदि। पशु शब्दके अन्तर्गत गोरू शब्द हो सकता है। परंतु गोरूमें पशुका नहीं। प्र०—तो

फिर पशु शब्द अधिक व्यापक है ? उसका अनुवाद lower animals नहीं होसकता ? उ०—नहीं। मैं lower beasts अर्थ करूंगा। प्र०—यहां तुलना किनके बीचमें है ? उ०—पशु और मनुष्यके बीचमें. प्र०—तो फिर पशुवत् रखनेके माने क्या है ? Treating without taking into consideration their desires, their likings, their voice, their sentiments. प्र०—यही ही न। अच्छा वही रहे। आप लोगोंकी स्थिति यह हो जायगी कि "सारी राततो जागते रहे पर जब चोर आए तब सो गए" यह वाक्य आपने सुना है ? उ०—हां-बहुत बार सुना है। प्र०—तो फिर वह एक कहावत ही है न ? उ०—वह कुछ ठीक कहावत ही नहीं है। प्र०—बिलकुल ठीक न हो पर करीब करीब कहावतसी है, ऐसा कहनेमें कोई हर्ज तो नहीं है ? अस्तु। युद्धको प्रारम्भ होनेके बाद तिलकजीने जो डिक्लेरेशन किया है उसको आपने पढ़ा है ? (बै० बिनिंगने इस प्रश्नका विरोध किया।) उ०—नहीं: मुझको मालूम नहीं। (उसके बाद श्री. ठाकुरसे सब व्याख्यान पढ़ कर) जहां जहां 'गुलामगिरी' आया है वहां वहां उसका क्या अनुवाद है कहियेगा ? उसके बाद दूसरे एक लघुलेखक व सब-इन्स्पेक्टर सी. आई. डी. सोमनाथ शंकर देशपांडेकी गवाही शुरू हुई। वे कहने लगे,—पिछले मई मासकी पहिली तारीखको बेलगांवमें जो व्याख्यान हुआ उसमें मैं और दात्रेजी उपस्थित थे। दोनोंने तिलकजीका व्याख्यान लघुलिपिमें लिखा। मैंने जो कुछ सुना बिलकुल ठीक वही लिख लिया है। (निशान K व L की ८ प्रतियां उन्होंने कोर्टमें पेशकीं।) मैं तिलकजीसे चार पांच कदमोंके फासले पर था, मैं इस

समय दो पेन्सिलें ले गया था। मुझको देवनागरीका आ प्रतिलेख दिखलाया गया, मैंने अपनी प्रति उससे बिलकुल ठीक किया है। शार्टहेण्डनोट्स देखनेके लिये मिल आँय और इसके लिये मुकद्मा मुलतवी रहे, यह प्रार्थना बै० जिनाने की और वह स्वीकृत हुई।

तीसरा दिन।

बुधवार ता० ६ अगस्त १९१६।

अनन्त कृष्ण ठाकुरकी जिरह।

बै० जिनाके प्रश्नको —मैंने सब व्याख्यानोंको जांच लिया, सब जगहोंमें गुलामगिरीका अनुवाद 'स्लेवरि' किया है। मुझको आपटेकी संस्कृत डिक्शनरी मालूम है। वह प्रसिद्ध है। पशु संस्कृत शब्द है। पशुका अनुवाद कैटल हो सकता है। कैटलमें पशुका समावेश होता है।

पुनः प्रश्न।

डा० भांडारकरकी दूसरी संस्कृत पुस्तक सुप्रसिद्ध है। प्रो० रानडेके अंग्रेजी मराठी कोषमें गुलामगिरी और दास्य इनमें से दास्यका ठीक अनुवाद 'बॉंडेज' है।

(कोर्टकी आज्ञा से) फिर सवाल।

दास्यका अर्थ सर्विट्यूड नहीं है। सर्विस्ट भी नहीं डिक्शनरी में लिखा होगा। दास्यका सर्विट्यूड या सर्विस्ट अर्थ हो सकेगा।

सोमनाथ शंकर देशपांडेकी जिरह।

मैं दो वर्षोंसे लघुलेखकका काम कर रहा हूं। मुझको ७०) रु० वेतन मिलता है। कभी २ मुझको कुछ शब्द

छोड़ने पड़ते हैं। परन्तु सब वाक्य कभी नहीं छूटता। कभी २ वाक्य गलतीसे लिखा जाता है। और इस नोटबुक में कुछ वाक्य गलत लिखे गए होंगे और कुछ छूट गये होंगे। व्याख्यानके बीचमें हंसी व तालियां होती हैं। परन्तु तिलकजीका कहा हुआ प्रत्येक वाक्य मैंने लिखा है। ताली व हँसीके कारण कोई दिक्कत नहीं पड़ी, क्योंकि उस समय वक्ता महाशयभी रुक जाते थे। ताली बंद होनेपर वक्ता फिर बोलने लगता है यह मेरा अनुभव है। मैं करीब करीब एकसौ सभाओंमें हाजिर रहा हूंगा। कहीं २ दातेजी की और मेरी लघुलिपिमें फरक है। राज और राज्यमें मैं फरक करता हूं। सुनते समय दोनोंमें गड़बड़ी नहीं हो सकती॥ बै० जिनाने 'राज' व 'राज्य' ये दोनों शब्द लघुलिपिमें कागज पर लिखनेको कहा और कोर्टसे बिनती की कि यदि उत्तर देनेका हक न जाता हो तो वह कागज सबूतमे दाखिल-कर लिया जाय। बै० बिनिंगने कहा—उत्तर देनेका जिनाजी का हक मैं निकाल लेना नहीं चाहता बै० जिना उसके लिये इतने दांव पेच न करें।

बै० जिनाने कहा कि बै० बिनिंग समझते है हमलोग घरमें है मुझको इस कोर्टकी इस विषयमें आज्ञा चाहिये॥ मजिस्ट्रेट साहब "नही जायगा" जब कहे तब वह दाखिलकर लिया जाय। उसके बाद मजिस्ट्रेट साहबने श्री तिलकजी का इजहार लेनेके लिये उनको अपने टेबुलके पास आकर खड़े रहनेको कहा। शपथ-विधि होनेके पश्चात् प्रश्न—आपने पहिली मईको बेलगांवमें, और ३१ मई तथा १ जूनको नगरमें, आपहीके शब्दोंमें कहना हो तो दोनों स्वराज्य विषय पर वक्तृताएं या व्याख्यान दिए थे? उ०—हां। स्वराज्य

अर्थात् होमरूलपर जो व्याख्यान दिए थे, व्याख्यानोंके विज्ञापनों पर दोनों शब्द लिखे हुए थे। प्र०—आपकी वक्तृताओं की देवनागरी प्रतिलिपि जो आपके वकीलों ने मँगाली है आपने पढ़ी है? उ०—हां। प्र०—आप जो कुछ बोले है उसकी रिपोर्ट ठीक ली गई है? उ०—अक्षरशः ठीक नहीं है। प्र०—मुख्यार्थमें ठीक है या नहीं? उ०—साधारणतया सारांशमें वह ठीक हो परन्तु कई स्थानोंमें वाक्य छूट गये हैं, और कई जगह अधूरे रह गये है, ऐसा मैंने देखा है। प्र०—यह व्याख्यान देनेसे आपका क्या उद्देश्य था? उ०—होमरूलका पक्ष सिद्ध करना, होमरूल क्या है? यह समझा देना, उसके पानेका उत्तम उपाय कौनसा है यह बतलादेना और होमरूल लीगके सभासद बननेके लिये लोगोंको प्रेरित करना। प्र०—होमरूलके माने क्या है? यह थोड़ेसे शब्दोंमें मुझको स्पष्टतया आप बतला सकेंगे? उ०—यह सब मेरी वक्तृताओंमें दिया है। प्र०—सरकारने राजद्रोहके दोषारोपके कारण आपपर अभियोग चलाए थे? उ०—हां। प्र०—दोनों समय आपको दण्ड हुए थे?

उ०—हां। प्र०—आपको और कुछ कहना है?

उ०—नहीं। वह मै अपने वकीलपर छोड़ देता हूं।

इस प्रकार श्रीयुत तिलकजी का इजहार होने के पश्चात् बैरिस्टर जीनाने कहा कि हमें सबूत नहीं देना है। तब वादी की ओरसे बैरिस्टर विनिंगकी बहस शुरू हुई—उन्होंने कहा। बचावके लिये क्या सबूत आवेगा यह मुझको मालूम नहीं है अतः मैं बड़ा दुबधेमें हूं। अनुमानके बलपर ही कहना हो तो मालूम पड़ता है कि कुछ शब्दोंका अनुवाद गलत है। यही कहना एक बचावका उपाय है। परन्तु

यद्यपि उनके सूचित किये हुये शब्द उन उन स्थानों पर रक्खे जायं तो भी व्याख्यानोंका भाव बदल जायगा, यह मै नहीं समझता। मुझको मराठी नहीं आती इससे मेरी हानि है। 'दास' शब्दका अर्थ स्लेवरी शब्दसे प्रगट नहीं किया जासकता यह कहनेका प्रयत्न किया गया है परन्तु मेरी समझमें तिलकजीके कहनेका भाव अवश्यमेव यही है कि भारतवर्ष चिरकालीन गुलामगिरीमें रहेगा। 'दास्य' और 'गुलामगिरी' ये दोनों शब्द व्याख्यानोंमें साथ साथ आये है और उनका अर्थ 'बॉन्डेज' तथा 'स्लेवरी' ही है। शब्दोंके अर्थोंमें शक हो तो उसका फायदा अभियुक्त को लेने देना ठीक है, पर 'दास्य' का अर्थ सर्विस तो होता ही है। हालमें प्रकाशित रानडेके कोषमें 'सर्विस' शब्दका अर्थ 'दास्य' दिया है और उसी कोषमें 'बान्डेज़' का भी अर्थ 'दास्य' ही दिया है। बैरिस्टर जीनाने कैन्डीके कोषका आधार लिया है, पर उसमें भी 'दास्य' का अर्थ सर्विट्यूड, सर्विस, सर्वेन्टशिप यही दिया है। आपटेके कोषमें दास्यका अर्थ सर्विट्यूड, बॉन्डेज और स्लेवरी दिया है। आश्चर्य तो इस बातका है कि श्रीयुत तिलक जैसे अनुभवी और कुशल वक्ता ऐसे शब्द का प्रयोग करते है। 'सदाके लिये नौकर बने रहना स्लेवरीसे बेहतर है ही नहीं'। गुलामगिरी ही स्लेवरी है और यही अर्थ रानडेके कोषमे दिया है। 'धूर्त' शब्दके विषयमें यह कहा गया है कि 'धूर्त' माने 'कनिंग' है। पर 'कनिंग' अर्थात् लुच्चा मनुष्य मान्य रहता ही हो यह बात नहीं है। डाक्टर भांडारकरने 'धूर्त' शब्दका अर्थ 'रोग' दिया है। घमण्ड (वृथाभिमान) का अनुवाद ओवरविनींग, कान्फिडेन्स सूचित किया गया है परन्तु वादीके अनुवादमें और

इस अनुवादमें बहुत फरक नहीं है। पर 'होमरूल' का ध्येय नियमानुकूल है या नहीं अथवा इस विषयकी चर्चा होनी चाहिये या नहीं इस विषयमें मै आज नहीं कहना चाहता। जो कोई वाणीसे उच्चरित शब्दों द्वारा सम्राट् या नियम द्वारा प्रस्थापित राज्यके विषयमें द्वेष, तिरस्कार, या अप्रीति उत्पन्न करे या करनेका प्रयत्न करे उसको दण्ड होना चाहिये। और यही दफा १२४ है। मेरा कहना इतना ही है कि श्री तिलकजीने दफा १२४ (अ) के अन्तर्गत आने वाले व्याख्यान दिये हैं, इसलिये वे १ वर्ष तक सदाचारके निमित्त जमानत दें। श्रीयुत तिलकजीको दफा १२४ (अ) के अनुसार दो बार दण्ड हो चुका है यह बात मजिस्ट्रेट साहब खूब ध्यानमें रक्खें। उनको पहिले जो १८ मासकी सजा हुई थी उसमें से कुछ सजा कुछ शर्तों पर कम करके उनको छोड़ दिया था तो भी वे राजविद्रोही बातों का प्रचार करते ही रहे।

बैरिस्टर जीनाने इसका विरोध किया और कहा कि, फैसलेमें वे शर्तें दी नहीं गई हैं, इसलिये तिलकजीने उन शर्तोंका पालन नहीं किया, यह कहनेके लिये बैरिस्टर बिनिंगके पास कोई आधार नहीं है।

बैरिस्टर बिनिंगने यह बात मान ली और वे कहने लगे कि श्रीयुत तिलकजीको दूसरी बार ६ सालकी सजा हुई परन्तु उसकी भी परवाह न करते हुए वे व्याख्यान देते ही रहे। कितनी ही सूचनाएं दी जायं तो भी वे व्यर्थ हो जाती हैं। यह इनकी दशा है वे फिर वक्तृताएं देते ही जाते हैं। उन वक्तृताओंको बन्द करनेके लिये कोई न कोई उपाय करनाही चाहिये। नहीं तो इससे भी बुरी बातें के

करेंगे। बैरिस्टर विनिंगने अपने कथनकी पुष्टिके लिये निम्नलिखित आधार दिखलाए।

२२ बम्बई पृष्ठ ११२। ८ बम्बई ला रिपोर्ट पृष्ठ ४५७।
१० बम्बई पृष्ठ ८६६। २० इलाहाबाद ला रिपोर्ट पृष्ठ ५५।
३२ मद्रास पृष्ठ २७। ३४ कलकत्ता ला रिपोर्ट पृष्ठ ९९१।

जब कोई मनुष्य सरकारके बारेमें श्रोताओंमें द्वेष, तिरस्कार या अप्रीति उत्पन्न करनेवाले व्याख्यान देता है उस समय वह मनुष्य दफा १२४ (अ) के अनुसार अपराध करता है। किसी कलेक्टर या कमिश्नरने गलती की है, यह कहने का अधिकार सबको है। परन्तु "सभी कलेक्टर या कमिश्नर गलतियां करते हैं" ऐसा समुच्चय रूपमें कहने का किसीको अधिकार नहीं है। श्रीयुत तिलकजीने सरकारी अधिकारियोंके विषयमें तिरस्कार उत्पन्न किया है। दफाके शब्द इस प्रकार हैं कि द्वेष, अप्रीति, अथवा तिरस्कार उत्पन्न करनाही दफा १२४ (अ) के अनुसार गुनाह करना है।

'स्वराज्य' या 'होमरूल' व्याख्यानका विषय है, यह प्रगट करनेके लिये ये दो शब्द विज्ञापनोंपर लिखे गये थे या नहीं मुझको मालूम नहीं। मैंने खूब ध्यान देकर वक्तृताओं को पढ़ा है परन्तु 'स्वराज्य' या 'होमरूल' का एक प्रस्ताव भी उनमें नही पाया जिससे जाहिर होता कि 'स्वराज्य' या 'होमरूल' किस प्रकारका होना चाहिये। व्याख्यानोंमें कुछ मनोरंजक तथा कुछ नीरस बातें कही गई हैं। और वक्तृत्व कौशल्यकी दृष्टिसे वे उत्तम हों परन्तु 'होमरूल' या 'स्वराज्य' का वर्णन कहीं नहीं बतलाया गया। उदाहरणके लिये बेलगांवकी वक्तृता लीजिये। इस वक्तृतामें श्रीयुत तिलकजी ने 'होमरूल' या 'स्वराज्य' का कोई खास खुलासा कहीं

नहीं किया। इसलिये सरकारकी ओरसे मेरा यह कहना है कि होमरूलके बहानेसे सरचार्लस् फेरनके शब्दोंमें कहेंगे कि नियम द्वारा प्रस्थापित राज्यपर अप्रमाणिक और अनैतिक हेतु लगानेका श्रीयुत तिलकजीने प्रयत्न किया है। और भी ध्यान देने की बात यह है कि श्रीयुत तिलकजीको दो बार सजा हुई है तो भी वही अपराध वे करते है। बेलगांवका व्याख्यान सुननेको सब जाति तथा श्रेणियोंके लोग उपस्थित थे। और व्याख्यानमें "स्वराज्य," "स्वराज्य माने क्या" ऐसे प्रश्न कई बार करके भी उन प्रश्नोंके उत्तर देनेका प्रयत्न बिलकुल नहीं किया। व्याख्यानमें खासकर एकही बातपर कटाक्ष है। वह यह है कि 'होमरूल' के विषयमें चर्चाकरने लगतेही सरकार उसके विरुद्ध होजाती है। मै व्याख्यानमें से कई भाग सुना देता हूं। (पढ़के सुना दिये) इस व्याख्यानमें सरकारी अधिकारियोंको अतिशय घमण्ड है, उनकी दृष्टि स्वार्थ पूर्ण है इत्यादि आक्षेप किये है। मै समझता हूं कि इसका परिणाम यह होगा कि श्रोताओंके हृदयोंमें सरकारके प्रति अप्रीति अवश्य उत्पन्न होगी। उदाहरणके लिये व्याख्यानमें से मै कुछ भाग बतलाता हूं। (यहां पर व्याख्यानमें से कुछ भाग पढ़के सुनाये) अपनी बुद्धिके अनुसार मैं यह कह सकता हूं कि श्रीयुत तिलकजीको जो बातें करनेका अधिकार है उससे अधिक अधिकार खुद मेरेलिये भी नहीं है। बै० जिनाने कहा मि० बिनिंग जो कहते हैं वह ठीक नहीं है। मि० बिनिंगको श्रीयुत तिलकजीसे अधिक अधिकार अवश्य है। बैरिस्टर बिनिंगके लिये अच्छा होगा कि वे इधर उधरकी झूठी सच्ची न लगाते हुए जो कागजात उन्होंने सबूत के लिये कोर्टके हवाले किये है उन्हीके विषयमें वे बोलें।

बे० बिनिंग—श्रीयुत तिलकजीका यह कहना है कि हिन्दुस्तान स्वराज्यके पात्र है और सरकार इस बातको अच्छी तरह जानती है, तो भी स्वराज्यके अधिकार सरकार हिन्दुस्तानको नहीं देती। इतना ही नही किन्तु विलायतकी अव्यक्त सरकारका यह झूठा मत बनादेती है कि भारतवासी स्वराज्यके पात्र नहीं है। मैं यदि भारतवासी होता और इस प्रकारका एक आध व्याख्यान सुनता तो मेरे अन्तःकरणमें सरकारके प्रति अप्रीति अवश्य उत्पन्न हो जाती। किसी देशमें वहां की सरकार पर इस प्रकारके घृणित दोषारोपण कोई पुरुष कर सकेगा? यह भी बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि लोगोंने तालियां पीटकर और 'शेम' 'शेम' कहकर अपनी प्रसन्नता प्रगट की। मेरी समझमें यह आता है कि लोगोंने वक्ताके वक्तृत्वका गौरव तालियां बजा कर किया और सरकारके घृणित व्यवहारके लिये 'शेम, शेम' कहा। खासकरके व्याख्यानका अन्तिम भाग सरकारके विरुद्ध द्वेष और तिरस्कार अवश्य उत्पन्न करेगा। ईस्टइण्डिया कम्पनीकी व्यापारी राज्य पद्धती, महारानी विक्टोरियाके राज्यमें भी जारी रही। यह श्रीयुत तिलकजीके कथनका आशय है। और ऐसा कहना मानो यह बतलाता है कि सरकारकी व्यापारी चालाकी है और इसलिये वह अत्यन्त घृणित है। स्टेट सेक्रेटरी सरकारका एक दामाद है इसलिये वह हमको नहीं चाहिए, यह कहना मानो जिनके निमन्त्रण से भारतवर्षका सारा राज्य प्रबन्ध होता है, उनके पदको केवल भाड़ेके टट्टुओंसे भरा हुआ बतलाता है। अहमदनगर का पहिला व्याख्यान बेलगांवके व्याख्यानसे भी खराब रहा। इसमें यह दर्शाने का श्रीयुत तिलकजीने प्रयत्न किया है कि

सरकार विदेशी (होनेका आक्षेप किया गया) है और वह अपना कर्त्तव्य नहीं पालन करती, केवल अंग्रेज लोगोंके ही कल्याणके ओर दृष्टि रखती है। मैं समझता हूं कि सरकारके विषयमें ऐसे व्याख्यानोंसे अवश्य अप्रीति उत्पन्न होगी।

इतना होनेपर बे० बिनिगकी विनतीसे तीसरे दिनका काम समाप्त हुआ।

चौथा दिन।

गुरुवार ता: १० अगस्त सन् १९१६ दोपहरको १२ बजे।

बे० बिनिंगने अपने कथनको आगे बढ़ाते हुऐ कहा कि श्रीयुत तिलकजीके कहनेमें एक विशेष बात यह आई कि "भारतसरकारने भारतवासियोंको स्वराज्यके योग्य नहीं बनाया" यह कहने पर अधिकारियोंको अत्यन्त क्रोध आता है। इस वाक्यके अन्तमें लोगोंने थपोड़ियां बजाई। अतः इस वाक्यसे सरकारके प्रति अप्रीति उत्पन्न होगई होगी। तिलकजीका एक और कथन ऐसा भी है कि हिन्दुस्तानी तथा अंग्रेजी जनताको समानतया नहीं रक्खा जाता। "जिधर शक्ति उधर बुद्धि" यहतो तिलकजीने एक नई ही कल्पना निकाली है। अहमदनगरके श्रोताओंसे तिलकजीने बड़े जोरके साथ कहा कि सरकारने उनका उद्योग धन्धा डुबाया है। परन्तु मै समझताहूं कि पिछले ५० सालोंमें सब उद्योग धन्धोंकी लगातार उन्नति होती आई है। श्रीयुत तिलकजीके मतमें सरकारकी नौकरी स्वीकार करना मानो मनुष्यत्वको बट्टा लगाना है। यदि हम लोगोंको स्वराज्य मिल जाय तो हम लोगोंको पशुकी नाई न रखकर मनुष्योंके समान हमारे साथ बर्ताव करेंगे। मैं यह समझताहूं कि

यह विधान सरकारके प्रति अप्रीति उत्पन्न करेगा। उनकी कल्पना यह है कि 'होमरूल' मिलने पर जो चाहे हो जायगा। मै समझताहूं सचमुच रामराज्यही शुरु होजायगा। तिलकजी कहते है, "मैं आपलोगोंको कोई नियम विरुद्ध काम करनेको नहीं कहता," । परन्तु इस कथनके साथही तिलकजीका पूर्व इतिहास भी ध्यानमें रखना चाहिये। भारतसरकारके राज्यप्रबन्धका सी० आई० डी० एक मुख्य अंग है, परन्तु तिलकजीने सी० आई० डी० के विरुद्ध मनमाने प्रलाप किये हैं। तिलकजी 'होमरूल' की प्राप्ति के लिये आन्दोलन कर रहे हैं और वह आन्दोलन बन्द करनेके हेतुसे तिलकजीको कोर्टमें नहीं खींचके लाया गया है बल्कि वह आन्दोलन करनेके लिये उन्होंने जिस मार्गका अवलम्बन किया है वह मार्ग आक्षेप योग्य है, इस लिये आज हम सब लोग कोर्टमें उपस्थित है। होमरूल पर व्याख्यान देते समय तिलकजीने अत्यन्त अक्षम्य उद्गार मुखसे निकाले है। इन व्याख्यानोंमें होमरूलके स्वरूपका एक भी प्रस्ताव तिलकजीने लोगोंके सन्मुख नहीं रक्खा है। होमरूलके विषयमें मै आज कोई मत नहीं देता। उस प्रश्नका इस अभियोगके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। निजराज्य प्रबन्ध स्वयं चलानेकी इच्छा करना स्वाभाविक ही है। मेरी निजकी राय यह है कि सरकारके विषयमें द्वेष तथा तिरस्कार उत्पन्न न होने देकर यह उद्देश्य लोगोंके सन्मुख रखना इष्ट होना चाहिए, परन्तु दुर्भाग्य वश तिलकजीने वैसा नहीं किया। यदि कोई उनका व्याख्यान ध्यान दे कर पढ़ेगा तो उसको मालूम हो जायगा कि स्वराज्यकी कल्पना लोगोंके सन्मुख रखनेकी अपेक्षा सरकारको ही उन्होंने कुवचन कहे हैं। (इस जगह बे० बिनिंगने अपने बहसके

प्रारम्भमें कहे हुये आक्षेपित वाक्य पढ़के सुनाइये)। संक्षिप्तमें कहना हो तो, यही है कि तिलकजीने अधिकारियों पर स्वार्थपूर्ण दृष्टि, अप्रमाणिकता और अयोग्यताका आरोप किया है। अन्तमें मुझको इतनाही कहना है कि बृटिश सरकारके प्रतिनिधि बनकर जो अधिकारी यहां आते हैं उनके विरुद्ध यदि ये आक्षेप हों तो दफा १२४ (अ) में कहे अनुसार सरकारके विरुद्ध द्वेष तथा तिरस्कार उत्पन्न करने का अपराध तिलकजीने किया है।

और एक दो छोटीसी बातें मुझको कहनी हैं। "खास अनुवादकको साक्षी देनेके लिये बुलाया नहीं" यह बैरिस्टर जिनाका उलहना है। परन्तु मैं समझता हूं कि जब एक जवाबदार आदमी साक्षी देनेके लिये खड़ा किया गया है तो इस शिकायतमें कोई सार नहीं है। बै० जिना जैसोंकी कुशल जिरह के सामने खास अनुवादक कदाचित् घबड़ा जाता इसलिये जिरहके प्रश्नोंके समय जो बिलकुल घबरा न जाय ऐसा दृढ़ और मजबूत पुरुष साक्षीके लिये यदि बुलाया गया तो क्या गलती हुई ? दूसरी बात यह है कि कोर्टने श्रीयुत तिलकजीको अपने व्याख्यानके विषयमें पूर्ण खुलासा करनेका मौका दिया था तोभी उन्होंने वैसा नहीं किया और अपना कुल बोझ अपने वकील के ऊपरही डाल दिया, यह बात ध्यान में रखनेलायक है।

बै० जिना—मैंने उनको ऐसा करनेको कहा था।

बै०बिनिंग—पर मेरी रायमें उनका निजका खुलासा उनके धन्धेवाले सलाहगारोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा होता।

तदनन्तर तिलकजीके बचावके लिये बै० जिनाकी बहस शुरू हुई। उन्होंने कहा—तिलकजीकी ओरसे इस कोर्टमें

बोलनेमें मेरी परिस्थिती कुछ नाजुक हो गई है, क्योंकि जिस सिविलसर्विस और ब्युरॉक्रसी पर तिलकजीने वाक्प्रहार करना, बै० विनिंग बतलाते है, उसी कोटिके एक व्यक्तिके सन्मुख मुझको बोलना है। परन्तु इस प्रकारके क्षुद्रविचार ध्यान में न लाते हुये कोर्ट निःपक्ष भावसे मेरा कथन साद्यन्त सुनलेगा ऐसी मुझे आशा है। तिलकजीकी ओरसे, बोलनेमें मुख्य आपत्ति यह है कि उनकी निजकी लेखबद्ध वक्तृतायें हमारे सामने नहीं हैं और सी. आई. डी के लघुलेखकोंने उनकी कहकर जो वक्तृतायें सामने रक्खी हैं उन्हींसे उनका अभिप्राय निश्चित करना है। इन दोनों लघुलेखकोंको पूनासे तिलकजीके व्याख्यान का रिपोर्ट लेकर, जहांतक हो सके, उनके शब्द दोष निकालनेके लिये भेजा था, अर्थात् उनका हृदय तिलकजीके विषयमे शुद्ध रहा होगा यह कह नहीं सकते। क्योंकि साक्षी देते समय ये दोनों "हमारे हाथसे गलती होना सम्भव है" यह भी नहीं मानते थे। परन्तु अन्तमें 'कुछ शब्द अथवा वाक्य गलत होगये होंगे' इतना तो उनको मानही लेना पड़ा। इस लघुलिपिसे उन व्याख्यानों का पूर्णलिपिमें रूपान्तर हुआ और 'पूर्णलिपि से अंग्रेजीमें अनुवाद करनेवाला व्यक्ति जिरहके प्रश्नोंमें घबरा जायगा' इसलिये दूसरा दृढ़ गवाह बुलाया गया, परन्तु उसको भी कुछ शब्दों तथा अनुवाद दोनोंको गलत स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार भिन्न रूपमें यह व्याख्यान उपस्थित किये गये। वे साधारणतया अपना अभिप्राय प्रगट करते है। इतनाही तिलकजीने मान लिया। अब पहिली बात यह है कि क्या यह व्याख्यान दफा १२४ (अ) के नीचे आते है?

इसकी जांच करते समय बै० विनिंगने जैसा इधरका

एक वाक्य और उधरका एक वाक्य उठा लिया है वैसा करना ठीक नहीं है। यही सन् १८६८ ईसवीमें लार्ड फिट्जिराल्डने कहा है और बंगालके 'बंगवासी' के मुकद्दमेमें और बम्बईके कोर्टमें तिलकजीके मुकद्दमेमें भी इसी तत्वका अवलम्बन किया गया था, उस तत्वका अवलम्बन करते हुए यह देखना चाहिये कि क्या इन व्याख्यानों में राजद्रोह है ? मेरा कथन यह है कि ये व्याख्यान दफा १२४ अ—के दूसरे खुलासेके नीचे आसकते हैं। क्योंकि इन व्याख्यानोंमें राजकार्य्य प्रणालीपर टीका है और यही कहा गया है कि वह प्रणाली असन्तोष अथवा द्वेष उत्पन्न न करते हुए नियमानुकूल मार्गका अवलम्बन करके बदलनी चाहिए। अस्तु, बिनिंग साहबने पहलेकी सजाकी बात जो प्रारम्भमें छेड़दी है ठीक नहीं है। दफा १०८ भावी राजद्रोहका प्रतिबन्ध करनेके लिये है। इसके अनुसार जमानत लेनी चाहिए या नहीं यह निश्चित करते समय तिलकजी आज क्या करते हैं या कल क्या करेंगे इसका ही विचार करना चाहिए। उनको १९ वर्षके पहिले या ८ वर्षके पहिले राजद्रोहके निमित्त सजा हुई थी इस बातके आधारपर वे आज जो कुछ कर रहे है वह भी राजद्रोहसे भरा है, ऐसा कोर्ट नहीं समझेगा, यह मुझको आशा है। तिलकजीके व्याख्यानोंकी संगति लगाते समय बे० बिनिंग साहबसे एक बड़ी भारी भूल हो गई है। वह यह है कि यह व्याख्यान किस परिस्थितिमें किस उद्देश्यसे दिये गये हैं इस बातको उन्होंने बिलकुल ध्यानमें नहीं रक्खा। बेलगांवमें 'स्वराज्य संघ' स्थापित हुआ। उस 'संघ' पर अधिकारी तथा अन्य लोगोंके आक्षेप होते रहे। उन आक्षेपोंका खण्डन

करनेके लिये और 'होमरूल' के तत्व समझाकर सभासद तथा सहायक बढ़ानेके लिये ये व्याख्यान दिये गये। इन व्याख्यानोंके समय पांच पांच हजार श्रोतागण एकत्र हुआ करते थे। उनमें बहुतसे श्रोता बिलकुल अज्ञान रहते थे। अर्थात् ऐसे लोगोंके समझमें भी आजाय, इतनी सुलभ रीतिसे, उदाहरण तथा दृष्टान्त देकर तिलकजीको व्याख्यान देना था। इन व्याख्यानोंमें तिलकजीने होमरूलके अधिकार बृटिश लोगोंसे तथा बृटिश साम्राज्यछत्रके नीचेही प्राप्त करने हैं यह स्पष्ट शब्दोंमें कहा है। क्या यह राजद्रोह है? तिलकजीने 'स्वराज्य' का लक्षण बिलकुल सीधे और सरलशब्दोंमें अनारी लोगोंके समझमें भी आजाय इतना स्पष्ट करके बतलाया है। उसमें उन्होंने यह कहा है कि स्वराज्यके माने यह नहीं है कि अंग्रेजोंका राज्य चला जाय और जर्मनोंका राज्य आवे, तो अपना राज्यप्रबन्ध अपनी सम्मतिसे चले। उन्होंने अपने व्याख्यानमें जो सरकार शब्दका प्रयोग किया है वह सिविल सर्विसके अर्थ में है। अनारी लोग बिचारे 'सिविलसर्विस' का अर्थ क्या समझते, इसलिये उन्होंने 'सिविलसर्विस' के अर्थमें 'सरकार' शब्दका प्रयोग किया है। परन्तु श्रोतालोग इस बातको अच्छी तरहसे जानते थे कि 'सरकार' शब्द 'नियम प्रस्थापित सरकार' के लिये नहीं आया है, प्रत्युत यहांके अधिकारियोंके अर्थमें आया है। 'सिविलसर्विस बिभाग' अथवा 'गुप्तपुलिस विभाग' कुछ सरकार नहीं है। और मिस्टर बिनिंग साहबके मतको मानकर यदि सरकार शब्दसे कानूनमें सी. आई. डी. जैसे विभागका भी बोध होने लगजाय तो ऐसी सरकारको दूरसे ही

साष्टांग प्रणाम कियाजाय। पिनलकोडकी दफा १२४ में जो 'सरकार' शब्द आया है वह किसी खास विभागके लिये नहीं आया है। आप यदि सेना विभाग, जंगल विभाग अथवा पुलीस विभागपर टीका करें तो क्या वह राजद्रोह हो सकेगा? बिलकुल नहीं। वैसेही तिलकजीने जो 'सिविल सर्विस' पर टीका की है, वह राजद्रोहयुक्त नहीं हो सकेगी। तिलकजीका मुख्य कटाक्ष वर्तमान राज्यप्रणाली पर है। किसीको घास काटना या बाघ मारना हो तो सरकारकी आज्ञा लेनी पड़ती है। यह दशा बदलनी चाहिये। परन्तु यह रूपान्तर एकदम न होकर धीरे धीरे करना है, यह तिलकजीका कथन है। और यह परिवर्तन पार्लियामेन्टके द्वारा करना है यह अपना उद्देश्य भी तिलकजीने स्पष्ट शब्दों में जाहिर किया है। इसके बाद यद्यपि भारतवर्ष कुछ पीछे पड़ा है तो भी उसको होमरूल देनेमें बृटिश लोगोंको कोई विरोध नहीं है, परन्तु युरोपियन तथा भारतीय अधिकारी लोग इस मांगका विरोध करते है यह कहकर तिलकजीने दृढ़ निश्चयके साथ वह 'मांग' करनेके लिये 'होमरूलके सभासद बनिये' यह कहकर "सी आई. डी. की डाटोंको मत डरिये" यह भी कहा है। इसमें राजद्रोह कहाँ है? व्याख्यानोंमें कुछ शब्द रुचि विरुद्ध होंगे, कदाचित् एक आध दूसरे व्यक्तिके मर्ममें चुभनेवाले भी होंगे—ऐसी कड़ी तथा मर्मभेदी भाषाका प्रयोग न किया जाय, यह भी किसी का मत हो सकता है। परन्तु उतनेसे वे शब्द राजद्रोह-युक्त नहीं बन सकते। उदाहरणके लिये तीन धूर्तोंकी कथा लीजिये। इस कथाका बिनिंग साहबने एक बड़ा होआ ही बनाया है। परन्तु इस कथाका मर्म उनके ध्यानमें

नहीं आया। यद्यपि कोषमें 'धूर्त' का अर्थ 'रोग' दिया है तो भी उस कथाका सम्बन्ध लगाते समय साधारण पुरुषको "तुम दूसरे लबार आदमीके कहनेसे मत फँस जाना"। ऐसी चितावनी देनेके लिये इस कथाका उपयोग लोग अकसर करते हैं। डाक्टर भाण्डारकरने भी स्वयं यह—तीन धूर्तोंकी कथा प्रधान व्यवस्थापक मण्डलमें कहकर यह कहा था कि माननीय गोखले तथा अन्य सभासदोंके आक्षेपसे 'यूनिवर्सिटी बिल' का मैं त्याग नहीं करूंगा। उस समय "काउन्सिलके सभासदोंको भाण्डारकरजीने 'रोग' कहा" यह आक्षेप किसीने नहीं किया। होमरूलके सम्बन्धमें यह कथा कहनेमें तिलकजीका इतना ही अभिप्राय था कि "स्वराज्यकी मांग मत करिये, स्वराज्य के लिये हम लोग अपात्र हैं, स्वराज्यसंघके सभासद मत बनिये, स्वराज्यकी मांग राजद्रोह पूर्ण है;" इस प्रकारके गलत सलत आक्षेप करके भोले भाले अज्ञान लोगोंको बहकाया जाता है, यह न हो सके और वे अपना होमरूलका ध्येय त्याज्य न समझें। मेरी समझमें यह नहीं आता कि यह कहनेमें राजद्रोह किस प्रकार होता है। तिलकजीके व्याख्यानपर बिनिंग साहेबका और एक यह आक्षेप है कि उन्होंने यह पूछा है कि स्वराज्य कितने दिनोंमें—एक पीढ़ीमें, या दो पीढ़ियोंमें या तीन पीढ़ियोंमें-देंगे यह अवकाश बतला दीजिये। पर इसमें क्या बिगड़ गया? फिलीपाइन द्वीपोंको इतने समयमें स्वराज्य दे देंगे। यह अमेरिकाने नहीं कहा? फिर यहीं केवल इस अवकाशकी मांगका भय क्यों रहे? बिनिंग साहेबका विशेष कथन यह भी है कि तिलकजीने यह कहा कि सन् १८५८ ईसवीका इन्डिया एक्ट तो प्रयोग

में लाया गया और उसी सालकी रानि-सरकारकी घोषणा वैसेही कोनेमें पड़ी हुई है। परन्तु क्या तिलकजीका यह कथन सप्रमाण नहीं है? १८५८ में कम्पनी सरकारके स्थान में रानि-सरकारका राज्य हुआ, परन्तु कम्पनीके बोर्ड आफ डाइरेक्टरस्के स्थानमें स्टेट सेक्रेटरी और उनकी काउन्सिल आई, और उनके हाथोंमें सब अधिकार गये। महारानीकी घोषणामें बचन दिया है कि बृटिशजनताके जो हक हैं वे सब तुम लोगोंको देंगे। तो फिर यह सर्व सत्ताधारी इन्डिया काउन्सिल क्यों है? यह राज्य पद्धति पुरानी कम्पनीकी राज्य पद्धतिके ढंग पर रही और वह बदलनी चाहिये, यही बात तिलकजीको स्पष्ट शब्दोंमें कहनी थी। अब यह कहा जाता है कि तिलकजीने बृटिश अधिकारियोंको विदेशी कहा है। पर इसमें विशेष बात क्या है? विदेशी शब्दका लक्षण तिलकजीने अपने व्याख्यानमें किया ही है। इस शब्दमें धर्म, धर्मभेद, जातिभेद अथवा जन्मभूमिभेदका भी सम्बन्ध नहीं आता। भारतवर्ष ही को अपना देश समझकर जो लोग यहां रहते हों और उसके कल्याणके लिये प्रयत्न कर रहे हों वे चाहे किसी देशमें पैदा हुए हों या किसी धर्मको मानने वाले हों, पर तो भी वे विदेशी नहीं हैं। परन्तु इस अर्थमें बृटिश अधिकारी विदेशी हैं यह बात लार्डक्रोमर तथा स्वयं आसकिथ साहेबने मान ली है। फिर—उस शब्दका प्रयोग यदि तिलकजीने किया तो उसमें क्या बिगड़ गया।

न्युरॉकसीके लोगोंको यहांका जलवायु अनुकूल नहीं होता, अपना घरबार छोड़कर इतनी दूर उनको आना पड़ता है, ऐसी स्वयं अधिकारियोंकी ही शिकायत रहती है और उसके लिये उनको बड़ी बड़ी तनख्वाहें दी जाती हैं।

यदि वस्तुस्थिति ऐसी है तो जहांका जलवायु आपके अनुकूल न हो ऐसे दूसरे देशमें आप लोग आते ही क्यों हैं? इस प्रश्नसे तिलकजीने एक ताना मार दिया। अर्थात् "यदि आप लोगोंके अनुकूल जलवायु न हो तो आप लोग इधर न आया करें" ऐसा कहनेमें तिलकजीने क्या पाप किया? अच्छा, इसपर अधिकारी लोग कहेंगे कि "यदि हमलोग नहीं आयेंगे तो तुमलोगोंका राज्यप्रबन्ध रुक जायगा"। इस आक्षेपका खण्डन करनेके लिये तिलकजीने मैसूरका उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि मैसूर रियासतके जिलोंमें यदि राज्यप्रबन्ध नहीं रुकता तो बृटिश रियासतमें भी वह क्यों रुकेगा? इसप्रकार प्रत्येक सम्भवनीय आक्षेपका तिलकजीने सप्रमाण उत्तर दिया है। होमरूलके विरुद्ध होनेवाले सब आक्षेपोंका खण्डन करके श्रोताओंको निश्चय करा देना यही उनका उद्देश्य था। इसलिये श्रोताओंके समझने योग्य उदाहरण देकर उन्होंने यह विषय स्पष्ट किया है अर्थात् उसमें अनारीपन या हास्यस्पदताकी कोई बात ही नहीं है। "जो सरकार अपना कर्तव्य पालन नहीं करती वह सरकार ही नहीं है"। इस वाक्यका लक्ष्य यह है कि अधिकारियोंने यहांपर रेलगाड़ी बनाई, तार यन्त्र बनाया, और अन्य बहुतसे सुधारके काम किये, परन्तु वे पर्याप्त नहीं हैं। अर्थात् अधिकारियोंको लोकहितके और भी कई काम करने चाहिए थे, यही उनका कहना है। इसी सम्बन्धमें "खर्चनेवालेका खर्च होता है और भण्डारीका पेट दुखता है" यह कहावत उन्होंने कही है। परन्तु इसका सरकारी अनुवाद मूल व्याख्यानका खून ही है। इसप्रकारके अनुवादसे श्रोताओंके चित्त पर क्या प्रभाव

पड़ेगा इसका अनुमान करना ठीक नहीं है। श्रोता मराठी जानते थे और उनको इस कहावत का ठीक ठीक अर्थ मालूम था और इसमें राजद्रोहका गन्ध तक नहीं है। तिलकजीने कहा है—देशका व्यापार डूब गया। इसपर भी बिनिंग साहबने आक्षेप किया है। परन्तु जिस किसी को भारतवर्षका इतिहास ज्ञात है उसको असली हाल मालूम ही है। तिलकजी यह तो नहीं कहते हैं कि ब्युरॉक्रसीके उद्योगसे व्यापार डूब गया। तोभी कपड़ेकी कलोंपरके टैक्सका इतिहास जिसको मालूम है उसको यह ज्ञात ही होगा कि इस विषयमें हमलोगोंके हाथ कैसे बांधे गए हैं "धक्का देकर बाहर जाना है" इस प्रकारका जो वाक्य है उसका कुछ न कुछ भाव अधूरा रहा सा मालूम पड़ता है। उस टूटे फूटे वाक्यका ठीक २ अर्थ ही नहीं लगता, परन्तु उससे यह दीख पड़ता है कि स्वराज्य प्राप्तिके लिये और दरवाजोंसे न जाते हुए पार्लियामेन्टके ही द्वारसे जाना ठीक है।" उस रास्तेसे न जाइये दूसरे ही रास्तेसे जाइये ऐसा यदि अधिकारी लोग कहें तो वह न सुनिये पार्लियामेन्टकेही द्वारसे जाइये। यही तिलकजीने कहा। हमको तो पता ही नहीं लगता कि इसमें राजद्रोह क्या है। "ठाकुर चाहिये परन्तु बीचके पुजारी तथा पण्डे नहीं चाहिए"। इसका इतना ही अर्थ है कि सिविलियनोंके ही हाथमें सब अधिकारोंका ठीका नहीं रहना चाहिए। उसमें भी यह बात नहीं है कि केवल गोरे सिविलियनोंपर ही तिलकजीका कटाक्ष है और काले सिविलियनों पर नहीं है। "क्योंकि कईबार काले सिविलियन ही गोरोंकी अपेक्षा अधिक नवाब बहादुर बने रहते हैं" ऐसा तिलकजीने कहा है। अर्थात् उनका आक्षेप

गोरे या काले सिव्हिलियन पर नहीं है परन्तु इस प्रणाली पर है। 'यह प्रणाली सुधरनी चाहिये' ऐसा अकेले तिलक जीने ही कहा हो सो भी नहीं. हौटन और फील्डींगहल्लने भी इस प्रणाली पर ऐसी ही टीका की है। कार्यकर अधिकारी अन्य देशोंकी तरह यहां भी लोगोंके उत्तरदाता रहें इतना ही तिलकजीका मुख्य कथन है। सरकारने लोगोंको जानबूझकर दास्य अथवा गुलामगिरीमें रक्खा है ऐसा उनपर किसीने भी आक्षेप नहीं किया है; परन्तु वर्त्तमान राज्यप्रणालीसे लोगोंकी ऐसी हीन दशा होजाती है, इसलिये यह प्रणाली बदल दीजिये यही तिलकजीने कहा है। एक पद्धति छोड़कर दूसरी पद्धति उसके स्थानपर बनाई जाय यह सिद्ध करते समय, पहलीके दोष और दूसरी के गुण स्पष्टतया दिखाना चाहिये या नहीं। इस प्रकार दोष दिखलाना दफा १२४ अ के दूसरे खुलासेके अनुसार राजद्रोह नहीं हो सकता। सर वाल्टर लारेन्स वाइसराय साहबके प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उन्होंने भी वर्त्तमान राज्य पद्धतिके स्थानमें नई सुधरी हुई राजपद्धति सूचित की थी, और उसका ही अनुवाद तिलकजीने किया है। सारांश, लोग आलस्य छोड़ दें, उद्योग करने लगें, और हमलोग १४वीं सदीमें न रहकर २०वीं सदीमें रहते है यह ध्यानमें रक्खें इतना ही उनका अभिप्राय है। और यह अभिप्राय राजद्रोहयुक्त है यह कौन कह सकेगा ? तिलकजीके बारेमें पहिलेसे ही अधिकारियोंके मन कलुषित थे। उनमें से जिस गुप्त पुलिस विभागने उनके व्याख्यानोंकी रिपोर्ट ली उसका उनपर कुछ विशेष प्रेम होगा, यह भी देख नहीं पड़ता। ऐसे आदमियोंकी ली हुई और स्थान स्थान पर

गलत रिपोर्टसे किसी पुरुषके विषयमें मत बना लेना न्याय सम्मत नहीं होगा। इसके अतिरिक्त गुप्त पुलीस विभागके आदमियोंके लिखे हुए व्याख्यानोंमें से यहांका एक शब्द वहां का एक वाक्य चुन चुनकर निकालकर "यह देखो राजद्रोह! यह देखो राजद्रोह!" चिल्लाना सचमुच अन्याययुक्त होगा। इसलिये अन्तमें कोर्टसे मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि वे सब व्याख्यानोंको साद्यन्त पढ़के विचार करें और उनके देनेका उद्देश्य ध्यानमें रखकर उनके विषयमें अपना मत निश्चय करें। इस प्रकार देखा जाय तो वादीकी ओरसे जो सबूत दिया गया है उनसे यह नहीं निकल सकता कि श्रीयुत तिलकजीसे जमानत लेनी चाहिए।

इस आशयका भाषण बै० जिनाने किया, तब डिस्ट्रिक्ट मेजिष्ट्रेट साहेबने विदित किया कि शनिवार ता: १२ को १२ बजे हम फैसला सुनायेंगे तब चौथे दिनका काम समाप्त हुआ।

मुकद्दमेका फैसला।

(ता: १२ अगस्त सन् १६१६)

ठीक १२ बजे तिलकजी मेजिष्ट्रेट साहेबके कोर्टमें उपस्थित हुए। उनकी ओरसे बैरिस्टर एलबकर, श्रीयुत बखले, श्रीयुत करन्दीकर हाइकोर्ट वकील, श्रीयुत केलकर, श्रीयुत काका साहेब पाटील आदि वकील तथा मित्रगण उपस्थित थे। सरकारकी ओरसे गाइडर साहेब और सरकारी वकील खां साहेब दावर उपस्थित थे।

ठीक साढ़े १२ बजे मेजिष्ट्रेट साहेबने आसन ग्रहण किया और वे कहने लगे। "मिस्टर तिलक, आपको दी हुई सूचना

के अनुसार आपको जमानत देनेकी आज्ञा हो रही है। मैं जजमेन्ट पढ़के नहीं सुनाऊँगा। इसकी नकल दी जायगी। आप इस बातमें अपना भाग्य समझें कि आपके ऊपर जमानतकाही मुकद्दमा हुआ और अन्य दफाओंके अनुसार फिरयाद नहीं हुई। आप इस प्रकारका आचरण न करें इस लिये यह आपको तथा आपके मित्रोंको एक चेतावनी मात्र है।

उसके अनन्तर तिलकजीने निम्न लिखित मुचलका लिख दिया—

सदाचारके निमित्त मुचलका।

[क्रिमिनल प्रोसिड्योर कोड १०८, १०९ व ११०]

चूंके, मै बाल गंगाधर तिलक साः पूनाको "एक वर्ष पर्यन्त हिज मेजेष्टी दी किंग इम्परर आफ इन्डिया तथा उनकी प्रजाके साथ अच्छी तरह बरताव करूंगा" यह मुचलका लिख देनेकी आज्ञा हुई है, इसलिये मै लिख देताहूं कि उक्त समय पर्यन्त हिज मेजेष्टी दी किंग इम्परर आफ इन्डिया तथा उनकी प्रजाके साथ अच्छा बरताव करूंगा. और इस प्रकार न करसकूं तो मैं हिज मेजेष्टी दी किंग इम्परर आफ इन्डियाको २००००) दण्ड दूंगा।

आज ताः १२ अगस्त सन् १६१६ }

हस्ताक्षर
बाल गंगाधर तिलक।

हमलोग लिखदेते हैं कि उपर्युक्त बाल गंगाधर तिलक हिज मेजेष्टी दी किंग इम्परर आफ इन्डिया तथा उनकी सब प्रजाके साथ उक्त समय पर्यन्त अच्छा वर्त्ताव करेंगे; इस विषयमें हमलोग उनके लिये जामिन हैं और वे उसके अनुसार नहीं चलेंगे तो हमलोग मिलकर या अलग अलग

हिज मेजेष्टी दी किंग इम्परर आफ इन्डियाको दस दस हजार रूपया दण्ड देंगे।

हस्ताक्षर

आज ता: १२ अगस्त सन् १६१६	१ त्र्यम्बक हरी आवटे, मालिक इन्दिरा प्रेस।
	२ गणपति विठोबा नायक मोरवार, कान्ट्रेक्टर, व्यापारी।

मेजिष्ट्रेट साहेबका फैसला।

पूनेके डिस्ट्रिक्ट मेजिष्ट्रेटके कोर्टमें जे० ए० गाइडर, डीपुटी इन्सपेक्टर जनरल आफ पुलीस पूनेकी दरख्वास्त आई। उसके अनुसार इस कोर्टने क्रि० प्रो० को० दफा १०८, और १११ के अनुसार बाल गंगाधर तिलकको इस विषयकी सूचना दी कि एकवर्ष पर्यन्त सदाचार रखनेके लिये २००००) का मुचलका और दस दस हजारकी दो जमानतें देनेकी आज्ञा क्यों न दी जाय इसके कारण वे दिखावें।

" बा० गं० तिलकको इसके पहिले राजद्रोहके निमित्त सजा हो चुकीथी और जो बातें प्रकाशित करनेसे इ० पि० को० के दफा १२४ अ—के अनुसार उनको सजा हो सकती है ऐसी राजद्रोहपूर्ण बातें वे व्याख्यान द्वारा फैलारहे हैं"। इसप्रकार मि० गाइडरकी शिकायत थी उन्होंने अपने सबूतके लिये तिलकजीके ता १ मई ३१ मई और १ जून १६१६ के व्याख्यानोंके लघुलिपी लेखकोंकी दी हुई रिपोर्ट और उनका अंग्रेजी अनुवाद दाखिल किया।

मि० तिलकके नामसे समन निकाला गयाथा और मुक-

हुआ ता: २८ जुलाईको प्रारम्भ होने वाला था। परन्तु प्रति-वादीकी प्रार्थनापर मुकद्दमेकी ता: २ अगस्त नियतकी गई और उसके बाद दोनों पक्षोंकी प्रार्थनापर ता: ७ अगस्त नियत हुई।

अभियोगकी पुष्टिके लिये दिया हुआ सबूत मैंने सुन लिया है। दोनों शार्टहैन्ड रिपोर्टरोंका इजहार और ओरियन्टल ट्रान्स्लेटरके आफिसके एक ट्रान्स्लेटरका इजहार ही वह सबूत है। रिपोर्टरोंने कहा कि व्याख्यानोंकी रिपोर्ट ठीक है और ट्रान्स्लेटरने कहा कि अनुवाद ठीक है। तिलकजीको पहिले राजद्रोहके लिये सजा होनेका सबूत कि० प्रो० दफा ५११ के अनुसार वादीकी ओरसे दिया गया। उसका प्रतिवादीकी ओर से विरोध किया गया परन्तु मैंने उस विरोधको नहीं माना। तिलकजीकी पहिली सजाके १०००) वापस किये गये हैं, यह जो मिस्टर जीनाने कहाथा उसको मि० विनिंगने मान लिया।

तिलकजीने कोर्टके सवालोंका जवाब देते समय कहा कि यद्यपि कुछ मामूली गलतियां व्याख्यानोंके रिपोर्टोंमें रह गई हैं तोभी सामान्यतया वह रिपोर्ट ठीक है। होमरूलका खुलासा करके उसके टीकाकारों को उत्तर देना और उसके प्राप्त करनेका उत्तम मार्ग बतलाना ही मेरा उद्देश्य था, यह तिलकजीने कहा। वैसेही होमरूलके सभा-सद होनेका भी उन्होंने लोगोंको उपदेश दिया। किसीके प्रश्न करने पर कि होमरूल माने क्या है, संक्षिप्त में आप हमको समझादेंगे? उन्होंने उत्तर दिया कि उसकी व्याख्या मेरे व्याख्यानमें है। अभियुक्तने अपनी ओरसे साक्षी नहीं दी। उनके वकीलने भी व्याख्यानोंके अनुवादकी शुद्धतापर विशेष आक्षेप नहीं किया है। उन्होंने केवल यही कहा है

कि कुछ शब्दोंका अनुवाद ठीक नहीं हुआ, उन शब्दों पर मैं यहां पर विचार करता हूं। पहिले व्याख्यानमें (निशान G) ३ पृष्ठ पर चतुर्थ पंक्तिमें 'ही' शब्द व्यर्थ है, वैसे ही उसी पृष्ठके मध्यमें आये हुये "Entity" शब्दके स्थानमें "Form" शब्द चाहिये, यह बतलाया गया है। पांचवें पृष्ठके 'Conceit' शब्दके स्थानमें "Over-Confidence" शब्द रहे; छठवें पृष्ठके धूर्त शब्दका प्रति शब्द जो 'Rogue' शब्द है यह गलत है ७वें पृष्ठ पर "Accumulated" शब्दके स्थान पर 'Collected' होना चाहिये; ८ वें पृष्ठ पर 'Obstruction' शब्दके स्थान पर 'Hinderence' रक्खा जाय और ६ वें पृष्ठ पर "Sovereign's Policy" शब्दके स्थान पर "State Policy" शब्दका प्रयोग करना चाहिये था, इत्यादि भी अभियुक्तकी ओर का कहना है। पहिले व्याख्यानमें सूचित शुद्धियां केवल इतनी ही है, उनमेंसे अन्तिम इस कोर्टकी दृष्टिमें कुछ महत्वकी हैं। इस स्थान पर मराठीमें 'राजघोरण' (Sovereign's Policy) शब्द है; वहां यदि 'राज्यघोरण' शब्द होता तो उसका State Policy अनुवाद ठीक होता! एक लघुलेखक 'राज' और 'राज्य' में भेद नहीं करता, दूसरा यह भेद रखता है। जो हो, परन्तु कोर्टकी सम्मतिमें व्याख्यानदाताके शब्दको सुनते समय विपर्यास होने का सम्भव है। कुल व्याख्यानका रुख देखा जाय तो ६ वें पृष्ठके अन्तमें 'राजघोरण' शब्दके स्थानपर 'राज्यघोरण' यही शब्द ठीक प्रतीत होता है; इसलिये संशयका फायदा अभियुक्तको देकर मैं उस स्थानपर 'राज्यघोरण' ही शब्द मानके चलता हूं। दूसरे व्याख्यानमें (निशान H देखो) दूसरे पृष्ठमें दो अशुद्धियां सूचित की गई हैं। "Ruling

Power" के स्थानमें "Administration of the State," वाली पहिली शुद्धि वादीकी ओरसे स्वीकृत है। दूसरी शुद्धि एक पेचीले स्थान पर 'Aliens' (परदेशी लोग) शब्दके अधिक अच्छे अनुवादके विषयमें है। यह शुद्ध किया हुआ अनुवाद साक्षी नम्बर २ का बयानमें देख सकते हैं। इस अनुवादसे युक्तिवाद पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। तीसरे व्याख्यानमें [परिशिष्ट I देखो] पहिले पृष्ठमें नीचे आये हुए Slavery और Bondage शब्दों के प्रयोगका अभियुक्तकी ओरसे विरोध किया गया। मूल मराठी शब्द 'गुलामगिरि' तथा 'दास्य' है। साक्षी नं० २ कुशल अनुवादक हैं और वे कहते हैं कि इन शब्दोंका अनुवाद ठीक हुआ है। अभियुक्तकी ओरसे यह कहा जाता है कि 'गुलामगिरि' का अनुवाद Servitude हो और दास्य शब्दके लिये भी Servitude ही शब्द हो। पृष्ठ ३ में 'पशु' शब्द का अनुवाद beast किया गया है, उसका भी विरोध किया गया है और Beast के स्थानमें Animal या cattle शब्द का प्रयोग हो ऐसा अभियुक्तकी ओरसे कहा गया है। सब व्याख्यानोंमें जहां जहां 'गुलामगिरि' शब्द आया है वहां वहां उसका अनुवाद Slavery शब्द किया गया है. और अभियुक्तकी ओरसे उन उन स्थानों पर Servitude शब्दका प्रयोग सूचित किया गया है। अभियुक्तकी ओरसे जिन २ स्थानोंमें अनुवादपर आक्षेप किया गया है उन सबोंकी सम्पूर्ण सूची ऊपर दी गई है। ऐसे कुछ भाग हैं जहां कुछ शब्द छूट गये हैं और उससे अर्थमें कुछ संशय रहता है तोभी सामान्यतया G. H. और I. इन तीनों परिशिष्टोंमें दाखिल किये हुए अंग्रेज़ी अनुवाद मूल रिपोर्टोंके शुद्ध

अनुवाद है। यह निश्चित करनेमें कोर्टको कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती और चूंकि व्याख्यानोंके १ लघुलेखक रिपोर्टर अपने काममें कुशल हैं और वे कहते हैं कि "मि० तिलक जो कुछ बोल गये वह सब मैंने ज्योंका त्यों लिख लिया। इसलिये उनकी सत्यताके विषयमें शंका करनेका कोर्टको कोई कारण नहीं प्रतीत होता। वादी पक्षके वकील मि० बिनिंग कुल व्याख्यानोंके आधार पर चलते हैं। वे विशेषतया जिन भागोंका अवलम्बन करते है उन भागोंको परिशिष्ट G. H. I. पर कोर्टने लाल पेन्सिलसे चिह्नकर दिया है। वे स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि होमरूलकी चर्चा करना ठीक है या नहीं इस विषयका कोई वाद नहीं। सरकारकी ओरसे उनको कहा गया है कि इस विषयपर कोई मत बिलकुल प्रगट मत करना। ई० पी० को० दफा १२४ अ-के नीचे आने वाले राजद्रोहयुक्त भागके ऊपर उनका आक्षेप है। वह भाग जहां पर तिलक अपने व्याख्यानमें अप्रमाणिक और अशुद्ध हेतुओंका आरोप करते है, वहां है। ता० १ मई के दिन तिलकजीने जो व्याख्यान दिया है उसका संक्षिप्तमें विवरण किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि उन्होंने हिन्दुस्तानकी सरकारके दो भाग करनेका प्रयत्न किया है। एक अदृश्य या अव्यक्त इंग्लिश सरकार [Invisible English Govt.] और दूसरा वह "दृश्य या व्यक्त सरकार" जिनके द्वारा यह अदृश्य सरकार कार्य्य करती है [Visible Government by whose hands Invisible Government is getting work done.] इनमें से पहिला विधान तिलकजीके मतके अनुसार ठीक है। परन्तु दूसरे वाक्यमें जो Pass into other hands अर्थात् दूसरोंके हाथोंमें जाय, ऐसे जो शब्द हैं

उनका स्पष्टीकरण वे हमारे अर्थात् लोगोंके हाथमें—Into our own hands—करनेको कहते हैं। एक आध दूसरे अधिकारीको चाहे वह सिपाही हो या गवर्नर हो निकाल देनेके लिये सरकारसे कहना कुछ राजद्रोह नहीं, ऐसा उन्होंने अपने श्रोता लोगोंको चेताया है। आजकलकी सरकार लोगोंपर अच्छी तरह शासन नहीं करती, यह भी उन्होंने अपना स्पष्ट मत दर्शाया है। उन्होंने शिकायतोंकी एक सूची दी है उसमें 'कुलकरणी' वतन रद्द करना, 'जंगल विभागका अत्याचार' 'मद्यपानका प्रसार' 'योग्य शिक्षाका अभाव' 'बेलगांवसे जूरीका अधिकार छीन लेना और कर्नाटकमें कॉलेजका न होना' ये उनकी शिकायतें हैं। वे कहते हैं 'इन बातोंको हमलोग क्यों देखते है? इसका केवल एकही उत्तर है। उनके स्थान पर यदि आपलोग अधिकारी रहते अथवा उन अधिकारियों पर लोकमतका दबाव रहता तो ऐसी बातें कभी नहीं होती"। पश्चात् वे अपने श्रोताओं को कहते हैं कि "हमलोग असहाय हैं। कलेक्टर को दरख्वास्त दिये बिना हमलोग कोई काम नहीं कर सकते इसलिये इससे अधिक अच्छा कोई न कोई प्रबन्ध हमलोगों के लिये होना चाहिये। आजकलके अधिकारी लोगोंके चुने हुए नहीं रहते इसलिये वे स्वयं ऐसा समझते है कि हम उत्कृष्ट ज्ञान रखते है। यह भी उनका घमण्ड अथवा अतिमात्र आत्म विश्वास है। ये अधिकारी (Bureaucrats) हमलोगोंको कहते हैं। "आपलोग हमारे इच्छानुसार चलिये"। हमलोग उनसे कहते हैं "आप हमारे इच्छानुसार चलिये"। इसके आगे उन्होंने इस देशका दृश्य सरकारको प्रजा तथा "अदृश्य राजा अथवा सरकार" के

बीचका देवता कहा है। "ईश्वर क्रोध नहीं करता परन्तु ये देवतागण करते हैं"। उन्होंने नाबालिगके हाथमें अधिकार न जाने देनेका प्रयत्न करनेवाले पञ्च या ट्रस्टीका उदाहरण दिया है। पञ्च नाबालिगको कुछ पागल तथा बदचलन ठहराते हैं और कोर्टमें लेजाकर उसको पूरा पागल ठहराते हैं। यहांपर भी अब ऐसी ही कुछ दशा होने लगी है। इसके पश्चात् आगे तीन धूर्तोंकी कथा आई है।

मि० जिनाने इस कथाको, कौंसिलमें डा० भाण्डारकर की एक वक्तृताकी आधार पर, सभ्यताका स्वरूपदेनेका प्रयत्न किया है। इस वक्तृतामें उन्होंने अपने उन प्रतिस्पर्धियोंसे, माननीय गोखले जैसे सन्मान्य पुरुषोंका जिनमें समावेश होगया था, इस कथाके तीन धूर्तोंकी उपमा दी है। परन्तु एकही बात भिन्न भिन्न प्रकारसे कही जा सकती है और उससे भिन्न भिन्न अभिप्राय निकाले जा सकते हैं। मि० तिलकको होमरूलका आन्दोलन न करनेवाले भारतवासियों और इस कथाके धूर्तोंका साम्य श्रोता लोगोंको दिखलाना था। उन्होंने श्रोतालोंगोको यह भी चेताया है कि अपने अधिकारोंकी प्राप्तिसे अर्थात् स्वराज्यसे अपनेको वञ्चित रखनेका प्रयत्न करनेवाले लोगोंके मोहजालमें मत फँसो उसके पश्चात् उन्होंने योग्यताका विचार किया है। मि० तिलकने इङ्गलेन्डसे यहां आकर ६०, ६० वर्षके तहसीलदारों पर हुकूमत चलानेवाले तरुणोंके विरुद्ध जो बातें कही है वे आक्षेप योग्य है (और मि० जिनाने भी अभियुक्तकी ओरसे यह मान लिया है)। यह विषय मि० तिलकने यह प्रश्न करके समाप्त किया है,—"आपलोग हमलोगोंको कब तक सिखाते रहेंगे?—भला इसका अन्त कब होगा? या हमलोग

इसी प्रकार अन्ततक आपके नीचे गुलामोंकी तरह काम ही करते रहेंगे ?" इसके बाद उन्होंने कहा, " जिनलोगोंकी शिक्षा इन अधिकारियोंके हाथोंमें है और इनको सुधारना इन अधिकारियोंका कर्त्तव्य है वह कर्त्तव्य करना अलग रहा और वे प्रयत्न दूसरी दिशामें करते हैं। सारांश यह है कि हमलोग कितना ही प्रयत्न करें तो भी " न लोगोंका इस कामके लिये तैयार होना अशक्य है " इस प्रकारकी बातें अध्यक्ष सरकारको बतलाना एक प्रकारसे अपना स्वार्थ साधनेका रोजगार जारी रखना है, ऐसा मैं समझता हूँ "। उसके पश्चात् मैसूर रियासतके सुव्यवस्थित राज्य प्रबन्धका उल्लेखकरके मि० तिलक कहते हैं:—" राज्य प्रबन्ध चलानेके लिये भारतवासी अयोग्य हैं ऐसा कहनेमें उनका उद्देश्य हमलोगोंको सदैव दास्यमें रखना, हमलोगोंसे गुलामकी नाई काम कराना और हमलोगोंकी बुद्धि और योग्यता बढ़ानेका मार्ग रोकनाही है।" श्रोताओंने इन उद्गारोंपर तालियां बजाकर "शेम, शेम" कहा। अगले पैराग्राफमें ईष्ट इन्डिया कम्पनीकी आर्थिक दशा अर्थात् व्यापारी राज्य पद्धतिका निर्देश किया है। वे कहते हैं, " उस पद्धतिमें लोगोंके कल्याणके विचारको स्थान नहीं मिलता था। सन् १८५८ सालमें महारानीने अपने हाथमें राज्यसूत्र लिया, परन्तु अधिकारीगण पुरानेही बने रहे। कम्पनीके डाइरेक्टर गए और उनके स्थानमें स्टेट सेक्रेटरी आए। यह स्टेट सेक्रेटरी साहेब (न कि गवर्नर जनरल साहेब) यह निश्चित करेंगे कि हिन्दुस्तानमें कितना खर्च किया जाय और उसपर कितना कर लगाया जाय यह निरी व्यापारी राज्य पद्धति है। रानी-सरकारके हाथमें यद्यपि राज्यसूत्र गए और यद्यपि उन्होंने वह बड़ा भारी घोषणा

पत्र निकाला तो भी महारानीजीकी राज्य पद्धति (शुद्धके अनुसार सरकारकी राज्य पद्धति) उस घोषणा-पत्रके अनुसार नहीं रची गई है। पदाधिकारियोंकी नीति कम्पनी की व्यापारी नीतिके अनुसार है। राज्य व्यवस्थाभी कम्पनीकी नाई ही है। और इस बीचमें घोषणा-पत्र को किसीने पूछा भी नहीं"। (हंसी और तालियां)

और आगे वे कहते है "अधिकारीगण (Bureaucracy) स्टेट सेक्रेटरी और गवर्नर जेनरल ये हम लोगोंको, "आप लोगोंको उच्चअधिकार तथा पद देंगे" इस प्रकार के मधुर वचनोंसे फुसलाते है"।

मि० तिलकने स्टेट सेक्रेटरीकी दामादके साथ उपमा देकर यह दर्शाया है कि उनकी नियुक्ति गफलतसे की जाती है पश्चात् यह भी सूचित किया है कि परकीयोंको मार्गसे ढकेल देना चाहिये, जलवायु अनुकूल नहीं था तो आपलोगोंको किसने आनेको कहा था ऐसा भी प्रश्न कलेक्टर आदि अधिकारियोंसे उन्होंने किया है। बै० जिनाने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि यह सब टीका विशिष्ट अधिकारियोंके विषयमें है, सरकारके विषयमें नहीं है परन्तु वह मुझको स्वीकृत नहीं है। सन् १८५८ में जिस नियमसे प्रचलित राज्य व्यवस्था निर्माण की गई उस नियममें नियम बद्ध आन्दोलन से परिवर्तन करनेका मि० तिलकका उद्देश्य है, यह भी मि० जीनाका युक्तिवाद है; परन्तु उसमें कुछ अर्थ नहीं है क्योंकि यह परिवर्तन करनेके लिये प्रयोगमें लाई हुई भाषा राजद्रोही होनेसे काम नहीं चलता। मि० तिलकपर सन् १८९७ ई० में जो राजद्रोहका अभियोग चला था उसमें राजद्रोहकी

विस्तृत चर्चा हो चुकी है और इसीलिये मैं उसका अधिक विवरण नहीं करना चाहता।

यह तिलकजीके पहिले व्याख्यानके विषयमें हुआ। उनके नगरके दोनों व्याख्यानोंमें भी ऐसीही राजद्रोहयुक्त बातें हैं। उसमें भी सरकारको विदेशी और भण्डारी कहा है। सरकार को शिक्षाके निमित्त धन नहीं मिलता परन्तु अधिकारियोंको भारी भारी वेतन देनेको धन मिलता है। ५० सालोंमे जो सरकार प्रजाको स्वराज्यके लिये योग्य नहीं बना सकती वह सरकार राज्यकरनेके लायक नही है ऐसा कहा है। इसके अतिरिक्त लोगोंके लिये गुलामशब्दका प्रयोग किया है। तीसरे व्याख्यानमें इस गुलामगीरीकी कल्पना बहुत बढ़ाई गई है। उन्होंने श्रोतालोगोंसे यह पूछा है कि जब तक देशमें गुलामगीरी और दास्य रहेगा तबतक राष्ट्रके गुण कैसे उन्नत होंगे? इसी प्रकार लोगोंको एक स्थानपर 'पशु' कहा है। ऐसा किये बिना अपने व्याख्यान रोचक नहीं होंगे, यही समझकर उन्होंने यह सब कहा है। तिलकजीने अपने व्याख्यानोंमें अंग्रेजी शब्द व्युरॉक्रसीको ज्योंका त्यों ही रक्खा है यह सच है; परन्तु उनका अभिप्राय वाइसराय से लेकर पुलिसके सिपाहीतककी अखिल सरकारसे है, इसमें मुझको कोई संशय नही है। तिलकजीको दो बार राजद्रोहके निमित्त सजा हुई है। दूसरी सजा भुगतकर घर वापस आये उनको दो ही साल हुए।

अब व्याख्यान देनेका अपना इरादा उन्होंने बेलगांवमें प्रगट किया है; इसलिये उनसे जमानत लेनी चाहिये यह मेरा मत है।

हाईकोर्टका वृत्तान्त ।

ता: २३ अगस्त सन् १९१६ को बम्बई हाईकोर्टमें पूनाके डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहेबके आज्ञाके विरुद्ध श्रीयुत तिलकजीने निम्नलिखित अपील दायर की ।

बाल गंगाधर तिलक साः पूना ।

बनाम

सम्राट् राजाधिराज ।

पूना निवासी बाल गंगाधर तिलककी विनय प्रार्थना सादरतया सूचित करती है कि:—

पूनेके डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट साहेब मि० हॅचने प्रार्थीको क्रि० प्रो० को० की दफा १०८ के अनुसार, सदाचारके निमित्त जमानत देनेकी आज्ञा दी, और उनकी आज्ञाके अनुसार ता· १२ अगस्त १९१६ को १ वर्ष पर्यन्त सदाचार रक्षाके निमित्त २००००) रुपयेका मुचलका, और १००००) १००००) रुपयोंकी दो जमानतें प्रार्थीसे ली गई ।

इस आज्ञासे दुःखित होकर प्रार्थी माननीय कोर्टकी सेवा में अन्याय दूरकरनेकी प्रार्थना करता है कि कोर्ट अभियोग के कागज पत्रादि मंगाकर छोटे कोर्टकी आज्ञा निम्नलिखित कुछ कारणोंके लिये रद्द करदे ।

१—छोटे कोर्टने इ० पी० को० की दफा १२४ अ—का गलत अर्थ किया है और उसके दूसरे खुलासेकी ओर ध्यान नहीं दिया है ।

२—नोटिसके अनुसार जब कारण दिखलानेके लिये प्रार्थी कोर्टमें उपस्थित हुआ तब प्रार्थीके सन्मुख मजिस्ट्रेट साहेबने फरयादीसे जिरह नहीं की, इससे अभियोग चलानेमें

क्रि० प्रो० को० के दफा ११७ का पूर्ण अवलम्बन न करनेमें गलती की है।

३—छोटे कोर्टने प्रार्थीको ६ वर्षोंके पूर्वमें जो सजा हुई थी उसको सबूत समझकर गलत समयमें दाखिल करलेनेमें तथा प्रार्थीके व्याख्यानोंका अर्थ उसके अनुसार लगानेमें नियमकी दृष्टिसे गलती की है।

४—जिन शब्दोंके लिये तथा शब्द समुच्चयोंके लिये प्रार्थीसे जमानत ली गई है वे शब्द तथा शब्द समुच्चय पर्याप्त नियम बद्ध प्रमाणके बिना दाखिलकरलेनेमें विद्वान मेजिस्ट्रेट साहबने नियमकी दृष्टिसे भूल की है।

५—लघुलिपि लेखकोंके बतलाए हुए cheers आदि शब्दों के बलपर नियम बद्ध प्रमाणके बिना विद्वान मेजिस्ट्रेट साहब ने अपना फैसला दूषितकर दिया है।

६—कोर्टमें फिरयादीकी ओरसे दाखिल किये हुए तीनों व्याख्यान शब्दशः नहीं लिखे गये थे, इसलिये क्रि० प्रो० को० दफा १०८ के अनुसार दी हुई आज्ञाको उनका नियम बद्ध आधार नहीं रहा।

७—क्रि० प्रो० को० के दफा १०८ के अनुसार प्रार्थीपर नियमित रीतिसे अभियोग चलाया नहीं जासकता।

८—प्रार्थीने यद्यपि अपने व्याख्यानोंमें व्याख्यानोंका उद्देश्य विशेषतया विस्तारके साथ बतलाया था तो भी छोटे कोर्टने व्याख्यानोंके अर्थ तथा उनकी व्याप्तिका विपर्यास किया है।

९—व्याख्यानोंमें प्रार्थीका मुख्य उद्देश्य गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया एक्टमें सुधार कराकर आजकलकी राज्यपद्धति बदलवानेका था। इसलिये ये व्याख्यान दफा १२४ अ—के दूसरे स्पष्टी करणके नीचे आते है।

१०—इ० पी० को० के दफा १२४ अ—के अनुसार यह व्याख्यान (इनमेंसे एकआध अथवा उनका कोई भी हिस्सा) आक्षेप योग्य नहीं है।

११—भारतवर्षको होमरूल चाहिये यह सिद्ध करनेके लिये दफा १२४ अ-के अनुसार आक्षेप योग्य वाक्योंके उच्चार करनेका प्रार्थीका कभी भी उद्देश नहीं रहा और न उसने ऐसा किया ही है। परन्तु अपना मत प्रगट करते समय होमरूल मिल जानेपर आजकलकी पद्धतिके दोष नष्ट होनेकी सम्भावना है इतनी बातका उसने निर्देश किया है। होमरूल के विषयमें फिरयादी पक्षने कोई भी आक्षेप नहीं किया है और होमरूल या स्वराज्य विषयकवाद नियमानुकूल माना गया है। (इन्डियन ला रिपोर्टर ३४ कलकत्ता पृष्ठ ६६१) इसलिये सर्वसाधारणकी सभासे उसके सिद्ध्यर्थ लोगोंको उपदेश करना नियम विरुद्ध नहीं है।

१२—दफा १२४ अ—मे " ब्रिटिश इन्डियामें नियम द्वारा प्रस्थापित सरकार" शब्दोंका गलत ही अर्थ छोटे कोर्टने लिया है और क्रि० प्रो० को० की दफा १७ में जिसकी परिभाषा की है कि गवर्नमेन्ट शब्दके समान अर्थ रखता है यह माननेमें उस कोर्टने गलती की है।

१३—फैसलेमें उद्धृत किये हुए व्याख्यान अथवा उनके भाव अप्रीति उत्पादक है ऐसा जो कोर्टने निश्चित किया है, वह उस अर्थसे असंगत है और उन व्याख्यानोंका समग्रतया विचार करने पर उनका जो योग्य और स्वाभाविक अर्थ निकल सकता है। और वैसा निश्चित करनेके लिये इस विषयका प्रत्यक्ष कोर्टका कोई प्रमाण नहीं उपस्थित किया गया।

१४—यदि केवल लघुलेखक रिपोर्टरोंकी इजहारका ही विचार किया जाय तो वह इजहार कोर्ट के किये हुए निर्णय-का पोषक होनेके लिये कानूनकी दृष्टिसे पर्य्याप्त नहीं है। और लघुलेखकों के नोट, अथवा उन नोटों परसे (सीधी) देवनागरी लीपीमें किया हुआ उनका प्रतिलेख, ये चीजें सबूतमें दाखिल नहीं की गई है. इसलिये वे कोर्टके आज्ञा को बल पहुंचानेके लिये नियम बद्ध प्रमाण बिलकुल नहीं हो सकते।

१५—बहुतसे स्थानों पर नोट बिलकुल गलत तथा अधूरे हैं। नियमकी दृष्टिसे उनको प्रमाणमें नहीं ले सकते। अनुवाद ठीक है कि नहीं यह जांचने के लिये मूल अनुवादक की साक्षी नहीं ली गई। मि० ठाकुरका इजहार नियमानुकूल नहीं है।

१६—छोटे कोर्टने जिन भागोंका हवाला देकर अपना हुकुम दिया है, वे भाग जिन प्रकरणोंमें आते है उनका पूर्वा-पर सम्बन्ध न देखकर ही लिये गये है।

१७—अनुवादमें मराठी भागोंका सच्चा भाव नहीं आता और उसको भिन्न ही स्वरूप प्राप्त हुआ करता है यहबात छोटे कोर्टने ध्यानमें नहीं रक्खी।

१८—मराठी कहावतों और कथाओंका सच्चा भाव अनु-वादमें नहीं लाया गया ; इसलिये दाखिल किये हुए अनुवाद मराठीके भाग तथा दृष्टान्त को ठीक तरहसे समझनेके लिये योग्य साधन नहीं है।

१९—जमानतकी रकम बहुत भारी है। सेवामें विदित हो यह प्रार्थना है।

बालगंगाधर तिलकके पक्षके
वकील
सदाशिव रामचन्द्र बखले ।

श्रीयुत सदाशिव रामचन्द्र बखले बी. ए. एलएल. बी. हाईकोर्ट वकील श्रीयुत तिलकजीकी ओरसे माननीय न्याय मूर्त्ति बीमन तथा माननीय न्यायमूर्ति सरजान हीटनके कोर्ट में ता० ३० अगस्त १८९८ को यह विनती करनेके निमित्त उपस्थित हुए कि अपीलकी प्रार्थना स्वीकृत की जाय ।

श्रीयुत बखलेने अपनी भाषामें कहा कि श्रीयुत तिलकजी के व्याख्यानोंका उद्देश्य नियम द्वारा प्रस्थापित सरकारके विरुद्ध नहीं था परन्तु सरकारके राज्य यन्त्र पर टीका करनेका था इसलिये कोई विशेष वाक्य ढूंढ़कर न निकालते हुए सब व्याख्यानोंको एक साथ पढ़के इस प्रश्नका निर्णय करना चाहिये कि क्या वे व्याख्यान राजद्रोहयुक्त हैं? अनुवाद तो ठीक है ही नहीं यह बात फिरयादीने भी स्वीकार की है ।

न्यायमूर्त्ति बीमन.—यह बात प्रमाण पर निर्भर है । प्रमाण द्वारा मेजिस्ट्रेट साहबको ज्ञात हुआ होगा कि व्याख्यान राजद्रोहयुक्त है और वे वैसे हैं या नहीं यह भी प्रमाण द्वारा ही निश्चित होगा ।

श्रीयुत बखले आगे कहने लगे कि मेजिस्ट्रेट साहबने अभियोग चलाते समय अभियोग चलानेके नियमोंका उल्लंघन किया है । जैसे पहिले जिस फिरयादीकी शिकायत पर समन निकाला उस फिरयादी (मि० गाइडर) का क्री० प्रो० को० दफा १९७ के अनुसार इजहार लेना चाहिये था । जिससे कि मि० गाइडरको किस प्रकारकी खबरें लगी थीं यह स्पष्ट हो जाता ।

न्यायमूर्त्ति बीमनः—क्या अभियोगकी आंच नहीं हुई थी ? उसमें तो बहुतसे इजहार हुए है ।

श्रीयुत बखले :—परन्तु मि० गाइडर पहले खबरदेने वाले फरियादी थे और उनका इजहार नहीं लिया गया ।

न्यायमूर्त्ति बीमन :—मि० गाइडरका इजहार हो जाता तो उससे आपलोगोंको क्या लाभ होता ? अधिकसे अधिक इतनाही वे कहते कि व्याख्यान दिए गये थे ।

श्रीयुत बखले —दूसरी गलती यह हुई कि मेजिष्ट्रेट साहेबने प्रत्यक्ष व्याख्यान क्या हुए थे यह लघुलीपीकी प्रतियों परसे निश्चित किया है । सचमुच देखा जाय तो ये प्रतियां सबूतमें नहीं दाखिल की जा सकती ।

अधिकसे अधिक स्मरण शक्तिको प्रोत्साह न देनेके लिये उनका उपयोग होजाता है ।

न्यायमूर्त्ति बीमन—इसमें क्या गलती हुई ? लिखित प्रतियोंको कोई व्याख्यानका प्रमाण नहीं समझते । स्मरण-शक्तिको प्रोत्साह न देनेके लिये ही उनका उपयोग किया गया है ।

श्रीयुत बखले—तीसरी गलती यह है कि जिस पुरुषने बम्बईमें बैठकर इन व्याख्यानोंका अनुवाद किया उसकी गवाही नहीं ली गई और यह अनुवाद दूसरे ही एक पुरुष ने आकर दाखिल किया है; और अनुवाद ठीक है, यह इजहार इस दूसरे पुरुषने लिया गया है ।

न्या० बीमन—आपके यह कहनेसे क्या लाभ है ? इन मराठी व्याख्यानोंका अनुवाद किया गया है और यह अनुवाद जिनको मराठी अच्छी तरहसे आती है ऐसे पुरुषको दिखलाया गया और यह राय उन्होंने दी है वह ठीक है ।

श्रीयुत बलवे:—और एक ग़लती यह हुई है कि श्रीयुत तिलकजीको पूर्वमें सज़ा हो चुकी है यह बात जांचके आख़िरमें न दाखिलकरके जांचके प्रारम्भमें ही सबूतमें दाखिल की गयी है।

न्या० बीमन—इसमें कोई सज़ा बढ़ानेका प्रश्न नहीं है। और क्रि० पो० को० के अनुसार जमानत कितनेका देना चाहिये यह श्रीयुत तिलकको दी हुई सूचनामें स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है। श्रीयुत तिलक एक सुप्रसिद्ध गृहस्थ हैं और उनकी जीवनीकी बहुतसी बातें हम सबको सुविदित हैं। अन्याय कहां हुआ यह मुझको बतलाइये!

न्यायमूर्त्ति हीटन—आपके मुवक्किलके साथ इस अभियोग में कहीं अन्याय हुआ हो, यह मेरी नज़रमें नहीं आता। यदि आप चाहें तो यह कह सकते है कि व्याख्यान राजद्रोह-युक्त नहीं हैं इसलिये अपील न करते हैं।

श्री० बलवेने मेजिस्ट्रेट साहेबका हुकुम पढ़कर सुना दिया और कहा कि व्याख्यानोंमें एक ही बात स्पष्ट दीखती है। वह यह है कि प्रचलित राज्यपद्धतिमें कुछ परिवर्तन किया जाय इतनाही श्रीयुत तिलकजीका हेतु व्याख्यानोंको साद्यन्त पढ़नेपर स्पष्ट प्रतीत होता है। सरकार और सरकारके राज्ययन्त्रमें बहुत भेद है। सरकारके विषयमें किसीकी शिकायत नहीं है। केवल सरकारके राज्ययन्त्रमें परिवर्त्तन कराना चाहिये और वह परिवर्त्तन १६१५ के गवर्नमेन्ट आफ इण्डियाके एक्टमें सुधार कराकर कराना है। यह तिलकजीका अभिप्राय है।

न्यायमूर्त्तियोंने प्रार्थना स्वीकार की।

बम्बईके हाईकोर्टमें ।

(क्रिमिनल रिवीजन प्रार्थना, नम्बर २३२ सन् १६१६)

प्रार्थी बाल गंगाधर तिलक,

बनाम

सम्राट् राजाधिराज ।

(माननीय न्यायमूर्त्ति सर स्टेन्डले बैचलर और माननीय न्यायमूर्त्ति शहाके सन्मुख)

बुधवार ता' ८ नवम्बर १६१६ ।

तिलकजीकी ओरसे मा० बै० महम्मदअली जीना, बै० बैप्टिष्टा और बै० एरूलकर उपस्थित थे । उनकी मददके लिये श्रीयुत बखले और श्री० करन्दीकर हाईकोर्ट वकील भी उपस्थित थे । सरकार की ओर से मा० बै० जार्डिन उपस्थित थे और उनकी मदद के लिये बै० स्ट्रॅगमन, बै० बिनिंग, बै० पटवर्धन और सरकारी वकील मि० पाटकर उपस्थित थे ।

कोर्टसे बै० जिना कहने लगे:—महाराज ! क्रि० प्रो० को० दफा १०८ के अनुसार पूनेके डिष्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेटने श्रीयुत बाल गंगाधर तिलकको यह हुकुम दिया (हुकुम पढ़कर सुनाया:- मैं, आपको हुकुम देताहूं कि आप एक वर्ष तक सदाचारके लिये २००००) का मुचलका और दस दस हजारकी दो जमानतें दें ।) अब यदि आप दफा १०८ देखेंगे तो हमलोगों को यह सिद्ध करना पड़ेगा कि दफा १०८ के अनुसार (दफा पढ़के सुनाई) श्रीयुत तिलकजीने राजद्रोहयुक्त बातें नहीं फैलाई हैं । और कोर्टको भी यही देखना है कि क्या श्रीयुत तिलकने राजद्रोहयुक्त बातें फैलाई है ? इस अभियोग

के व्याख्यान जबानी दियेगये हैं इसलिये इन व्याख्यानोंमें यह देखना है कि क्या राजद्रोह द्योतकशब्द कहे गये हैं? दफा १२४ अ. यों है। (उसको पढ़के सुनाया)। मजिष्ट्रेटके हुकुममें यह स्पष्ट कहा गया है कि श्रीयुत तिलकजीने अपने व्याख्यानों के द्वारा नियम प्रस्थापित सरकारके विषयमें द्वेष, तिरस्कार तथा अप्रीति उत्पन्न की है। तो पहिले हमलोग यह देखें कि "नियम प्रस्थापित बृटिश सरकारसे" अभिप्राय क्या है। मेरी रायमें जिस सरकारके विरुद्ध श्री० तिलकजीने टीका की है वही सरकार "नियम प्रस्थापित सरकार" है इस प्रकारकी अयथार्थ कल्पना मेजिष्ट्रेट साहेबने करली है। मैं अब यह सिद्धकर दिखाऊंगा कि इन व्याख्यानोंमें "नियम प्रस्थापित सरकार" के विरुद्ध एक भी शब्द नहीं है। व्याख्यानोंमेंसे ४७ भाग मैंने निकाला है; और इन ४७ भागों में बृटिश सरकार बहुत अच्छी सरकार है ऐसा बिलकुल स्पष्ट कहा है। ई० पी० को० दफा १६ में हिन्दुस्तान सरकार शब्दका लक्षण बतलाया है। दफा १६ कहती है कि हिन्दुस्तान सरकारके माने गवर्नर-जेनरल और उनकी कौंसिल या उस कौंसिलके सभापति या अकेले गवर्नर जनरल है "सरकार" और "हिन्दुस्तान सरकार" का भेद दिखलाते समय दफा १७ में ऐसा कहा है कि 'सरकार' माने बृटिश हिन्दुस्तानके किसी विभागमें प्रत्यक्ष राज्य प्रबन्ध चलाने वाली व्यक्ति अथवा अनेक व्यक्तियों का समुदाय है।

न्या० बैचलर—प्रश्न यह है कि क्या दफा १२४ अ-में 'सरकार' शब्दका अर्थ हिन्दुस्तान सरकार है?

बै० जिना—दफा १७ में 'सरकार' शब्दका लक्षण दिया है।

न्या० बैचलर—दफा १२४ अ-में " अथवा नियम प्रस्थापित सरकार " ये शब्द हैं ?

बै० जीना—यदि आप यह मानलें कि दफा १७ में कहा हुआ 'सरकार' शब्दका लक्षण ठीक है तो दफा १२४ अ-में 'सरकार' शब्दके बाद अथवा 'नियम प्रस्थापित सरकार' ये शब्द निरर्थक हो जाते हैं इसलिये मेरा निवेदन यह है कि 'सरकार' शब्दका अर्थ प्रत्यक्ष दृश्य सरकार नहीं है और सर्वसाधारण सरकारसे अदृश्य कल्पना व्यक्त की गई है। और इस सरकारके विरुद्ध यदि अप्रीति उत्पन्न की जाय तो दफा १२४ अ-के अनुसार अपराध होता है। महाराज! दफा १७ में कहा हुआ लक्षण यदि आप इस स्थानपर लगाएंगे तो मामूली पुलिस सिपाहीकाभी उसमें अन्तरभाव होजायगा किसी कलेक्टरका अन्तरभाव हो जायगा हरएक कर्मचारीका भी समावेश हो जायगा। इसलिये मेरा इतनाही कहना है कि 'नियम प्रस्थापित सरकार' का दफा १७ में अन्तरभाव नहीं होता इसलिये मेरी राय है कि जस्टिस बैटी साहेबने आठ बम्बई ला रिपोर्ट पृष्ठ ४३८ में जो लक्षण दिया है वही ठीक है। (पृष्ठ ४३८ पढ़के सुनाया) जस्टिस बैटीके मतसे सरकार का अर्थ राजसत्ताकी अव्यक्त भावनाही है।

न्या० बैचलर—आपका कहना ठीक है। दफा १७ में 'सरकार' शब्दसे व्यक्तियोंका समुदाय ही मान लिया है। आप इस प्रश्न पर अपने विचार प्रगट करें।

बै० जिना—मैंने आपसे कहा ही है कि 'सरकार' शब्दका लक्षण पि० को० में सेही लिया गया है, 'एक व्यक्ति' अथवा 'अनेक व्यक्ति' यह अर्थ उन्होंने नहीं लिया है। न्या० बैटीने कहा है 'सरकार' का अर्थ एक या अनेक अधिकारी नहीं

है। आगे यह भी कहते हैं कि सरकार माने क्षणिक प्रासंगिक कल्पना नहीं है, 'सरकार' माने चिरकालीन कल्पना है। इसलिये मेरा कहना इतना ही है कि तिलकजीके व्याख्यानोंमें सर्वराज्य प्रबन्धके विरुद्ध शिकायत नहीं है परन्तु एक विवक्षित राज्यपद्धति पर उनका कटाक्ष है। राज्य व्यवस्थामें "सिविलसर्विस" अथवा "ब्युरॉक्रसी" इनसे जिन लोगोंका बोध होता है उनपर तिलकजीकी टीका है। आप यह ध्यान में रक्खें कि सब सिविलसर्विस नष्ट की जाय यह भी उन्होंने नहीं कहा परन्तु यह कहा है कि उनके हाथमें जो अनियन्त्रित सत्ता है वह घटाकर उनको लोगोंके प्रति उत्तरदाता बनाया जाय।

न्या० बेक्लर—तो फिर सिविलसर्विस न निकालते हुये उनपर लोगोंका दबाव रहे यही न कहना है ?

बै० जिना—अब हम लोग दफा १२४ अ-का जो खुलासा किया गया है उसपर ध्यानदें 'अप्रीति' शब्दका अर्थ मेजिस्ट्रेट साहेबने बिलकुल गलत किया है अप्रीति माने प्रत्यक्ष द्वेष बुद्धि है, अप्रत्यक्ष विचार नहीं। दफा १२४ अ-के दूसरे खुलासेमें यही बात व्यक्त की है। श्री० तिलकजीके सब व्याख्यान पढ़कर विचार किया जाय तो यह मालूम हो जायगा कि उन्होंने सरकारके कुछ कामों पर टीका की है और उस टीकाका उद्देश्य उस अन्यायका प्रतिकार करना ही है। इस अभियोगमें दूसरी जो एक विशेष बात मुझको कहनी है वह हेतुके विषयमें है, और किसी फौजदारी अभियोगमें, लेखक तथा वक्ताके हेतुकी ओर ध्यान देना चाहिये। अप्रीति उत्पन्न करनेका हेतु था यह स्पष्ट सिद्ध हो जाना चाहिये और यह हेतु व्याख्यान अथवा लेख परसे

ही निकालना चाहिये। बुरे हेतुका होना सिद्ध करना फरियादी पक्षका काम है। मैंने श्रीयुत तिलकजीके व्याख्यानोंमें से ४७ भाग निकाले है उनसे यह स्पष्ट होता है कि नियम प्रस्थापित बृटिश सरकारके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करनेका उनका उद्देश्य नहीं है। व्याख्यानोंके विषयमें और एक बात कहना आवश्यक है व्याख्यानोंके नोट सी. आई डी. के लघुलेखकोंने लिये है और उनके ये नोट अधिकसे अधिक स्मरणशक्तिको प्रोत्साहन देनेके लिये हो जायंगे। व्याख्यानों का तात्पर्य्य ठीक है श्री० तिलकजीने यह बात मान ली है. और मुझको भी वह बात स्वीकार नहीं है। मेरा वक्तव्य इतनाही है कि व्याख्यान लिखते समय लघुलेखकोंसे एक आध शब्द वा वाक्य कम अधिक हो जाय तो बहुतसा अर्थ बदल जाता है। इसलिये सब व्याख्यान एक साथ पढ़े जायं यह मेरी विनती है। अनुवादके विषयमें तो मेरी बहुत कुछ शिकायतें है। अनुवादके शब्दोंके विषयमें लोअर कोर्टमें बहुत सा वादाविवाद हो चुका है।

न्या० बैचलर – आपके कहनेका अर्थ इतनाही जान पड़ता है कि हमलोग विवक्षित शब्दोंके अनुवादकी ओर ध्यान न देकर सब व्याख्यान एकत्र पढ़ें। ठीक है हम दोनोंने भी तीनों व्याख्यान पढ़े हैं और वे पढ़ गए है यही समझकर आप अपना कथन आगे बढ़ावें।

मि० जिना :—तो फिर मैं भी व्याख्यान पढ़ने नहीं बैठता। अब आप लोग १९१५ का गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया एक्ट देखें। उसके विषयमें मेरा कहना इतनाही है कि नियम प्रस्थापित सरकारका लक्षण उसमें दिया है। उस लक्षण में 'सरकार' माने सम्राट् दिया है (उस कानूनका दफा १

और २ देखिये) उससे आपको यह पता लगेगा कि नियम प्रस्थापित सरकारके माने स्वयं सम्राट् और पार्लियामेन्ट ही है। सम्राट्ने अपने अधिकार कुछ कारणोंसे "सेक्रेटरी आफ स्टेटको दिये हैं। उन्होंने गवर्नर—जनरलको दिये हैं। और जस्टिस बैर्टीके मतके अनुसार नियम प्रस्थापित सरकार सम्राट् तथा पार्लियामेन्ट है और उन्होंने अपने अधिकार सेक्रेटरी आफ स्टेट और गवर्नर—जनरलको दिये हैं। इस-लिये अधिकसे अधिक सरकार शब्दकी व्याप्ति गवर्नर जनरल तक पहुंचेगी। सेना विभाग, जंगल विभाग, तथा सिविल सर्विस ये सब सेवक विभाग है। मेरे मतमें इन विभागोंमेंसे किसी विभागको उडा दिया जाय यह कहनेका प्रत्येक प्रजाजनको अधिकार है। मैं जोर देकर कहताहूँ कि इस विभाग पर अविचारके साथ भी टीका करनेका अधि-कार प्रत्येक नागरिक को है। उससे बृटिश हिन्दुस्तानमें नियम प्रस्थापित सरकारके विषयमें अप्रीति उत्पन्न करनेका अपराध नहीं होता।

हेतुके विषयमें लार्ड हेलिस्बरीके "लाज आफ इङ्गलैन्ड" नामक पुस्तकके नवम भागमें ४६३ पृष्ठ पर 'राजद्रोह' शब्दकी विवेचना की है। (४६३ पृष्ठ पढ़के सुनाया) इङ्गलैन्ड और हिन्दुस्तानके राजद्रोहके कानूनमें बहुत भेद नहीं है। नियम प्रस्थापित सरकारका लक्षण निश्चित करते समय सरकार शब्दसे अप्रत्यक्ष भावनाका ही अर्थ लिया गया और सरकार के विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करनेका श्री० तिलकजीका हेतु था यह सिद्ध करनेका बोझ फरियादी पक्षपर है। केवल हाम-रूल पर व्याख्यान देनेका बहाना करके सरकारके विषयमें अप्रीति उत्पन्नकी है, ऐसा कहनेसे काम नहीं चलेगा।

व्याख्यानोंमें तिलकजीका क्या हेतु था यह मैं आपको स्पष्ट करके कहूँगा।

पहिली बात यह ध्यानमें रखनी चाहिये कि बेलगांवमें होमरूल लीगकी प्रस्थापना हुई यह बात फरियादी पक्षको भी अस्वीकार नहीं है। और छोटे कोर्टमें बे० विनिगने यह भी कहा है कि इस आन्दोलनके विषयमें वे कोई मत प्रगट करना नहीं चाहते। इसलिये मैं यदि यह मानलूं कि होमरूल लीग एक नियमानुकूल संस्था है तो उसमें कोई बाधा नहीं है। श्री० तिलक बेलगांवमें गये और उन्होंने लोगोंको यह निश्चय करानेके लिये व्याख्यान दिया कि यह होमरूललीग संस्था एक बहुत अच्छी संस्था है। व्याख्यानमें लोग इस लीगके सभासद हो जांय और लीगको वे आर्थिक सहायता करें, यही उन्होंने लोगोंसे बिनती की। जब परिस्थिति इस प्रकार की थी तब राजद्रोहयुक्त मतोंका प्रसार करना तिलकजीका हेतु था, यह कहना वस्तुस्थितिके विपरीत है। उनके व्याख्यानकी ओर देखा जाय तो आपको यही बात ज्ञात होगी। अपने व्याख्यानके प्रारम्भहीमें उन्होंने सरकारके अव्यक्तसरकार और व्यक्तसरकार ये दो विभाग किये हैं। फिर वे कहते है "स्वराज्यका प्रश्न सम्राट्से सम्बन्ध नहीं रखता यह व्यक्त सरकारसे सम्बन्ध रखता है। यह प्रारम्भहीसे ध्यानमें रखना चाहिये..........अराजक राष्ट्रोंकी बात दूसरी है..............अराजकराष्ट्रोंमें इसका भी कोई ठिकाना नहीं है कि घरमें आग कब लग जायगी"। इसलिये महाराज! इतना स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि बादशाह के विषयमें एक अक्षर भी श्री० तिलकजीने नहीं कहा है। *उन्होंने साफ़ कहा है कि अराजक-राष्ट्रोंका कभी उदय नहीं*

हो सकता। सरकार अवश्य होनी चाहिये। आगे वे कहते है, "अंग्रेज लोगोंके ही नेतृत्वमें, अंग्रेज राज्यके ही निरीक्षणमें..............इसके विषयमें मुझको कुछ बोलना नहीं है।" यह पहिली बात उन्होंने कही है। महाराज! मैं आपसे एक सहज प्रश्न करता हूं कि बृटिश राज्यकी इस प्रकारकी प्रारम्भहीमें स्तुतिकरनेके पश्चात् कोई व्याख्याता इस देशमें प्रस्थापित बृटिश राज्यके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न कर सकता है? इसके अतिरिक्त श्री० तिलकजी श्रोता लोगोंसे अनुरोधके साथ कहते है कि इस राष्ट्रका भाग्योदय बृटिश सरकारकी सहानुभूतिसे तथा उदार बुद्धिसे ही होगा। इस प्रकार बृटिश सरकारकी स्तुतिकरके फिर वे कहते है कि भारतवर्षका हित बृटिश सरकारकी मददसे ही कराना इष्ट है। प्रारम्भमें ही ऐसा कहनेके पश्चात् उसी सरकारके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करना क्या किसी मनुष्यके लिये शक्य है? आगे वे कहते हैं, "अव्यक्त सरकार स्थिर रहेगी और क्षण क्षण पर बदलने वाली व्यक्त सरकारमें हम लोगोंको परिवर्त्तन कराना है। यह प्रश्न स्वराज्यका है....... अंग्रेज सरकारको हम लोग बदलना नहीं चाहते।............ हमारी जो मांग है वह स्वराज्य की है"। इसका अर्थ क्या है? अंग्रेजी राज्य नहीं चाहिये यह इसका अर्थ नहीं होता। तिलकजी साफ साफ कहते हैं कि अंग्रेजी राज्यके ही छत्रके नीचे हमको रहना है। मेरा तो यह निश्चय हो रहा है कि बृटिश सरकारके विरुद्ध अपने कुल व्याख्यानोंमें जब एक शब्द भी नहीं कहा गया और तब भी जब अंग्रेज सरकारके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न होने लगी तो फिर श्रोता लोगोंका माथा ठिकाने नहीं था यही मुझको कहना पड़ेगा। मैंने

आपको जो भाग पढ़के सुनाए हैं वे व्याख्यानोंमेंसे कहीं कहींसे लिये गये हैं। यदि किसी व्यक्तिको अप्रीति उत्पन्न करनी होगी तो वह व्यक्ति अपने व्याख्यानके आरम्भमें ही वैसा करेगा और अपना उद्देश्य पूरा करनेके लिये उसीका पुनरुच्चारण व्याख्यानके अन्ततक करता रहेगा। पर वैसी स्थिति यहां नहीं है। आपको ज्ञात होजायगा कि व्याख्यानके प्रारम्भमें, व्याख्यानके मध्यमें, तथा व्याख्यानके अन्तमें आज-कलकी राज्यप्रणाली बदलनी है, यही अपना हेतु श्री० तिलकजीने स्पष्ट विदित किया है। वे कहते हैं, " यह पद्धति हम लोगोंको नहीं चाहिये······· ······इस उद्योगका फल आपके जीतेजी नहीं तो आपके आगेकी पीढ़ीको प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा।" महाराज! यह तिलकजीका पहिला व्याख्यान है। इस व्याख्यानमेंसे मेरे निकाले हुए २४ भाग व्याख्यानके प्रारम्भके या अन्तके नहीं है परन्तु व्याख्यानमेंसे भिन्न भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं। प्रचलित राज्य पद्धतिमें परिवर्त्तन कराना ही उनका उद्देश्य है। इस पहिले व्याख्यानके विरुद्ध जो जो शिकायतें की गई है वे सब वक्ताके मुख्य उद्देश्यके विषयमें ग़लत ख्याल हो जानेके कारण की गई है। वे कौनसी हैं यह हमलोग देखें। महाराज! मुझको यह सम्पूर्ण व्याख्यान पढ़ना चाहिये।

न्यायमूर्त्ति बेचलर :—आप खुशीके साथ तीनों व्याख्यान पढ़ें आपके विवरणके मार्गमें आना मुझको पसन्द नहीं है। आपको व्याख्यान पढ़ने हों तो आप पढ़ें, जैसा आपके जीमें आवे करिये।

बे० जिना :—व्याख्यान पढ़नाही मुझको अच्छा लगता है। क्योंकि उसीसे ही मेरा निवेदन स्पष्ट हो जायगा।

"स्वराज्य माने क्या······उत्तर यही है कि, घमण्ड (वृथाभिमान) है इसलिये conceit शब्दके स्थानमें over-confidence शब्द रखकर मूल शब्दका अनुवाद करना चाहिये था।

न्या० बेचलर :—Conceit क्या और over-confidence क्या हमको उससे कुछ मतलब नहीं।

न्या० शहा :—मूल मराठी शब्द क्या है ? वह कुछ मेरे ध्यानमें नहीं आता।

मि० जिना :—घमण्ड ।

न्या० बेचलर :—मेरे निजके मतमें इस शब्दके लिये conceit और over-confidence में कुछ बहुत फरक नहीं है।

मि० जिना :—conceit शब्द अधिक चुभने वाला है।

न्या० बेचलर :—हां; हमको उससे क्या मतलब ?

बै० जिना :—पर इसी वाक्य पर फरियादी पक्षने आक्षेप किया है। पर इसमें क्या बिगड़ा है, यह मेरे समझ में नहीं आता है। सब भाग इस प्रकार है कि जिसका पेट दर्द करता है उसीको उसका अनुभव होता है। मैं समझता हूं कि यह ठीक ठीक नहीं लिखा गया है। तिलकजीके कथनका यह आशय है कि इन अधिकारियोंसे कोई भी बात करनेकी विनती करिये; परन्तु वे इतने घमण्डी रहते हैं कि हमारी सुनते ही नहीं। इसीलिये तिलकजी कहते हैं, कि जिसका पेट दर्द करता है उसीको उसका अनुभव होता है।

न्या० बेचलर:—अंग्रेजीमें एक कहावत है कि जूता पहिनने-वालेको ही यह मालूम होता है कि, वह कहां काटता है।

बै० जिना :—बिलकुल ठीक ऐसाही है। कुछ अधिकारियोंको अपने प्रबन्धके विषयमें इतना आत्मविश्वास रहता

है—और वह बिलकुल हार्दिक रहता है—कि उस प्रबन्धके मोटे मोटे दोष जो लोगोंकी दृष्टिमें आते हैं वे उनकी दृष्टिमें आ ही नहीं सकते। आगे तिलकजी कहते हैं."दूसरा कुछ कारण नहीं है...........स्वराज्यके लिये पात्र नहीं हैं।" लोगोंकी शिकायतें वे इस प्रकार बतला रहे है।

"एक देहाती आदमी, एक मेमना अपने सिर पर रखकर चला जा रहा था.........उसीकी तरह हमारी स्थिति है।"

न्या० बैचलर :—यह कहानी ला—रिपोर्ट्समें वर्णित एक कथाकी नाईं प्रतीत होती है।

बै० जिना :—यह कहानी लेजिस्लेटिव कौंसिलमें भी कही गई थी।

न्या० बैचलर :—कथा इसप-नीतिकी सी दीखती है। उस आदमीके सिर पर कोई चीज़ थी और क्या?

बै० जिना :—नहीं नहीं, सचमुच उसके सिर पर मेमना ही था।

न्या० बैचलर :—हां? और कथा एकके बाद ऐसे तीन आदमी मिले?

बै० जिना :—जी हां। उनमेंसे एक बोला यह कुत्ता है, दूसरेने और ही कुछ कहा और वह आदमी इतना सीधा साधा था कि उसके दिलमें घबड़ाहट होगई और उसने वह मेमना सिरसे उतार कर फेंक दिया। श्रीयुत तिलकजी श्रोता लोगोंसे कहते है कि आप लोग ऐसे भोले भाले न बन जायं। तिलकजीने खास करके किसी व्यक्ति या जाति के लिये धूर्त शब्दका प्रयोग नहीं किया। होमरूलके आन्दोलनके विरुद्ध जो लोग है उनके विषयमें उन्होंने इस शब्दका

प्रयोग किया है। लेजिस्लेटिव कौंसिलमें डा० भाण्डारकर ने भी इस कथासे काम लिया था।

न्या० बेचलर :—शेक्सपियरके नाटकमें मोन्टगामरी नामक पुरुषने ऐसी ही एक कथा कही है। (कथा सुना दी) मेरी समझमें इस कथा का अर्थ इतनाही है कि जो बात अपने हितकी मालूम पड़ती है उसी बातको बहुतसे लोग एकके बाद एक आकर "बुरी है" कहें तोभी हम उसको करनेसे न भागें।

बै० जिनाः—मेरा मत भी ऐसाही है। तिलकजीका कहना यह है कि स्वराज्य संघ रूपी मेमना अपने सिर पर लेकर जब आप लोग जायंगे तब कोई कितनी ही उटपटांग बातें कहे तो भी उसे फेंक मत दीजिये।

न्या० शहा :—इसमें मुख्य कटाक्ष यह नहीं है कि होम-रूलके विरुद्ध जो लोग है उनको श्री० तिलकजी शठ कहते हैं।

बै० जिना:—फरियादी पक्षका क्या कहना है यह मेरी समझमें नहीं आता। होमरूलके आन्दोलनके विरुद्ध जो लोग हैं उनपर यह विशेषण घट सकता है।

बै० जार्डिन :—होमरूललीगके आन्दोलनके विरुद्ध जो लोग हैं वे होमरूललीग संस्थाओंको अच्छा समझकर भी जानबूझकर उस आन्दोलनको बुरा कहते हैं, इसलिये श्री० तिलकजी उनको शठ कहते है, यह मेरा कहना है।

बै० जिना:—मेरे कहनेका आशय यह है कि यह कथा बिलकुल सरल है और इसमें किसीको लगने लायक एक शब्द भी नहीं है। इसमें किसीपर अप्रमाणिकता का आक्षेप नहीं किया है। डाक्टर भाण्डारकरने लेजिस्लेटिव कौंसिलमें जब इस कथाका प्रयोग किया तब "युनिवर्सिटीका कानून

एक अच्छा कानून नहीं है " ऐसा बहुतसे माननीय सभासद कहते थे, इन्हीको लक्ष्य करके यह कथा उन्होंने कही। डा० भाण्डारकरने लेजिस्लेटिव कौंसिलमें उसे ज्योंका त्यों सुनाया और वे आगे कहने लगे, "मेरी इस कथा-नायककी नाईं भोले भाले होनेकी इच्छा नहीं है। और बहुतसे माननीय सभासद इस बिलको बुरा कह रहे हैं तो भी मैं इसका त्याग करनेको तैयार नहीं हूं।" महाराज! क्या डा० भाण्डारकरके ऊपर कमसे कम असभ्यताका भी आरोप कोई करेगा?

न्या० बैचलर:—असभ्यता होती है कि नहीं यह प्रश्न आज हमारे सामने नहीं है।

बै० आर्डिन:—तीन धूर्तोंकी कथासे तिलकजीका यह अभिप्राय है कि जो जो लोग होमरूलके विरुद्ध हैं वे लोग शठ हैं।

बै० जिना:—इस बातका अधिक विवरण करके मैं आप का अधिक समय नहीं लेना चाहता। इस बातमें शठत्वका आरोप किसीपर नहीं किया है। अधिकसे अधिक धूर्त कहने के लिये असभ्यताका दोष माना जा सकता है।

न्या० बैचलर:—फौजदारी अपराध हुआ है कि नहीं यह देखनेके लिये हमलोग यहां बैठे हैं न कि सभ्यता और असभ्यताका विचार करनेके लिये।

बै० जिना:—तो मैं इस विषयमें आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता। जिस दूसरी बातपर फरियादी पक्षसे आक्षेप किया गया है वह इस प्रकार है। "हमलोगोंने कभी काम नहीं किया......................हमलोग अयोग्य हैं,.................देना नहीं है" यह कहो। हम अयोग्य हैं,

यह मत कहो।" इस स्थानपर "हमलोग अयोग्य हैं" कहनेवालोंको श्री० तिलकजीने उत्तर दिया है। श्री० तिलकजी कहते हैं कि जब माननीय सर सत्येन्द्र प्रसन्नसिंहको कार्य्यकारी मण्डलमें सभासद नियुक्त किया गया तब माननीय सिंहजीने, "हम उसपदके लिये अयोग्य हैं" यह कभी नहीं कहा। आगे श्री० तिलकजीने २१ वर्षकी अवस्थाके असिस्टेन्ट कलेक्टरके नीचे ६० वर्षकी अवस्था के तहसीलदारको काम करना पड़ता है," यह उदाहरण दिया है इसमें तिलकजीके कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि २१ वर्षके असिस्टेन्ट कलेक्टर, प्रौढ़, अनुभवी तथा नौकरी करते २ जिसके बाल कालेसे सफेद हो गये हैं उस तहसीलदारकी अपेक्षा अधिक अधिकार दिये जाते हैं। प्रचलित राज्य पद्धतिमें यह एक बड़ा दोष है, इतना ही तिलकजीका अभिप्राय था और यह बात सरकारके विरुद्ध अप्रीति कैसे उत्पन्न करती है सो ईश्वर ही जाने! आजकल की राज्यपद्धति कैसी है, इतना ही तिलकजीको दिखाना था।

न्या० बेचलर—मुझको तो इसमें कोई राजद्रोह नहीं दीख पड़ता:

बे० जिना—छोटे कोर्टमें मजिस्ट्रेट साहबने कहा है कि अधिकारी वर्ग अभिमानके कारण अपनेको अनुभवका खज़ाना समझते हैं, इस प्रकार तिलकजीका एक कुत्सित इशारा है। परन्तु यह कहना बिलकुल गलत है। श्री० तिलकजीके मतके अनुसार आजकल हमलोगोंका ज्ञान बढ़ा है, हमलोगोंको बहुतसा अनुभव प्राप्त है, इसलिये पहिलेकी अपेक्षा अब हमलोग अधिक योग्य हैं। किसी विवक्षित राज्यपद्धति पर यदि टीका करनी हो तो "वह राज्य-

पद्धति बुरी है, कमसे कम लोकहितकी तो नहीं है," यह दिखलाये बिना उसपर टीका करना कभी सम्भव नहीं। श्री० तिलकजी कहते है, "हमलोगोंको स्वराज्य देना नहीं है, यह कहिये, जो कुछ कहना हो सो साफ कहिये, परन्तु हमलोग अयोग्य हैं यह मत कहिये"। तिलकजी यह बात क्रोधमें कह रहे हैं। वे यह भी कहते हैं, "आप हमलोगों को कितने दिन तक सिखाते रहेंगे ?" ये सब बातें "तुम लोग नालायक हो" इस आक्षेपके उत्तरमें कही गई है।

न्या० बैचलर—"यह भी बात नहीं करनी है तो हिन्दुस्तानी लोग राज्यप्रबन्ध चलानेके योग्य नहीं हैं............उनकी सामर्थ्य जिन मार्गोंसे बढ़ेगी उनको बिलकुल बन्दकर देना है"। यह भाग आपके बिलकुल विरुद्ध है, इसके उत्तरमें आप क्या कहते हैं ?

बै० जिना—आप पूर्वापर सम्बन्ध देखियेगा तो आपके ध्यानमें आजायगा कि श्री० तिलकजी इस स्थानपर योग्या-योग्यताका विचार कर रहे हैं। बृटिश प्रान्तोंमें क्या हो रहा है, मैसूरमें क्या हो रहा है, और उसके पड़ोसके ही बेलगांव आदि जिलोंमें कैसी राज्यव्यवस्था है यह देखिये। मैसूरका राज्यप्रबन्ध करनेके लिये यदि हमलोग योग्य हैं तो फिर उसके इधरके दो जिलोंका राज्यप्रबन्ध करने के लिये हमलोग अयोग्य क्यों है यही तिलकजीका कहना है। हिन्दुस्तानके राज्यप्रबन्ध करनेके लिये अयोग्य हैं, ऐसा कहनेवालेको श्री० तिलकजीने उत्तर दिया है और सदैव अयोग्य बनजाना मानों सदैव गुलामगिरीमें रहना है। इस भागमें "गुलामगिरी" शब्द राजकीय गुलामगिरी के अर्थमें प्रयुक्त किया गया है। इसका अर्थ इतना ही

हैं कि प्रजाको कुछ भी अधिकार न रहे। देहके क्रय विक्रयके अर्थमें 'गुलामगिरी' शब्दका प्रयोग नहीं किया। जब पुरुष क्रोधमें आता है तो प्रायः कहता है कि "मै कुछ तुम्हारा गुलाम नहीं हूँ"।

न्या० बेचलर—"हम तुम्हारा गुलाम नहीं हैं"। ऐसा कहते हैं सही।

बे० जिना—इसका अर्थ इतना ही है कि तुम्हारा कहना हम नहीं मानेंगे।

न्या० शहा—आपके कथनका आशय यह दिखाता है कि, यह शब्द कुछ क्रोधमें कहे गये है।

बे० जिना—जी हां, इससे दूसरे अर्थकी सम्भावना नहीं है।

न्या० बेचलर—"उद्देश्य है" ऐसा कहने की अपेक्षा "तात्पर्य यह है" कि ऐसा कहा जाता तो काम नहीं चलता ?

बे० जिना—पूर्वापर सम्बन्ध देखा जाय तो योग्यायोग्यता की चर्चा करते समय यह भाग आया है इसलिये इसमें कुछ आक्षेपाई है। यह मै नहीं समझता। आप यदि सब भाग पढ़ जायंगे तो आपके ध्यानमें सारी बात ठीक २ आजायगी (यहां श्री० बखलेजीने मूल मराठी भाग पढ़के सुनाया।)

न्या० बेचलर—बहुत वर्षके पहिले मैने इसप-नीतिकी कथाएं पढ़ी थीं। उन कथाओंका तात्पर्य दिया रहता था और उस तात्पर्यका अर्थ 'उद्देश्य' नहीं बल्कि 'परिणाम' है।

बे० जिना—इस स्थान पर 'परिणाम' अर्थ है।

न्या० बेचलर—क्यों सरकारी वकील साहेब! ऐसा ही अर्थ होता है न ?

सरकारी वकील—जी हां। इसका अर्थ "तात्पर्य" ही होता है।

बै० जिना—बिलकुल ठीक है। सब व्याख्यान पढ़ने पर वही अर्थ निकलता है।

न्या० बैचलर—"तात्पर्य" अर्थ मानकर हमलोग आगे चलें।

बै० जिना—श्रीयुत तिलकजी आगे कहते है, "हमलोग क्या मांगते हैं·········अधिकारारूढ़ जो लोग हैं उनकी ओरसे यह विरोध हुआ करता है"। "अधिकारारूढ़ लोग" माने सिविलसर्वेन्ट्स तिलकजी कहते हैं। "बादशाहके दृष्टिसे अराजकत्व है·······राजनिष्ठा नहीं········उसकी परवाह मत कीजिये"। श्रीयुत तिलकजी यह कहते हैं कि जिन लोगोंके हाथमें आजकल सत्ता है वे लोग स्वराज्यके विरुद्ध है। आजकल जो सब अधिकारोंका ठीका सिविलसर्वेन्टस् लोगोंको दिया गया है, वह निकाल कर यह प्रणाली बदलवानी चाहिये। और इस प्रकार कहना मानो नियम प्रस्थापित राज्यके विरुद्ध आक्षेप है, यह समझना गलत है।

बै० जिना—पश्चात् तिलकजीने ईस्ट इन्डिया कम्पनीके समयसे इतिहास दिया है। और वे कहते है, कम्पनीका राज्य चलागया तो भी नीति वही कायम है; और बीचमें आघोषणा योंही व्यर्थ होगई। इस भागमें तिलकजीका केवल इतनाही कथन है कि कम्पनीका प्रबन्ध अव्यवस्थित तथा देशहितके विरुद्ध है, ऐसा ज्ञात होने पर उसमें परिवर्त्तन हो गया; परन्तु वह परिवर्त्तन ऊपरही ऊपर हुआ है, वस्तुतः नहीं हुआ। और इसलिये महारायीजीका

आयोजका पत्र बीचमें योंही व्यर्थ गया, इसलिये यह पद्धति बिलकुल मूलसे बदल देनी चाहिये।

श्री० तिलकजी कहते हैं, "फिर यह लेजिस्लेटिव कौंसिल बनाई गई............उनको गज़टमें प्रकाशित करदेंगे।"

न्या० बैचलर—इसमें आक्षेप योग्य कौनसा भाग है?

बै० जिना—किस पर आक्षेप है यह स्वयं वही जाने!

तिलकजी आगे कहते है, "महाभारतमें एक श्लोक है............इस प्रकार ब्युरॉक्रसी टालमटोल कर रही है।"

न्या० बैचलर—छोटे कोर्टमें इस भाग पर भी आक्षेप किया है?

बै० जिना—जी हां।

बै० बिनिंग—छोटे कोर्टमें क्या हुआ यह सविस्तर कहनेकी मुझको अनुज्ञा मिले।

न्या० बैचलर—नहीं, अनुज्ञा नहीं है।

बै० जार्डिन—"आज्ञां कालवर्ती कुर्य्यात्" यहां से आगे के भाग पर मेरा आक्षेप है।

बै० जिना—इस भागका भी अर्थ हम लोग देखें। इसका अर्थ इतनाही होता है कि, हमारी मांग टाल देनेके लिये एकके बाद एक भिन्न भिन्न कारण बतलाये जाते हैं। ठीक हो या गलत हो हमलोग कुछ बातें मांगते हैं और उस मांग को निरर्थक कारण बताकर टाल दिया जाता है। यह यदि सच है, तो इससे सरकारके विषयमें अप्रीति किस प्रकार उत्पन्न हो सकती है यह समझना कठिन है। फिर भी श्रीयुत तिलक कहते हैं, "हमारे लिये पिछले पचास सालों में स्टेट सेक्रेटरी.........."एक दामाद उत्पन्न किया गया है।"

इस स्थान पर स्टेट सेक्रेटरीको "दामाद" कहनेमें भी तिलक-

जीने एक मराठी कहावतका प्रयोग किया है। इसका अर्थ इतनाही है कि जैसे दामाद यथार्थ न्यायसे स्वामी नहीं रहता तौभी स्वामीके सब कार्य्य और अधिकार चलाता है वैसीही स्थिति स्टेट सेक्रेटरीकी भी है। इसका अर्थ इतनाही है कि केवल कहनेके लिये पार्लियामेन्टके उत्तरदाता है. पर सचमुचमें सब प्रबन्ध यही करते है। ऐसा यदि कहा तो इसमें क्या गलती हुई? स्टेट सेक्रेटरीको निकाल दिया जाय यह कहनेमें राजद्रोह कहां होता है?

इसके बाद "यह जो व्यवस्था की है वह कम्पनी सरकार की नीतिके अनुसार की है" ......और अघोषणापत्र बीचमें हीं व्यर्थ गया।" राजनीति व्यपारी कम्पनीकी नीतिके ही अनुसार है, इस अर्थके भागपर जो आक्षेप था उसके उत्तरमें बै० जिनाने कहा कि, १८५८ में जो आघोषणापत्र महारागी साहेबने निकाला वह अघोषणापत्र यद्यपि उदारमतका द्योतक था तौभी राज्यव्यवस्था—अर्थात् जिन अधिकारियोंके द्वारा राज्यव्यवस्था चलानी है वह अधिकारी वर्ग—कम्पनीके अधिकारी वर्गके स्थानमें आया है। इसलिये जबतक यह पद्धति मूलसे ही न बदली जाय तबतक घोषणापत्र यथार्थ तथा कार्य्यरूपमें नहीं लाया जायगा। पहिले कम्पनीके डाइरेक्टरोंके हाथमें जो सत्ता तथा अधिकार थे वही सत्ता तथा वेही अधिकार आजकलके स्टेट सेक्रेटरीके हाथमें है। इसीलिये तिलकजी कहते है कि पूर्वके नौकर कायम हैं, पूर्वके ही नौकरोंके हाथमें सत्ता है, इससे घोषणापत्र बीचहीमें व्यर्थ गया। इसमें राजद्रोह कहां हुआ यह मेरी समझमें नहीं आता। इसके बाद लेजिस्लेटिव कौंसिलके लोकनियुक्त सभासदोंके हाथमें सत्ता नहीं रहती इत्यादि जो तिलकजीने

टीका की थी उसके विषयमें जब बे० जिना बोलने लगे तब न्या० बैचलर साहेबने कहा "क्या ? इसके विषयमें भी फरियादी पक्षका कुछ आक्षेप है ?" तब मि० जार्डिनने कहा कि इस विषय पर हमारा कुछ आग्रह नहीं है।

पश्चात् न्याय मुर्त्तियोंके प्रश्न करने पर, "विदेशी" तथा "धक्कादेना" इन शब्द प्रयोगोंका खुलासा बे० जिनाने किया, और कहा कि मूल रिपोर्टमें इसी स्थान पर कुछ भाग छूट गया है, यह कहकर ब्युरॉक्रसीके द्वारसे न जाइये, वहां आपको रुकावट होगी, इसलिये जहांपर आपलोगोंको कोई रोके नहीं, (धक्का नहीं देगा) ऐसे मार्गसे अर्थात् पार्लिया-मेन्टके द्वारा मांग मांगिये, यही तिलकजीका हेतु है। "अंग्रेजों-को यहां किसने बुलाया ?" इस प्रकारका प्रश्न पूछनेमें कोई अनोखी बात नहीं है। यह न्या० बैचलरने मान लिया और उसपर किसीका आक्षेप नहीं है यह कहा गया। बे० जिनाने कहा कि "विदेशी" शब्द तिलकजीने नियम प्रस्थापित सरकारके विषयमें नहीं प्रयुक्त किया। सिविलसर्विसके लोग विदेशी रहते है इसपर भी उनका जोर नहीं है। जिस विवक्षित पद्धतिसे राज्य प्रबन्ध चलाया जाता है उस पद्धति पर कटाक्ष है। जो केवल स्वार्थकी ही परवाह करता है दूसरे कि हितकी ओर ध्यान नहीं देता है, वह विदेशी है, यह तिलकजीने कहा है।

उनकी सब टीका ब्युराक्रसीरूपी सरकार पर है। अव्यक्त सरकार पर नहीं। मैं स्वयं श्री० तिलकजीके कथनका आशय इतना ही समझता हूँ कि विवक्षित अधि-कारियोंका हिताहित लोगोंके हिताहितका विरोध करने

जाता है, इसलिये पार्लियामेन्टके पास जाकर यह पद्धति बदलवानी चाहिये।

न्या० बैचलर—मुख्य प्रश्न यह है कि सरकारके विरुद्ध अप्रीति तिलकजीकी प्रयुक्त की हुई भाषासे उत्पन्न हो सकती है कि नहीं?

बै० जिना—जिन लोगोंके हाथमें सत्ता है उनका बर्त्ताव हमारे साथ न्यायानुकूल नहीं है यह हमारी शिकायत है। क्या यह राजद्रोह होसकता है? ऐसा कहनेसे सरकारके विरुद्ध अप्रीति कैसे उत्पन्न होगी? राजद्रोह होनेके लिये श्रोता लोगोंके मनपर कुछ विपरीत परिणाम होना आवश्यक है। इस प्रकारकी शिकायतसे अनिष्ट परिणाम क्या होगा?

न्या० बैचलर—श्रोता लोगोंमें मराठी किसान बहुत से थे और श्री० तिलकजीके व्याख्यानसे इस वर्गके दिलोंपर सरकारके विषय प्रीति नहीं उत्पन्न होगी?

बै० जिना—मेरी रायमें यद्यपि श्रोता लोग बुद्धिमान नहीं थे तो निर्बुद्धि तो अवश्य नहीं थे। अधिकसे अधिक वे "आजकलकी राज्यपद्धति हानिकारक है इसलिये उसमें परिवर्त्तन करना चाहिये" इतना ही श्री० तिलकजी-के कथनका अर्थ समझे होंगे।

न्या० शहा—"गवर्नमेन्ट" शब्दके लिये मूलमें कौनसा शब्द है? "सरकार" है?

बै० जिना—जी हां। पर तहसीलदारोंको भी सरकार कहते हुए मैंने सुना है। यहांपर सरकारका ठीक अर्थ "राज्यपद्धति (Administration) है। ब्युरॉक्रसीके लिये तो ठीक ठीक मराठी शब्द ही नहीं है।

बे० जिना—छोटे कोर्टमें " पेट दुखता है " इन शब्दोंके लिये फरियादी पक्षने बहुत कुछ कहा था।

बे० जार्डिन–पर अब उन शब्दों पर हमारा जोर नहीं है।

बे० जिना—'सरकार' शब्दका अनुवाद जहां तहां "गवर्नमेन्ट" किया गया है, पर उन सब स्थानों पर "अव्यक्त सरकार" या " नियम प्रस्थापित सरकार " से अभिप्राय नहीं है। पर ब्युरॉक्रसीसे अभिप्राय है यह अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये। 'विदेशी' शब्दका प्रयोग " नियम प्रस्थापित सरकार " के विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करनेके लिये तो बिलकुल प्रयुक्त नहीं किया गया।

श्री० तिलकजीने अपना उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट करके दिखलाया है। किसी समझदार व्यक्तिके हृदयमें इन तीनों व्याख्यानोंको एक साथ पढ़ने पर सरकारके विरुद्ध अप्रीति कभी उत्पन्न नहीं होगी। इसलिये ये व्याख्यान दफा १२४ अ–के अनुसार राजद्रोह युक्त नहीं हो सकते। अब हमलोग तीसरा व्याख्यान देखें।

(तब कोर्ट जलपानके लिये उठगया)

जलपानके पश्चात्।

बे० जिना—"सरकार विदेशी है" इसका स्पष्टीकरण मैंने किया है, तोभी वह आपकी समझमें अच्छी प्रकार आया है कि नहीं यह मुझको मालूम नहीं। श्री० तिलकजी ने जाति, धर्म या वर्णके कारण होनेवाले विदेशीयत्व पर जोर मत दीजिये, ऐसा बारबार चिताया है। उनके मत के अनुसार जब दोनोंके हितोंमें विरोध आता है तब विदेशीयत्व भेद उत्पन्न होता है। उदाहरणके लिये स्वदेशी

उद्योग धन्धोंकी बात लीजिये। श्री० तिलकजीने Excise duty का उदाहरण लिया है और वे कहते हैं कि उतनी-ही बातमें उनके और हमारे हितमें विरोध उत्पन्न होता है, इसलिये उतनी बातके सम्बन्धमें सरकार विदेशी है, यह मैं कहता हूँ। इस प्रश्नका मेरा पूर्ण उत्तर यह है कि अनुवादकने 'सरकार' मराठी शब्दके लिये 'नियम प्रस्थापित सरकार' शब्द रक्खा है। असलमें आप सब व्याख्यान पढ़ जायेंगे तो आपको यह ज्ञात होगा कि श्री० तिलकजीका आक्षेप अधिकारी वर्ग पर है, सरकार पर नहीं।

तीसरे व्याख्यानमें आए हुए 'पशु' शब्दके विषयमें छोटे कोर्टमें बहुत चर्चा हुई थी। उस विषयमें मेरा यह कहना है कि "पशुवत् रखते हैं" यह कहनेका श्री० तिलकजीका हेतु नहीं था किन्तु अन्य राष्ट्रोंकी नाईं हमारे राष्ट्रकी भावना तथा आकांक्षाओंको भी योग्य सन्मान प्राप्त हो इतना ही है। "पशुवत्" रोजके व्यवहारका शब्द है और इसका शाब्दिक अर्थ न लेकर भावार्थ लेना ही ठीक है। छोटे कोर्टमें तोतेके किस्से पर भी आक्षेप किया गया है।

बे० जार्डिन—यहांपर हमलोग वह आक्षेप नहीं लेना चाहते।

आगे बे० जिनाने तीसरे व्याख्यानका बहुतसा भाग पढ़कर सुनाया और कहा कि सब व्याख्यानमें श्री० तिलकजीका अभिप्राय "सरकार चाहिए पर आजकलकी राज्य-पद्धति नहीं चाहिए" इतना ही था। राज्य चलानेवाले अधिकारी आज हमलोगोंके उत्तरदाता नहीं हैं, उनको वैसा होजाना चाहिए यह श्री० तिलकजीका कथन है। उसी प्रकार राज्यपद्धतिमें जो यह परिवर्तन कराना है "वह

पार्लियामेन्टसे प्रार्थना करके अर्थात् पूर्ण नियमानुकूल उपायोंसे करना है।" यह भी श्री० तिलकजीने स्थान २ पर कहा है। इसप्रकारके व्याख्यानोंका श्रोतालोगोंपर कुछ विपरीत परिणाम होगा, यह मैं नहीं समझता। मेरी शिकायतका सार यही है कि राज्यपद्धतिके एक विशेष अंग पर अर्थात् सिविलसर्विस पर श्री० तिलकजीने टीका की है और इसप्रकारकी टीका दफा १२४अ-के नीचे किस प्रकार आसकती है यह समझना बहुत कठिन है। होम-रूल लीग एक उत्तम संस्था है और उसके सभासद होकर आजकलकी राज्यपद्धति बदलनेकी कोशिश लोग करें इस प्रकारका श्री० तिलकजीका उपदेश है। इसमें आक्षेप योग्य क्या है और इसका श्रोतालोगोंके दिल पर दुष्परिणाम किस प्रकार होजाता यह मेरी समझमें नहीं आता। मेजि-स्ट्रेट साहबने अपने हुकुममें कहा है कि श्री० तिलकजीका श्रोतावर्ग अज्ञान था। श्री० तिलकजीका श्रोतावर्ग बड़ा पंडित था यह मेरा भी कहना नहीं है, परन्तु यह बिलकुल अप्रबुद्ध, अनारी—था, यह कहना भी ठीक नहीं होगा।

न्या० बैचलर—श्रोतावर्गमें मराठ कृषक न थे?

बै० जिना—मेजिस्ट्रेट साहेबके सामने इस प्रकारका सबूत आया है कि श्रोतालोगोंमें व्यापारी, धन्धेवाले आदि सब जातियों तथा श्रेणियोंके लोग थे। मैं फिरसे कहत हूं कि श्री० तिलकजीके श्रोतालोग तीक्ष्ण बुद्धिवाले न हों परन्तु उनको बिलकुल अनारी कहना ठीक नहीं है। श्री० तिलकजी कुछ अपनी जिह्वा थकानेके लिये व्याख्यान नहीं दे रहे थे। मेजिस्ट्रेट साहेबने अपने हुकुममें कहा है कि श्री० तिलकजीने स्थान स्थान पर 'ब्युरॉ-

क्रसी' अंग्रेजी शब्दका प्रयोग किया है परन्तु सब प्रकरण ध्यानमें लाया जाय तो गवर्नर जनरलसे लेकर पुलिस कान्स्टेबल तक सारे अधिकारियोंपर तथा सारी राज्य-पद्धतिपर उनका आक्षेप है। इस विषयमें यदि न्याय मूर्ति सब व्याख्यान एक साथ पढ़के उसका सारांश ध्यानमें लायेंगे तो श्री० तिलकजीकी टीका सिविलसर्विस पर है, और प्रचलित राज्यपद्धति बदलवाना ही उनका उद्देश्य है, यह आप लोगोंको निश्चय हो जायगा। और इसलिये श्री० तिलकजीने कुछ भी अपराध नहीं किया है, यह मेरा कथन है।

इसके बाद सरकारकी ओरसे एड्वोकेट जनरल बोलने-के लिये खड़े हुए।

एड्वोकेट जनरल मि० जार्डिनका उत्तर।

"नियम प्रस्थापित सरकार" शब्दों पर मि० जिनाने बहुत शास्त्रार्थ किया है। इस सरकारके माने सम्राट् और पार्लियामेन्ट है, यह अर्थ ठीक नहीं। न्या० स्ट्रेचीने इन शब्दोंका अर्थ स्पष्ट किया है। फुलबेञ्चके आगे यह प्रश्न उस समय गया था।

न्या० शाह—'सरकार' और 'नियम प्रस्थापित सरकार' इस विषयका वाद उस अभियोगमें मामूली था ऐसा फुलबेञ्चने ही कहा न था?

मि० जार्डिन—जी हां।

न्या० बेचलर—सरकारके काम गुमाश्तोंके ही द्वारा होते रहते हैं। जंगल विभाग, पुलिस विभाग अथवा मैं स्वयं जिस दुर्दैवी ब्युरॉक्रसीमेंसे हूं वह ब्युरॉक्रसी यह सब

गुमाश्ते ही हैं। इन गुमाश्तोंके विरुद्ध किस प्रकारसे टीका की है यही विचारका प्रश्न है। यह प्रश्न कानूनका नहीं है वस्तुस्थितिका है।

मि० जार्डिन—कार्य्यके अधिकार जिनपर सौंपे रहते हैं वे अधिकारी ही सरकार हैं, यह मेरा कथन है।

न्या० शाह—हमलोग एकआध स्पष्ट उदाहरण लें। जंगल विभाग या सिविलसर्विस पर टीका की गई है ऐसा आप मान लीजिये। तो क्या अब आप यह कहेंगे कि ऐसी टीका भी सरकारपरकी ही टीका है?

मि० जार्डिन—जीहां, मैं बराबर यही कहूंगा।

इसके बाद श्री. तिलकजीके व्याख्यानोंमेंसे कतिपय विभाग मि० जार्डिनने पढ़कर सुनाए और कहा कि सरकार और ब्युरॉक्रसी इनमें अपनी आवश्यकताके अनुसार श्री. तिलकजीने भेद किया है। श्री तिलकजीने सरकारको विदेशी कहा है और इसीलिये सरकार लोगोंकी हितशत्रु है, यह उनका कथन है। जिन आशाओंको तृप्तकरनेका सरकारका इरादा नहीं है ऐसी आशाएं सरकार लोगोंको झूठमूठ देती है। इसप्रकारका भी उनका आरोप है। और कम्पनी सरकार की नई सरकारका केवल रुपया बटोरनेका क्रम अब भी जारी है; ऐसा वह कहते हैं। लोगोंकी गुलामगिरीका उन्होंने अनेकवार उल्लेख किया है। फिर अनुभवी तहसीलदार पर नया सिविलियन भी कैसा अमल चलाता है इस विषयका वाक्य मि० जार्डिनने पढ़कर सुनाया।

न्या० बैचलर—यह तो यथार्थ टीका है।

मि० जार्डिन—निस्वार्थ बुद्धिके साथ राज्यप्रबन्ध नहीं

चलाया जारहा है इस प्रकारकी स्पष्ट सूचना भी. ति
करते हैं। मैं कहता हूं कि इस प्रकारकी टीकासे श्रोत
हृदयमें सरकारके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न हो ही जायग

न्या० बैचलर्—कोई टीका कीजिये उससे जिसप
की है उसके विषयमें थोड़ीसी अप्रीति तो उत्पन्न
जायगी। प्रश्न इतनाही है कि क्या सचमुच सर
विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न होगई है ? मानलीजिये कि
में व्याख्यानके समय उपस्थित थे। सरकार इस समय व
है उससे अधिक उसको करना चाहिये यही बोध सम
श्रोतालोगोंको व्याख्यान सुनकर होगा या नहीं ?

न्या० शाह—लेख लिखनेवालेको जैसा विचा
लिखनेका अवसर मिलता है वैसा बोलनेवालेको
मिलता। यह बात ध्यानमें लाकर वक्ताके व्याख्यानव
कुछ सौम्यदृष्टिसे देखना चाहिये न ? हां वक्ता
कानूनकी मर्य्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

न्या० बैचलर—वक्ताकी ओर कुछ भी कृपादृष्टि न
लाई जाय, ऐसा यह कह सकते है ?

उसके बाद वक्ताके हेतुके विषयमें मि० जार्डिनने
कि, दफा १०८ के अनुसार चलाये हुये अभियोगमें
विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। मेजि
इसका विचारही नहीं करना चाहिये।

न्या० बैचलर—वक्ताके व्याख्यानका परिणाम यदि
उत्पन्न करनेवाला होगा तब तो यह सच है कि यह
काम नहीं चलेगा कि मेरा वह उद्देश्य नहीं था।

बै० जिनाने प्रत्युत्तरमें कहा कि श्री० तिलकजीने आक्षिप्त व्याख्यानोंमें केवल ब्युरॉक्रसीपर टीका की है। दफा १२४ अ, या दफा १५३ अ-के अनुसार यदि अपराध उनके ऊपर सिद्ध होने योग्य न हो तो दफा १०८ का कुछ उपयोग ही नहीं होगा। बिना हेतुके राजद्रोह नहीं होता यह इङ्गलैण्ड का कानून है।

न्या० बैचलर—पर क्या हिन्दुस्तानमें भी ऐसाही कायदा है?

बै० जिना—मेरे मतमें तो ऐसाही है। दफा १२४ अ-का मूलभूत जो तत्व है उसके विरुद्ध नहीं जासकते।

पश्चात् न्यायमूर्त्तियोंने कहा कि कल फैसला सुनायेंगे।

माननीय न्यायमूर्त्तियोंका निर्णय।

गुरुवार ताः ६ नवम्बर १९१६ को दिनके ११॥ बजे न्यायमूर्त्ति अपने अपने स्थान पर बैठे। फैसला सुननेके लिये कोर्टमें बहुत भीड़ हुई थी। कोर्टके बाहरकी गैलरीमें भी लोगोंकी बहुत भीड़ थी। पहिले न्या० बैचलरने अपना निर्णय इसप्रकार सुनाया।

न्यायमूर्त्ति बैचलरका निर्णय।

पूनेके डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेटने दफा १०८ और उसके आगेकी दफाओंके अनुसार एक वर्ष पर्यन्त सदाचार रखनेके निमित्त १००००, १०००० की दो जमानतें और २०००० का मुचलका देनेके लिये श्री० बाल गंगाधर तिलकको जो हुकुम दिया था उसकी जांच, यह कोर्ट करे इस विषयकी यह प्रार्थना है। अभियोगमें दाखिल किये हुये तीन व्याख्यानोंके द्वारा श्री० तिलकने राजद्रोहका प्रसार किया, यह विद्वान

मेजिस्ट्रेटका मत होगया इसलिये उन्होंने यह हुकुम दिया। आक्षिप्त व्याख्यान श्री० तिलकजीने दिये हैं यह वे स्वयं स्वीकार करते हैं। वे मराठीमें दिये गये हैं। उनके अनुवाद हमारे संमुख हैं। अनुवाद सारतः ठीक है यह प्रतिवादीने भी मान लिया है परन्तु अनुवादमें कहीं कहीं अधिक कड़े शब्दोंका प्रयोग किया गया है, यह उनकी शिकायत है। अनुवादमें कहीं कहीं इस प्रकारके कड़े शब्दोंका प्रयोग हुआ भी हो तोभी उतनेसे अर्थमें कुछ बहुत अन्तर हो जायगा, यह मैं नहीं समझता। तब निर्णय करनेका मुख्य प्रश्न इतनाही है कि प्रार्थीने इन ३ व्याख्यानोंके द्वारा पिनल कोडकी दफा १२४ अ—के अनुसार हिन्दुस्तानमें नियम प्रस्थापित सरकारके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न की या करनेका प्रयत्न किया या नहीं। मेरे मतमें इस प्रार्थनाका विचार करते समय सचमुच कानूनके किसी प्रश्नका निर्णय करनेकी हमको आवश्यकता नहीं है। तोभी " अप्रीति माने प्रीतिका अभाव " यह २२ बम्बई पृष्ठ ११२ परका न्या० स्ट्रेचीका किया हुआ अप्रीतिका लक्षण ठीक है, यह जो गलत विचार मेजिस्ट्रेट साहबने कर लिया है वह कानूनकी दृष्टिसे गलत है यह साफ कहना पड़ता है। इस गलत ख्यालका परिणाम उनके दिये हुकुमपर हुआ है कि नहीं यह मैं नहीं कह सकता; पर उसका परिणाम होना सम्भव है। मेजिस्ट्रेट साहबने 'अप्रीति' का जो अर्थ किया है वह अंग्रेजी भाषामें dis उपसर्ग युक्त शब्दोंका अर्थ करनेकी हमेशाकी पद्धतिके विरुद्ध है। dis उपसर्गका इस प्रकारका अर्थ करनेकी रूढ़ी नहीं है। अरुचि (Dislike) माने चाह (liking) का अभाव अथवा अरुचि (Disgust) माने रुची (taste) का अभाव इतनाही

केवल अर्थ नहीं है। न्या० स्ट्रेचीका निर्णय जब फुलबेंचके सामने गया तब उन्होंने यह भेद स्पष्ट किया था। दफा १२४ अ. में आजकल जो खुलासा जोड़ा गया है उससे तो इस विषयमें कोई शंका नहीं रह जाती। और वर्तमान अभियोगमें घटने वाला कानून मेरी रायमें निर्विवाद है। प्रतिवादीकी ओरसे जो और एक दो आक्षेप किये गये थे उनके विषयमें मुझको अधिक विस्तार न करके थोड़ेसेमें कहना है; क्योंकि मेरे मतमें उनमें कुछ भी अर्थ नहीं है।

प्रतिवादीकी पहिली बात यह थी कि सम्राट् तथा पार्लियामेन्टके लिये अपनी राजनिष्ठा प्रार्थीने स्पष्ट शब्दोंमें तथा हार्दिकताके साथ उक्त व्याख्यानोंमें प्रगट की है; इसलिये उनसे राजद्रोह फैलना शक्य नहीं है। इसपर मेरा कहना यह है कि राजा और पार्लियामेन्टके लिये कितनी ही हार्दिक राजनिष्ठा रहे तोभी दफा १२४ अ. के अनुसार हिन्दुस्तानमें 'नियम प्रस्थापित सरकार' के विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करनेके आरोपके उत्तरमें नहीं हो सकती। प्रतिवादी पक्षकी दूसरी बात यह थी कि व्याख्यानोंकी टीका "नियम प्रस्थापित सरकार" के विरुद्ध नहीं थी केवल सिविलसर्विसके विरुद्ध थी, इसलिये दफा १२४ अ-नहीं लग सकती। मैं समझता हूँ कि असल बात केवल इतनी ही नहीं थी और तोभी वैसा मान लिया जाय तो उससे अभिप्राय बिलकुल निर्मूल नहीं होसकता; क्योंकि भारतवर्षमें 'नियम प्रस्थापित सरकार' मनुष्योंके ही द्वारा काम चलाती है और शान्तिके समय राज्यव्यवस्था देखनेवाली सिविलसर्विस सरकारकी विशिष्ट एजेन्सी है, यह बात निर्विवाद है। इसलिये इस प्रकारके व्याख्यानोंसे जिस समय सारी सिविलसर्विसपर

टीका करनेकी हो, उस समय बोलनेवाला सरकारके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करता है या नहीं यह प्रश्न मेरे मतमें कानूनी नहीं है। प्रत्युत सबूत द्वारा सिद्ध होनेवाली वस्तुस्थितिका प्रश्न है। सिविलसर्विसपर टीका करते समय मर्यादिक तथा योग्य भाषाका उपयोग करनेसे सरकारके विरुद्ध अप्रीति होनेकी सम्भावना टल जायगी।

मेरी रायमें सब व्याख्यानों पर विचार एक साथ ही करना चाहिये। सरकार और अभियुक्तके अनुकूल क्या होगा इस दृष्टिसे या इधर उधरके कुछ शब्द या वाक्य लेकर क्या अर्थ होता है यह देखना ठीक नहीं होगा। उनका समष्टि रूपसे श्रोतालोगोंके दिलोंपर क्या परिणाम होगा यही खास करके देखना चाहिये। इस प्रकार विचार करनेसे ये व्याख्यान दफा १२४ अ-के नीचे आ जाते हैं कि नहीं यही मुख्य प्रश्न है।

व्याख्यान देनेमें श्री० तिलकजीका हेतु क्या था इसका विचार करनेसे यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि उनमें स्वराज्य की मांग की गई है और भारतीय राज्यप्रबन्ध पर भारतीय लोगोंका दबाव रहे और राजकीय सत्ताका अंश दिन दिन धीरे २ परन्तु अधिक अधिक भारतवासियोंको प्राप्त हो यह उनका कहना है। मेरे मतमें इतनी ही मांग मांगनेमें कुछ भी नियम विरुद्ध नहीं है और उसके विरुद्ध सरकारकी ओर से एक अक्षर भी नहीं कहा गया है। मुझको इस स्थान पर यह कह देना चाहिये कि मैं जो विचार कर रहा हूं वह केवल इसी अभियोगके विषयमें है। स्वराज्य शब्दके अर्थ भिन्न भिन्न वक्ताओंके मुखसे भिन्न भिन्न हो सकते हैं और वे सब ही कानूनकी दृष्टिसे ग्राह्य हो जायंगे यह बात

भी नहीं है। इसलिये मैंने जो बात ऊपर कही है वह कोर्ट के संमुख जो व्याख्यान उपस्थित है और उनमें जो स्वराज्य है उस स्वराज्यके विषयमें है; यह ध्यानमें रखना चाहिये।

अब वक्ताने इस विषयमें किस प्रकारकी भाषाका प्रयोग किया है और अपने ध्येयके सिद्ध्यर्थ कौनसे उपायों का अवलम्बन करनेको वह कहता है यह देखना चाहिये। मेरा कहना राजद्रोह युक्त नहीं है यह उसने अनेक बार स्पष्ट कहा है; परन्तु खाली इस प्रकार कहना ही पर्य्याप्त नहीं है। परन्तु वक्ता वैसा कहता है इसको भी अन्य बातोंके साथ ही ध्यानमें रखना चाहिये। और स्वयं निर्विकार मनसे व्याख्यान पढ़ने पर मुझको यह प्रतीत होता है कि अपने पर आने वाले राजद्रोहके अभियोगका उनका किया हुआ निषेध छलपूर्ण या कृत्रिम नहीं है। अपराध सिद्ध होनेके लिये राजद्रोह करनेका हेतु सिद्ध होजाना चाहिये। अपने कृत्यको स्वाभाविक तथा सरल परिणाम होजाय यह कृत्य करने वालेका हेतु रहता है यही माननेकी अदालत में रूढ़ी है। अदालतकी इस रूढ़ीका अनुसरण करते हुए श्री० तिलकजी का हेतु व्याख्यानोंमें क्या है यह देखना चाहिए। व्याख्यानोंके कतिपय वाक्यों पर फरियादी पक्षकी की हुई टीका ठीक है। बहुत स्थानों पर इन व्याख्यानोंकी भाषा व्यक्ति द्वेष्या चुभने वाली या अपमान कारक है। पर उससे अधिकसे अधिक "वक्ता सद अभिरुचि प्रिय नहीं है अथवा क्रोधी है" इतनाही सिद्ध होता है। उससे फौजदारी कानूनका भंग होता है, यह मै नहीं समझता। व्याख्यानोंके सूचित उपायोंमें अथवा प्रयुक्त भाषामें क्या कोई ऐसी बात है जिससे वक्ता पिनल कोडकी दफाओंके नीचे लाया जा सके, यह

देखना चाहिये। श्रोताओंके दिलपर व्याख्यानोंका परिणाम क्या हो सकता है, इसी पर से वह निश्चित करना है, और दफा १२४ अ॰ में कही हुई अप्रीति व्याख्यानोंसे फैल जायगी अथवा कानूनसे असम्मत न रहने वाली केवल नाराज़गी फैलेगी यह मुख्यतया देखना है। हमारे संमुख उभयपक्षोंने जो वाद किये हैं उनसे आक्षेपार्ह व्याख्यानोंका सच्चा अर्थ समझनेमें बहुतसी सहायता हुई है, परन्तु इन वातोंमें प्रत्येक पक्षका विवक्षित वाक्यों परही जोर रहता है यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये। और हमारा हेतु तो सारे व्याख्यानोंका परिणाम क्या हो सकता है यही देखनेका है। दोनों पक्षोंके वादोंमें जो मुख्य बातें थीं उनको स्मरणमें रखकर तथा राजकीय इच्छा अज्ञान श्रोताओंके संमुख ये व्याख्यान दिये गये हैं, यह बात ध्यानमें रखकर शान्तिके साथ विचार पूर्वक श्री. तिलकजीके तीनों व्याख्यान प्रारम्भसे अन्त तक पढ़ लिये जायं तो उनका वास्तविक परिणाम श्रोताओं पर क्या होना चाहिये यह सहज ध्यानमें आजायगा यह मेरा मत है। उक्त व्याख्यान एक बार दो बार नहीं पर अनके बार उक्त रीतिके साथ मैंने पढ़ लिये हैं और उनसे मरा विचार यह हो गया है कि फरियादी पक्षके आक्षेप किये हुये कुछ वाक्योंको छोड़कर बाकी व्याख्यानोंको सुनकर श्रोता लोगोंके हृदयोंमें सरकारके विरुद्ध अप्रीति, द्वेष, अथवा शत्रुत्व स्वाभाविकतया उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। जिसको "जनता" (people) कहते हैं उसके हाथमें राजकीय सत्ता न देनेके लिये अधिकसे अधिक श्रोताओंके दिलोंमें सरकारके लिये नाराजगी उत्पन्न होगी। तीनों व्याख्यानोंके छपे हुये पृष्ठ १४ हैं, इसलिये वे सब यहां देना

शक्य नहीं है। व्याख्यानोंका समष्टिरूपसे क्या परिणाम होगा यह इसी बातसे मैं निर्णय करने वाला हूँ; तोभी आधारके लिये कुछ विशिष्ट भाग बतादेना आवश्यक है। स्वराज्यके विषयमें श्री० तिलकजी क्या कहते हैं यह उन्हींके शब्दोंमें अग्रिम भागसे स्पष्ट हो जायगा।

"पर विदेशी लोगोंका किया हुआ प्रबन्ध चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो तोभी जो लोग यह प्रबन्ध करनेके वास्तविक अधिकारी होते हैं, उनको यह बात नहीं है कि सदा यह प्रबन्ध पसन्द ही हो। स्वराज्यका यही तत्व है। आपलोगों को अपना कलेक्टर चुन लेनेका अधिकार मिल गया तो वह कलेक्टर आजकलके कलेक्टरोंकी अपेक्षा कुछ अधिक काम करेगा ही यह नहीं कह सकते। सम्भव है कि न करे, बुरा भी करे, मैं यह मानता हूँ ....तात्पर्य यह कि अपना प्रबन्ध अपने हाथमें रहना चाहिये, यह जो मांग है यह स्वराज्यकी मांग है.......... इस प्रकार यदि आपलोग पांच पचास साल करें तो उसका फल हुए बिना कभी नहीं रहेगा।"

यह भाग बहुत महत्वका है, क्योंकि इससे जिन राजकीय सुधारोंको श्री० तिलकजी चाहते हैं, वे एकाएक पलमें पड़ जायंगे अथवा लेखनीके एक फटकारके साथ मिल जायंगे ऐसी उनकी अपेक्षा नहीं है, यह स्पष्ट हो जाता है। दूसरे स्थानपर वे कहते हैं।

"वे अधिकार लोगोंको दीजिये, और लोग अपने २ घर की व्यवस्था ठीक प्रकारसे देखने लग जायंगे। इसप्रकार का स्वराज्य हमलोग मांगते है। "अंग्रेज सरकारको निकाल दो, सम्राट्की सत्ता उठा दो, और हमारी एकमात्र

रियासतकी सत्ता उसके स्थानपर संस्थापित करें" यह इस स्वराज्यका अर्थ नहीं है..............जो बातें व्यवहार की, व्यापारकी, धर्मकी या समाजकी हैं वे बातें हमलोगों को अपने आप करनी चाहिये। इन बातोंको करनेकी सत्ता हमारे हाथमें कुछ अंशोंमें न आवेगी तो—अन्तमें सम्पूर्ण हमारे हाथमें आनी चाहिए—तो हमलोग किसी प्रकारसे बुद्धिमान्, भाग्यवान्, लाभवान्, और उत्कर्षवान् होनेका अवसर नहीं पासकेंगे। लोगोंके मुँहसे पानी तो नहीं पी सकते। वह खुद ही पीना पड़ता है...... .... इसलिये आपलोगोंको यदि कुछ करना है तो पहिला कर्त्तव्य यह है कि इस सत्तामेंसे कुछ अंश आप अपने हाथमें लीजिये, फिर आप थोड़ी सी ही क्यों न लीजिये.......... राजा दूसरा नहीं चाहिये, पर ये जो अधिकार आपके हाथोंसे गये हैं, और उसके कारण आपकी जो अनाथ बालकोंकी तरह स्थिति हो रही है; इस सत्ताका कुछ भाग हमारे अधीन भी कीजिए।"

राजकीय मांगकी दृष्टिसे मुझको इन बातोंका विचार नहीं करना है और न मैं यह करना ही चाहता हूँ।

ऐसी मांगको बतलाते समय श्री० तिलकजीने क्या कानून भंग किया है इतना ही मुझको जजकी हैसियतसे देखना है। ध्येय किन किन उपायोंसे प्राप्त करना है इसपर श्री० तिलकजीके विचार जिनसे स्पष्ट हो जांय ऐसे ५ भाग मैंने चुनके निकाले हैं और वे आगे दिये गये हैं।

"अंग्रेजलोगोंके ही अधिष्ठातृत्वमें, इंग्लिशराष्ट्रके निरीक्षकत्वमें, इंग्लिशराष्ट्रकी सहायतासे, उनलोगोंकी सहानुभूतिसे, उनलोगोंकी हार्दिक लगनसे तथा उनकी जो कुछ उच्च

भावनायें हैं उनके द्वारा हमलोगों को अपना हित कर लेना चाहिये, यह बात निश्चित है.........................

इसप्रकारसे अब अच्छी व्यवस्था मांगनी है। वर्तमान कानूनमें सुधार कराना है, और वह पार्लियामेन्ट द्वारा कराना है। दूसरोंसे हमलोग नहीं मांगेंगे। फ्रांस देश से प्रार्थनाकरके इसकी प्राप्ति नहीं करनी है। Allies (मित्रदल) हुए तो भी (क्या हुआ उनसे प्रार्थना नहीं करनी है।) अंग्रेजलोगोंसे और अंग्रेज पार्लियामेन्टसे प्रार्थना करनी है.... ....आजकल योरपखण्डमें जो युद्ध होरहा है उस युद्धसे अब यह मालूम पड़ने लगा है कि अंग्रेजी साम्राज्यके जो अनेक प्रान्त हैं उन सबके बिना एकत्र हुए इस साम्राज्यमें जितनी शक्ति आनी ही चाहिये उतनी शक्ति नहीं आवेगी। आजकल लोगोंकी यह भावना हो गई है कि उनके जो दूसरे देश हैं—आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड, जहां साहेब लोगोंकी बस्ती है और जिनको उपनिवेश कहते हैं—उनकी मदद हमको चाहिये। इस जागृत बुद्धिसे यदि आपलोग लाभ उठाना चाहें तो आप लोगोंको भी कुछ अधिकार प्राप्त होनेका अवसर आया है। आपलोगोंसे कोई यह नहीं कहता कि यह अधिकार तलवार के हाथसे प्राप्त करने है। आजकल तो राष्ट्रकी बुद्धि बदल गई है। हिन्दुस्तानसे इङ्गलैण्डको कुछ मदद मिल सकती है, हिन्दुस्तान यदि सुखी रहेगा तो इङ्गलैण्डको एक प्रकार का वैभव, एक प्रकारकी शक्ति, एक प्रकारका गौरव प्राप्त होगा, यह बुद्धि इङ्गलैण्डमें जागृत हुई है।...............

इस युद्धके समाप्त होनेके पश्चात् राज्यव्यवस्था कुछ भिन्न प्रकारकी करनी पड़ेगी..............मुझको आपलोगोंमेंसे

किसीसे यह नहीं कहना है कि यह अधिकार प्राप्त करने के लिये नियम विरुद्ध बातें करिये। आपके लिये न्याया-नुमोदित मार्ग खुला है।

ये भाग वक्ताका हेतु समझनेके लिये पर्य्याप्त है। उनमें कुछ भी नियमाविरुद्ध नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि यह भी वक्ताने बिलकुल स्पष्ट और जोर देकर कहा है कि जो राजकीय सुधार होने चाहिये वे सुधार नियमानुकूल तथा सुव्यवस्थित (Constitutional) उपायोंके द्वारा ही कराने है उसके दिये हुये सब कारणोंका मैं यहां पर निर्देश नहीं करता, पर उसके विरुद्ध साधारणतया नियमविरुद्धताका आक्षेप लाया जा सकता है, यह मै नहीं समझता। एक कारण इस प्रकार कहा गया है कि देशी रियासतोंका प्रबन्ध देशी अधिकारी अच्छी तरह कर रहे हैं। बृटिश प्रान्तोंमें बृटिश अधिकारियोंको बहुत ज्यादा वेतन दिया जाता है। हिन्दुस्तानी लोगोंको वादाविवाद करनेका यद्यपि स्वातन्त्र्य है तोभी राजकीय नीति अथवा कोषपर उनकी कुछ भी सत्ता नहीं है। आजकलके अधिकारी वस्तुतः विदेशी जातिके हैं और वे निपुण तथा उद्योगी होते हैं, तोभी उनको यह अच्छी प्रकार मालूम नहीं होता कि लोगों का किस बातकी तकलीफ है।

यह कहना राजकीय दृष्टया बुद्धिमानीका या मूर्खताका होगा. मुझको उससे कुछ मतलब नहीं। यह यथार्थ टीका है, दफा १२४ अ. के नीचे दोषयुक्त निश्चित होने लायक नहीं है, इतना तो मैं अवश्य कह सकता हूं। इस प्रकारकी बातें ३ व्याख्यानोंमें बहुतसी आई हैं, और इन सबके आधार पर बोलनेवालेका हेतु निश्चित करना चाहिये। प्रार्थीके

विषयमें ठीक बात तो यह है उसके व्याख्यानोंमें "सरकारके केवल दोषही दिखलाये गये हैं, यह बात नहीं है। ३१ मईकी वक्तृतामें एक स्थानपर वह कहता है।

" ये बातें अंग्रेज सरकारने नहीं की हैं यह मेरा कहना नहीं है ; परन्तु जितनी की हैं उतनी पर्य्याप्त नहीं हैं। ये बातें की हैं, अच्छी की हैं, पहिली सरकार करती, उससे भी अंग्रेज सरकारने अधिक अच्छे प्रकारसे की है, यह उनके लिये भूषण है; पर जो बातें सरकार नहीं करती है उन बातोंको करनेके लिये हमलोग उनसे न कहें ?"

इतनेही पर सब समाप्त होता तो सरकार को अभियोग चलानेके लिये आधार मिलनाही कठिन होजाता ; परन्तु दैववशात् व्याख्यानोंमें दो तीन वाक्य ऐसे हैं जिनके समर्थनमें कुछ भी नहीं कहा जासकता। श्री. तिलकजीके विद्वान् बेरिस्टरोंने भी उन वाक्योंका समर्थन नहीं किया और इतने ही वाक्योंके आधार पर यदि मुझको निर्णय करना होता या मैं यह समझता कि, वक्ताका सच्चा हेतु उनमें प्रसिद्ध होगया है तो मैं मेजिस्ट्रेटका हुकुम कायम रखता और उसको मै कम नहीं करता। इन वाक्योंको यहां उद्धृतकरके उनको अधिक प्रसिद्ध करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। पहले व्याख्यानमें 'गुलामगीरीके विषयमें जिसमें उल्लेख आया है वह वाक्य, और दूसरे व्याख्यानमें सरकार विदेशी तथा स्वार्थैकदृष्टि है इस विषयका उल्लेख जिसमें है वह वाक्य, इस प्रकारके वाक्योंके अंतर्गत हैं। पर इतने ही वाक्योंसे मेजिस्ट्रेटका हुकुम न्याय्य नहीं माना जा सकता; क्योंकि उनका पूर्व सम्बन्ध देखनेसे उनका कड़ापन कम हो जाता है; इसके अतिरिक्त सब व्याख्यानोंका समष्टिरूप परिणाम

भी उन वाक्योंसे हो सकनेवाले परिणामसे भिन्न होने वाला है यह मैंने पहिलेही कह दिया है। सारांश, दफा १२५ अ- के दूसरे या तीसरे खुलासेका अतिक्रमण करने वाली टीका प्रार्थीने की है, यह नहीं सिद्ध होता। इसलिये मेजिष्ट्रेटका हुकुम मैं रद्द करता हूं।

पश्चात् न्या० शाहने अपना निर्णय पढ़ा।

माननीय न्या० शाहका निर्णय।

पूनेके डिष्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट साहबका हुकुम रद्द होजाय इसलिये यह प्रार्थना है। क्रि० प्रो० को० दफा १०८ के अनु- सार मेजिष्ट्रेट साहबने यह हुकुम दिया है कि एक वर्ष पर्यन्त सदाचारके निमित्त २०००० का मुचलका और १००००, १०००० की दो जमानतें प्रार्थी दे। क्रि० प्रो० को० दफा १०८ के अनुसार प्रार्थीके विरुद्ध यह शिकायतकी कि, इस प्रकार का राजद्रोहयुक्त समाचार प्रार्थीने फैलाया है जो इ० पी० को० दफा १२४ अ के नीचे अपराध बन जायगा और यह प्रसार बेलगावमें ता १ मई को अहमदनगरमें ता ३१ मई और १ जूनको स्वराज्य या होमरूल विषयों पर तीन व्या- ख्यान देकर किया गया है। विद्वान डिष्ट्रिक्ट मेजिष्ट्रेट साहब के मतके अनुसार दफा १२४ अ—राजद्रोहयुक्त होजाने वाले ये ३ व्याख्यान है; इसलिये उन्होंने यह जमानत देनेका हुकुम दिया। इस प्रार्थनाके विषयमें मुख्य प्रश्न यह है कि, आक्षिप्त व्याख्यान १२४ अ—के नीचे आसकते है? स्वराज्य या होमरूल इन व्याख्यानोंका विषय है। उसके विरुद्ध वादी- का कुछ वाद नहीं है; स्वराज्य शब्द भी किसी बुरे हेतुसे वक्ताने प्रयोग किया है, यह भी उनका वाद नहीं है। हिन्दु- स्तानमें नियम प्रस्थापित सरकारके हेतु प्रामाणिक या शुद्ध

नहीं हैं ऐसी ध्वनि इन व्याख्याओंसे निकलती है इसलिये वे राजद्रोह पूर्ण हैं यह बात बादी पक्षने नीचेके तथा इस कोर्टमें प्रतिपादित की है।

"अप्रीति माने प्रीतिका अभाव" यह जो विद्वान् मेजिस्ट्रेटने अर्थ किया है वह गलत है। (इं० ला० रि० २२ बम्बई पृष्ठ १५१, १५२ देखो।) दफा १२४ अ—में जो स्पष्टीकरण आजकल जोड़ा गया है उससे भी यही बात सिद्ध होती है। ८ ला० बम्बई पृष्ठ ४३७ में न्या० बैटीने इस प्रश्नके विषयमें जो विचार प्रगट किये हैं, वे मुझको मान्य हैं।

"हिन्दुस्तानमें नियम प्रस्थापित सरकार" के माने क्या हैं, इस विषयकी हमारे संमुख बहुत चर्चा हुई। इस अभियोगके लिये ही देखा जाय तो १९१५ के गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया एक्टमें एकत्र किये हुए भिन्न भिन्न कानूनोंमें जिन जिन सरकारोंका उल्लेख है, वे सब सरकारें हिन्दुस्तानमें नियम प्रस्थापित सरकारके अन्तर्गत आजाती हैं और हिन्दुस्तानमें हर एक विभागमें सरकारका अमल चलाने वाले व्यक्तियोंका भी उसमें अन्तरभाव हो जाता है, यह मेरा मत है। ब्युरॉक्रसीपर की हुई टीका सरकार पर टीका नहीं है, यह बै० जिनाका कथन मुझको मान्य नहीं है। दफा १२४ अ- के सरकार शब्दमें भिन्न भिन्न सरकारी विभागोंका अन्तरभाव होता भी न हो या उन विभागोंके विरुद्ध की हुई टीका सरकार पर की हुई ही टीका होनी चाहिये यह भी न हो; परन्तु दफा १२४ अ- में सरकारके विरुद्ध जो मनोवृत्तियां उत्पन्न होनेका प्रतिबन्ध करनेका उद्देश्य है वे मनोवृत्तियां अनेक प्रकारोंसे उत्पन्न करनी शक्य हैं और मेरे मतमें भिन्न भिन्न विभागों पर बेकायदे

टीका करके उस प्रकारकी मनोवृत्तियां उत्पन्न करना शक्य नहीं हैं। विवक्षित विभाग परकी टीका सरकारके विरुद्ध वे मनोवृत्तियां उत्पन्न करनेके योग्य हैं या नहीं यह उस टीकाकी पद्धति, विभागके दर्जे इत्यादि पर से ठहराना होगा; अर्थात् वह प्रश्न प्रमाण द्वारा सिद्ध होने वाली वस्तु स्थितिके विचारका होगा। परन्तु कानून देखा जाय तो एक विभाग परकी टीका हिन्दुस्तानमें नियम प्रस्थापित सरकार के विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करनेवाली अर्थात् दफा १२४ अ—के अनुसार दोषयुक्त कभी नहीं होगी यह कहना गलत होजायगा।

अब श्री० तिलकजीके व्याख्यान दफा-१२४ अ-के नीचे आते हैं कि नहीं यह देखना चाहिए। सरकारके विरुद्ध बोलनेवाले को चाहिये कि, वह कभी अप्रीति उत्पन्न न करे और यह बात इसविषयमें हमेशा ध्यानमें रखना आवश्यक है। बे० जिना कहते हैं कि श्री० तिलकजीके व्याख्यानोंमें सम्राट्के लिये राजनिष्ठा बहुत स्थानोंपर प्रगट हुई है; परन्तु उससे काम चल सकता है, ऐसा मैं नहीं समझता। इसके अतिरिक्त वादीका यह वाद है कि श्री० तिलकजीने सरकारके विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न की है; सम्राट्के विरुद्ध नहीं। दफा १२४ अ-के नीचेके अभियोगके लिये सम्राट्के लिये राजनिष्ठा उत्तर नहीं हो सकती।

आक्षेपित व्याख्यान मराठीमें दिये गये हैं और वे बड़े है और कुल व्याख्यानोंका श्रोतालोगोंपर क्या परिणाम होगा, इसका विचार करके बोलनेवालेका हेतु निश्चित करना चाहिये। उन सबोंको "उदारतया, सरलतया तथा स्वतन्त्रतया" पढ़ना चाहिये, एकाध इधरका कड़ा शब्द या एकाध उधरका कड़ा वाक्य लेकर उसपर जोर नहीं देना चाहिये," कुछ टीकाकरनेकी नीयतसे उनकी ओर न देखकर पूर्वग्रह

विरहित स्वतन्त्र दृष्टिसे उनकी ओर देखना चाहिये।" प्रार्थीके लिये उदारता धारणकर अभियोगका विचार निष्पक्षता तथा निर्भीकताके साथ करना चाहिये। (R. Burns 16 case, page 352) इत्यादि तत्त्वोंको ध्यानमें रखकर मैंने इन व्याख्यानोंको पढ़ा है। इन व्याख्यानोंके देनेमें श्री० तिलकजीका हेतु होमरूलके पक्षमें लोकमतको खींचना और होमरूल लीगके लिये मेम्बर बनाना था। होमरूलका सब आन्दोलन नियमानुकूल मार्गोंसे चलाया जायगा इस विषयका व्याख्यानोंमें स्पष्ट निर्देश हुआ है। ऐसी स्थितिमें एकाध दूसरे आक्षेप योग्य वाक्यपरसे विरुद्ध तर्क निकालना ठीक नहीं होगा। गुलामगिरी तथा सरकारके विदेशीयत्वके विषयमें जो वाक्य आये हैं वे सचमुच आक्षेपार्ह हैं। सब व्याख्यान वादीपक्षको अनुकूल दृष्टिसे पढ़कर पश्चात् प्रतिवादीपक्षको जो दृष्ट्यनुकूल होगी उसके साथ पढ़के देखा है। परन्तु उनका समष्टिरूप परिणाम "नियम प्रस्थापित सरकार" के विरुद्ध अप्रीति उत्पन्न करना है, यह मैं नहीं समझता, इसलिये क्रि० प्रो० को० दफा १०८ अ-के अनुसार राजद्रोहका प्रसार इन व्याख्यानोंके द्वारा प्रार्थीने किया है, यह कहनेको मैं तैयार नहीं हूँ। कुछ वाक्य तो पूर्वापर प्रकरण ध्यानमें न लेते हुए पढ़े जांय तो वे आक्षेपार्ह हैं यह मैंने कहा ही है। परन्तु जबानी दिये हुए सम्पूर्ण व्याख्यानों में उन वाक्योंका परिणाम कुछ होने लायक नहीं है। प्रार्थीका राजद्रोह करनेका हेतु सिद्ध नहीं हुआ है, इसलिये ये व्याख्यान दफा १२४ अ-के नीचे यद्यपि न आवें तो भी मेजिस्ट्रेटको दफा १०८ के अनुसार जमानत देनेका हुकुम निकाल देने में कोई आपत्ति नहीं है, ऐसी एक बात एक ऐडवोकेट

जनरलने हमारे सामने कही थी। सीतलप्रसाद विरुद्ध किङ्ग एम्परर (इं० लॉ० रि० ४३ कलकत्ता ५०१) वाले अभियोगका हवाला भी उन्होंने दिया है; पर मेरी रायमें क्रि० प्रो० कों० दफा १०८ के अनुसार राजद्रोह प्रसार करने का हेतु प्रथम सिद्ध होजाना आवश्यक है।

उस कानूनकी भाषा स्पष्ट है और उसका उपयोग करना चाहिये। यह युक्ति यदि मान ली जाय तो दफा १०८ ही निरर्थक होजायगी, यह मैं नहीं समझता। पि० कों० दफा १२४ अ—के अनुसार प्रत्यक्ष राजद्रोह करनेकी अपेक्षा कई बार क्रि० प्रो० कों० की दफा १०८ के अनुसार जमानत लेना ही अधिक उचित होना सम्भव है; इसीलिये इस नियमके अनुसार राजद्रोहका प्रतिबन्ध करनेके लिये सरकारके हाथमें यह एक उपाय अधिक रक्खा गया है। जमानत रद्द करनेके विषयमें न्या० बैचलरने जो हुकुम दिया है वह मुझको मान्यहै।

दोनों न्यायमूर्त्तियोंके निर्णय पढ़े जानेके पश्चात् श्री० तिलकके जीका दिया हुआ मुचलका रद्द करनेको हुकुम देनेके लिये बैं० जिनाने कोर्टसे विनती की और कोर्टने उसे स्वीकार कर लिया।

फैसला सुननेके पश्चात् लोकमान्य तिलक माननीय पटेलके चेम्बरमें आकर बैठे। हाईकोर्टके हातेमें उनके दर्शनार्थ बहुत भीड़ होगई थी। चेम्बरमे उनको माला पहनाई गई और सब लोगोंमें पेड़े बांटे गये। न्या० बैचलर और न्या०शाहने हाई कोर्टकी प्रतिष्ठा कायम रक्खी, इस प्रकारकी स्तुति सब लोगोंके मुखसे सुनाई देती थी। हाई कोर्टसे जाते समय बाहर एकत्र हुए लोगोंने तालियोंके उच्चनादसे उनकी जयध्वनि कर अपना आनन्द व्यक्त करनेमें कमी नहीं की।

इति।

स्वराज्यका प्रस्ताव।

(लखनऊ कांग्रेस, ता० २९ दिसंबर १९१६)

सभापतिजी, प्रतिनिधि भाइयों, महिलाओ और सज्जनो! यहां आपने मेरा जो स्वागत किया है, उसके लिये मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ; परन्तु मुझे यह कहनेकी आज्ञा दीजिये कि, मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ कि इसे मैं अपने व्यक्तिका स्वागत समझूँ। यह वास्तवमें उन सिद्धान्तोंका आदर है जिनके लिये मैं लड़ रहा हूं। मैं जिस प्रस्तावका समर्थन करता हूँ उसमें उन सब सिद्धान्तोंका समावेश है। यह स्वराज्यका प्रस्ताव है। इसीके लिये हम लोग और कांग्रेस भी ३० वर्षसे लड़ रही है। इसका पहिला सुर १० वर्ष हुए, हुगलीके तटपर भारतके वयोवृद्ध ऋषि, बम्बईके देश-भक्त पारसी सज्जन श्रीमान् दादाभाई नौरोजीके मुखसे सुनाई दिया था। उस सुरके प्रतिध्वनित होनेके बाद मतभेद उत्पन्न हुआ। कुछ लोगोंने कहा कि, जहांतक जल्दी हो सके इसका सन्देश सारे देशवासियोंको पहुंचाया जाय और तुरन्त हमलोग इसका काम उठालें जिससे देशभरमें इसकी गूँज हो जाय। परन्तु हमीं लोगोंमें दूसरा दल भी मौजूद था जिसका मत था कि काम ऐसी जल्दी नहीं किया जा सकता और यह कि उस सुरको कुछ और धीमा करना पड़ेगा। १० वर्ष हुए मतभेदका यही कारण था। परन्तु मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि मैं यह देखनेके लिये १० वर्ष जीता रहा कि इस मंचपर हम सब फिर एक हो गये हैं और स्वराज्यकी योजनाको आगे बढ़ानेके लिये मिलकर उद्योग करनेको तैयार हैं; और न केवल यही मत-

भेद दूर हो गया है वरन् हिन्दू मुसलमानोंमें भी मतभेद अब नहीं रहा। इस प्रकार हम संयुक्तप्रान्तमें हर तरहसे संयुक्त हो गये और लखनऊमें आकर यह लाभ हुआ।

सज्जनो, कुछ लोग कहते हैं कि हम हिन्दुओंने अपने मुसलमान भाइयों को उचितसे अधिक दे डाला है। परन्तु मैं समझता हूं कि मैं यह कहते समय कुल भारतकी हिन्दू जनताका भाव प्रकाश करता हूं कि ऐसे विषयमें उचितसे अधिक देनेकी कभी सम्भावना ही नहीं है। यदि स्वराज्यके स्वत्व केवल मुसलमान जातिहीको दे दिये जांय तो मुझे परवाह न होगी। यदि वे केवल राजपूतोंको दे दिये जांय तोभी मै चिन्ता न करूँगा। यदि हिन्दुओंमें निम्नजातिके लोगोंको वे स्वत्व मिल जांय तौभी शिकायत नहीं, बशर्ते कि सरकार उनको शिक्षित भारतवासियोंसे अधिक योग्य समझती है। उस दशामें, लड़ाई हमारे आपसकी रह जायगी, न कि आजकलकी तरह 'त्रिकोण लड़ाई'। हमें इन अधिकारोंको एक शक्तिशाली ब्युरॉक्रसीसे लेने हैं जो इन अधिकारोंका छोड़ना नहीं चाहती और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि अपने हाथोंसे अधिकारोंके निकल जाने—सत्ताके निकल जानेका विचार बड़ा दुखदाई होता है मुझे भी ऐसा ही दुख होता और इसलिये मै ब्युरॉक्रेसीको इस मनोवृत्ति-के लिये दोष नहीं देता परन्तु यह मनोवृत्ति चाहे कैसी हो हो, यह अवश्य है कि हमें उससे झगड़ना होगा, यह ऐसी मनोवृत्ति है जो इस देशमें स्वराज्यके अंकुर बढ़ने न देगी। उस मनोवृत्तिके साथ हमें लड़ना है और जब हमें एक तीसरे दलसे लड़ना है तब तो यह एक बड़ी बात है। बड़े ही महत्वकी घटना है कि हम लोग

यहाँ जाति, धर्म और राजनीतिक विभिन्नताके साथ एक हुए हैं। इस समय सबसे अधिक महत्वकी यही घटना है।

१० वर्ष हुए, जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं, श्रीमान् दादाभाई नौरोजीने यह घोषित किया था कि स्वराज्य हमारा लक्ष्य होना चाहिये। उन्होंने इसका नामकरणसंस्कार कर इसे 'स्वराज्य' का पवित्र नाम दिया था।

पीछे यही 'सेल्फ-गवर्नमेंट'(स्वायत्त-शासन) या 'कन्स्टीट्यूशनल रिफार्म' (शासन-सम्बन्धी सुधार)–के नामसे पुकारा गया; और हम राष्ट्रीय दलके लोग उसे 'होमरूल' कहकर सम्बोधन करते हैं। वस्तु एकही है, नाम भिन्न भिन्न। कहते हैं कि 'स्वराज्य' शब्द हिन्दुस्तानमें बदनाम है और 'होमरूल' इंगलैंडमें, इसलिये हमें इसे 'शासन-सम्बन्धी सुधार' कहना चाहिये। मुझे नामकी चिन्ता नहीं, चाहे उसे कोई 'ए बी सी सुधार' या 'एक्स वाई ज़ेड सुधार' कहे, मैं पूर्णतः सन्तुष्ट हूं। मुझे नामकी परवा नहीं, पर मैं जानता हूं, उस सुधारके असलियतका महत्व हमलोगोंने अभी अच्छी तरह नहीं समझ लिया है। मैं बतला देना चाहता हूं कि यह आयरिश होमरूल बिलसे कई दर्जे दिलदार हैं और आप लोग जानेंगे कि इससे क्या क्या आशा की जा सकती है। यह पूरा होमरूल नहीं होगा पर प्रारंभमें कुछ अच्छा ही होगा। यह पूर्ण स्वराज्य चाहे न हो पर स्थानिक स्वराज्यसे तो अच्छा ही होगा। यह स्वराज्यकी उच्चातिउच्च कल्पना तक चाहे न पहुँचे पर स्वदेशी और बायाकाटसे बढ़कर ही होगा।

वास्तवमें पिछले ३० वर्षके समस्त कांग्रेसप्रस्तावोंका यह आधार है—यह सबका संयोजक है जो हमें निश्चित कार्य-पथपर चलनेमें सहायता देगा। अब हम सरकारी

नौकरी, अस्त्रआईन आदि बीसों प्रस्तावोंके पास करनेमें अपनी शक्ति खर्च नहीं कर सकते। इस स्वराज्यके प्रस्तावमें वह सब आ गया। अब आप सबसे मेरा निवेदन है कि इस एक प्रस्तावको पूरा उद्योग, बल और उत्साह और अपना सर्वस्व लगाकर कार्यमें परिणत कीजिये। इसे आसान काम न समझें। प्रस्ताव पास करनेसे कुछ नहीं हो सकता। हिन्दू मुसलमानोंके मिल जानेसे नरम और गरम दलोंके मिल जानेसे भी कुछ नहीं हो सकता। इस मेलका उद्देश्य हममें एक प्रकारकी शक्ति और उत्साह पैदा करना है और जबतक उस शक्ति और उत्साहका प्रयोग पूरे तौरसे नहीं किया जाता तबतक आप सफलताकी आशा नहीं कर सकते। आपके मार्गमें बहुत बड़े विघ्न हैं। अब आप लोगोंको इस स्कीमके परिणत करानेमें जुझजाना चाहिये। यदि अब कांग्रेस न भी हो तो पर्वाह नहीं। एक विचारकारिणी सभा की हैसियतसे वह अपना काम कर चुकी। दूसरा भाग कार्य-मूलक है और मैं आशा करता हूं कि योजनाका कार्यात्मक भाग मैं आप लोगोंके सम्मुख पीछे उपस्थित कर सकूंगा। केवल विचारमूलक भाग आप लोगोंके सम्मुख रक्खा गया है। यह समय बातचीतका नहीं है। जब 'स्वराज्य' हमारा लक्ष्य घोषित हुआ तब यह शंका की गई कि यह लक्ष्य वैध है या अवैध है और तब कलकत्तेके हाई-कोर्टने उसे वैध बतलाया। तब यह कहा जाने लगा कि स्वराज्य तो वैध है पर वह ऐसे शब्दोंमें प्रकट किया जाना चाहिये जिनमें ब्युरॉक्रेसीका खंडन न हो। इसका फैसला अब कोर्टसे हो चुका है—आप खंडन कर सकते हैं, अपने उद्देश्यकी साधनाके लिये, अपने कथनकी सत्यता दिखलाने

में आप कानूनकी सीमाके अन्दर आंदोलन कर सकते हैं इस प्रकार लक्ष्य वैध हो चुका है यहां अब स्वराज्यका एक खास मसविदा आपके सामने है जिसे संयुक्त भारतने निर्द्धारित किया है। मार्गके सब कांटे दूर कर दिये गये हैं। अब यह आपकी गलती होगी जो आप उसके लिखितको न प्राप्त करें। इसको याद रखिये। यह बड़ी भारी जिम्मेदारी है। पीछे मत हटिये। मैं कहता हूँ, काम कीजिये; कौतूहलका युग चला गया जब रोटीके कुछ टुकड़ोंसे इस मसीह हज़ारों मनुष्योंके पेट भर देते थे। यह समय काम करने, लगातार परिश्रम करनेका है और आशा है कि आगामी दो वर्षोंमें इस योजनाको कार्यमें परिणत करनेके लिये जिस शक्ति, उत्साह, मुस्तैदी और सामग्रीकी ज़रूरत है वह ईश्वर आपको देगा। इस उद्देश्यका फल आकाशसे नहीं टूट पड़ेगा। उसके लिये आपको उद्योग करना होगा।

मैं समझता हूँ कि १६१७ के अन्ततक युद्ध समाप्त हो जांयगा और यदि इस वर्षमें नहीं तो कमसे कम १६१८ में हिन्दुस्तानमें किसी जगह एकत्र होकर हमलोग अवश्य स्वराज्यका झंडा उठा सकेंगे।

स्वराज्य।

(लखनऊ, होमरूल कानफरेन्स, ताः ३० दिसंबर १९१६)

मिसेज बेसंट और मेरे मित्रो,

मैं यहां व्याख्यान देने नहीं आया था और न मै यह सोचता था कि मुझसे भाषण करनेके लिये कहा जायगा।

पर आजका विषय ऐसा आकर्षक है कि इसपर कुछ शब्द कहनेका अवसर मिलने पर रहा नहीं जाता।

लखनऊकी कांग्रेस सबसे महत्वकी कांग्रेस हुई है। कांग्रेसके अध्यक्षने ही कहा था कि यही वास्तवमें भारतकी राष्ट्रीय सभा हुई है। इसमें दो बातें हुई हैं।

हिन्दू और मुसलमान

एक हुए हैं। हिन्दुओंमें कहीं कहीं यह ख्याल हो रहा है कि मुसलमानोंको उचित से बहुत अधिक दिया गया है। मेरे विचारसे यह ख्याल ठीक नहीं है। मैं हिन्दूके नाते कहता हूं कि मुसलमानोंके साथ जो रियायत की गई है उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। किसी मुकद्दमेमें जब जीतनेकी बहुत कम संभावना होती है तब मुअक्किल वकीलसे जाकर कहता है कि अगर मुकद्दमेको आप जिता दें तो आधा लाभ हम आपको देंगे। वही बात यहां भी है। बिना मुसलमानोंकी सहायताके हम लोग इस असह्य दुर्दशासे ऊपर उठ नहीं सकते। इसलिये अपने उद्देश्यकी सफलताके लिये मुसलमानोंको अधिक निर्वाचनाधिकार देनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। आप जितना ही अधिक निर्वाचनाधिकार उनको देंगे उतनी ही अधिक जिम्मेदारी उनपर पड़ेगी। आपके लिये काम करना उनपर दो गुना लाजिमी हो जायगा और उनमें वह उत्साह और हौसला उत्पन्न होगा जो पहिले कभी न हुआ हो।

इस समय हमको

त्रिकोण-युद्ध

करना पड़ रहा है। एक बलवती ब्यूरॉक्रेसीके हाथोंमेंसे

आपको स्वराज्य ले लेना है। इस मंडलीने प्रतिकार आरंभ कर दिया है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अगर आप सत्ताधीश होते तो आप भी ऐसा ही करते। सत्ता (दखल) आधा क़ानून है। ब्यूरॉक्रेसीका दखल मौजूद है और इस दखलको वह क्यों छोड़ दें। साल-बसाल प्रस्ताव पास किये जानेसे हक नहीं मिला करते। इन प्रस्तावोंको कार्यमें परिणत करना आसान नहीं है—मार्गमें बड़ी बड़ी कठिनाइयां हैं; परन्तु इन कठिनाइयोंसे हमारे विश्वास और उद्योगकी शक्ति बढ़नी चाहिये।

ब्यूरॉक्रेसीकी नेकी।

हमारे देशमें ब्यूराक्रेसीने भी बहुत कुछ काम किया है। उसने यहां जो जंगल था उसे काट कर साफ कर दिया है। पर जंगल साफ करके जमीनमें बोआई होनी चाहिये। पर ब्यूरॉक्रेसीकी यह मनशा नहीं है। हमलोग उसमें खेती करना चाहते है। इस ब्यूरॉक्रेसीके मातहत रह कर हिन्दुस्थान एक हुआ; अब वह कर्तव्य पथपर आना चाहता है। दूसरी बात भी इसके साथ पैदा होती है। हम लोग अब स्वाधीनता चाहते हैं। हम अपने बच्चोंको शिक्षा देते हैं और यह आशा रखते हैं कि भविष्यतमें ये हमारी जिम्मेदारि अपने ऊपर लेंगे। अंग्रेजोंके संबंधमें भी यही बात है। उन्होंने हम लोगोंको एक किया है, उन्होंने हमें शिक्षा दी है और अब उन्हें यह भी अपेक्षा करनी चाहिये कि हमलोग अपनी योग्यताके स्थानपर स्थित हों। इतिहास और विचार ब्यूरॉक्रेसीकी रुकावटोंके विरुद्ध हैं और इसलिये हमारी ही जीत होगी—अन्तमें हमी जीतेंगे।

हमारे मार्गमें

एक ही रुकावट

है और वह यह कि अभी हमारी तैयारी नहीं है। पीछे हटनेसे काम न चलेगा। यह कहनेके लिये तैयार होजाइये कि

हम होमरूलर हैं।

कहिये कि बिना स्वराज्यके हमारा काम नहीं चलता और मैं आपसे कहता हूँ कि जब आप तैयार हो जायंगे तब आपको

स्वराज्य मिलेगा।

इस आन्दोलनमें अराजकताकी कोई बात नहीं है। क्या आप इसका उद्योग करनेके लिये तैयार हैं?

'स्वराज्य' का विषय बड़ा व्यापक है। कांग्रेसने एक बड़ा ही तेजस्वी प्रस्ताव इस विषयका निर्धारित किया है और अब सर्व साधारणको शिक्षा देनेका काम आपके हाथमें है। कांग्रेसके सब प्रस्तावोंका समावेश इस स्वराज्य या होमरूलके प्रस्तावमें हो जाता है। यही तो एकमात्र उपाय है। अपने हक मांगिये और लीजिये। हिन्दुस्तान खास आपका घर है या नहीं है? (उपस्थित सज्जनोंने कहा, है) तब इसका प्रबन्ध खुद क्यों नहीं करते? (करतलध्वनि) हमारे देशके जितने भीतरी काम हैं वे सब हमारे हाथमें रहने चाहियें। इंग्लैंडसे अलग होनेकी हमारी इच्छा नहीं।

वेदान्तका आधार।

अपने वेदान्तमें एक मसल है कि 'नर करे करनी तो नरका नारायण होय।' यदि यह ठीक है तो क्या आप यह

समझते हैं कि आप चाहें तो आप अधिकारी—सत्ताधारी नहीं बन सकते? बहुत सादी बात है। मनुष्यजातिके उज्ज्वल भविष्यमें दृढ़ विश्वास कीजिये। मुझे विश्वास है कि इस विश्वासके साथ आप काम करेंगे तो एक दो वर्षमें आपका उद्देश्य सफल होगा।

—o—
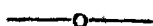
स्वराज्य, वर्णधर्म और संध्यावन्दन।

(कानपुर, ता० १ जनवरी सन् १९१७)

सज्जनो,

मुझे इस बातका बड़ा खेद है कि मैं आप लोगोंके सम्मुख आपकी मातृभाषा हिन्दीमें, जो भारतकी राष्ट्रभाषा बननेका अधिकार रखती है, भाषण नहीं कर रहा हूँ। इस विराट् जनसमुदायको देखकर जो मेरे स्वागतके लिये यहां एकत्र हुआ है, मुझे हिन्दी न बोल सकनेपर और भी अधिक दुःख हो रहा है। मुझे दुःख इस कारणसे होता है कि मैं भी उन लोगोंमेंसे हूं जो कहते हैं कि हिन्दी भारतकी भावी राष्ट्रभाषा होनी चाहिये। परन्तु दुर्भाग्यवश हिन्दी न बोल सकनेके कारण मैं यही उचित समझता हूँ कि आपसे अंग्रेजीमें ही उस विषयके संबंधमें कुछ शब्द कहूँ, जिसमें हम सब लखनऊमें लगे हुए थे।

आप लोगोंने सुना होगा कि लखनऊकी कांग्रेसने होमरूलकी ओर अपना पैर बढ़ाकर अपना नाम स्मरणीय किया है। आपलोग यह समझ सकते हैं कि ३० वर्ष विचार करनेके बाद हमलोग जान गये हैं कि होमरूलके सिवा

हमारी कोई रक्षा नहीं कर सकता। कांग्रेसने गत ३० वर्षोंमें जो जो प्रस्ताव पास किये हैं उन सबका यह सार है। आप किसी दृष्टिसे इस प्रश्नपर विचार कीजिये, आपको यह विश्वास हो जायगा कि होमरूलके अर्थमें जो स्वाधीनता है उस स्वाधीनताके बिना इस देशका उद्धार नहीं हो सकता। इस देशकी हर एक बात—नैतिक, सांपत्तिक या मानसिक किसी विषयकी हो, उस स्वाधीनता पर निर्भर करती है जिनसे इस समय हम वंचित हैं। आधुनिक सभ्यताकी दृष्टिसे सभ्य देशोंके बराबर बननेके लिये आप कोई प्रयत्न इस समय नहीं कर सकते। यह बात मुझसे अधिक निपुण वक्ता और ऐसे लोग बतला चुके है जो आपके आदर और श्रद्धाके लिये मुझसे अधिक पात्र हैं। मैं कहता हूं, मुझे यह बतलाया गया है कि जबतक हमें उस स्वाधीनताका कुछ अंश न मिलेगा जिसके लिये हम प्रयत्न कर रहे है, जबतक उस सत्ताका अंश हमें न मिलेगा जो इस समय ब्यूराक्रेसीके हाथोंमें है तबतक हम उस अवस्थाको नहीं पा सकते जिस अवस्थामें रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि आप देखें, इस समय आपकी क्या दशा है, यदि आप अपने चारो ओर दृष्टि डालें तो हर बातमें आप अपने को असमर्थ पायेंगे। आप व्यवसायका प्रश्न लीजिये, शिक्षाका प्रश्न बिचारिये अथवा और किसी विषयकी ओर दृष्टि फेंकिये, आपके मार्गमें कांटे बिछे हुए देखायी देगें अर्थात् आपके पास वह शक्ति नहीं है कि आप जो चाहें कर सकें। इस महत्वके प्रश्नका सामना करनेके लिये हम लोगोंको सबसे पहिले तैयार हो जाना चाहिये। उन्नति, वास्तविक उन्नति आगेकी बात है।

होमरूलके विरुद्ध जो आक्षेप हैं उनका उत्तर कांग्रेसमें और कांग्रेसके बाहर भी दिया जा चुका है। मैं सिर्फ दो एककी खबर लूंगा; क्योंकि मैं अंग्रेजीमें भाषणकर रहा हूं मुझे भय है कि सब लोग मेरा भाषण न समझ सकते होंगे और अब समय भी बहुत कम रहा है।

आपलोग जो यहां मेरा भाषण सुनने और मेरा सम्मान करनेके लिये एकत्र हुए हैं इस विचारसे मैं समझता हूँ, सहमत होंगे कि आपलोग मेरा सम्मान करते हुए होमरूल के उद्योगका सम्मान कर रहे हैं। आपलोगोंकी उपस्थिति ही इस बातका प्रमाण है कि आपलोग इस महत्वके प्रश्न की चर्चामें सम्मिलित हैं। प्रतिपक्षका कहना है कि भारत-वर्षमें होमरूलके पक्षमें सर्वसाधारण नहीं हैं। आपलोगों की उपस्थितिसे ही इस बातका खंडन हो जाता है। मैं नहीं समझता कि आपलोग यहां मेरे व्यक्तिका स्वागत करने आये हैं। बल्कि आप होमरूलके उद्योगका स्वागत करने आये हैं। और विरोधियोंका जो यह कहना है कि हम लोग होमरूलके लिये तैयार नहीं, हमलोगोंका सर्व-साधारणपर कोई प्रभाव नहीं, हम लोग इस बारेमें इतने उदासीन हैं कि सैकड़ों नहीं तो पचासों वर्ष हमें होमरूल की योग्यता प्राप्त करनेमें ही लग जायँगे—इन सब बातोंका मुँहतोड़ जवाब एक यह बड़ा भारी जमाव ही है।

दूसरा आक्षेप इन लोगोंका यह है कि हम हिन्दुओंने कभी स्वराज्यका स्वरूप ही नहीं देखा। इससे बढ़कर गलत और झूठ बात हो ही नहीं सकती। प्राचीन कालमें उत्तर भारतवर्षने स्वराज्य किया है। मनुस्मृतिके राजनीति-प्रकरणमें चातुर्वर्ण्यकी सामाजिक संयोजनाका उल्लेख है।

बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है कि जातपाँत ही चातुर्वर्ण्य है। इन जातियोंके क्या कर्त्तव्य हैं उन्हें कोई नहीं देखता। क्षत्रिय ब्राह्मणके साथ भोजन नहीं करेगा, ब्राह्मण वैश्यके साथ भोजन नहीं करेगा और वैश्य शूद्रके साथ भोजन नहीं करेगा। मनु और भगवद्गीताके कालमें यह बात नहीं थी। भगवद्गीताने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि यह वर्णभेद जन्म से नहीं बल्कि गुण और कर्मसे है। क्षत्रिय राज्यकी रक्षा करते थे और परचक्र तथा अन्तर्विद्रोहसे प्रजा को बचाते थे। वे कहां हैं? उनका कहीं पता ही नहीं है और अंग्रेज अब उनका काम कर रहे हैं। अब वाणिज्य लीजिये। आपलोग समझते हैं कि यह (कानपुर) एक व्यापारका नगर है। मजदूर बहुतसे हैं पर देशका धन जा रहा है हिन्दुस्तानके लाभके लिये नहीं, बल्कि और देशोंके। कच्चा माल बाहर भेजा जाता है और पक्का बनकर बाहरसे आता है जिसने भारतवर्षके प्राचीन कीर्त्तिवाले कलाकौशलको चौपट कर दिया है। वैश्य जातिको देखिये—उसे भी बृटिशोंने या बृटिश सौदागरोंने बगलमें दबा लिया है। ब्राह्मणोंका हाल देखिये। मैं भी ब्राह्मण हूँ। हमें इस बातका अभिमान था कि हम लोग अपने समाजके शीर्ष थे—दिमाग़ वास्तवमें थे—परन्तु वह दिमाग अब इतना बेकार हो गया है कि अपने जीवनके प्रत्येक कार्यविभागके लिये हमें प्राचीन विद्याको देकर विदेशी तत्वज्ञान इस देशमें मंगाना पड़ता है। मेरे विचारसे चातुर्वर्ण्यने समाजके जीवनकार्यके लिये चार विभाग बना दिये और प्रत्येक विभागसे हम बराबर कुछ न कुछ हारते ही जा रहे हैं। मैं चाहता हूँ, आप इस रहस्यको समझें और अपने समाजमें

जो अपना स्थान है उसे प्राप्त करनेकीचेष्टा करें। हम लोगोंको स्वयंसैनिक बननेका अधिकार नहीं, बड़े बड़े जिम्मेदारीके काम करनेका हमें मौका नहीं। आदमी मौजूद हैं पर उनके कर्तव्य जाते रहे और रहगया बसयही कि हम ब्राह्मण हैं, तुम क्षत्रिय हो और वह शूद्र है। सबने अपनी मर्यादा छोड़ दी। मैं किसी वर्णका पक्षपात नहीं करता। मैं यह चाहता हूँ कि आपलोग इस बातको समझें कि आपमें क्षत्रिय या ब्राह्मणका रक्त होने ही से क्या हुआ, आपमें वे गुण नहीं हैं, वे कर्म नहीं हैं जो आपमें होने चाहिये थे पर जिन्हें शूद्र भोग रहे है। होमरूलकी एक दृष्टि यह है कि चातुर्वर्ण्यके इन कार्यविभागमें जो स्वाधीनता प्राप्त थी उसे पाकर उस मर्यादाको बृटिशराजकी छाया और सहकारितामें, पानेका प्रयत्न किया जायगा। यह कार्य किसी अवैध उपायसे नहीं किया जायगा। हमारी यही इच्छा और उत्कण्ठा है कि हम साम्राज्यके ही सदा अन्तर्गत रहें और बृटिश जनताकी सहानुभूतिके साथ ही इस लक्ष्यको प्राप्त करें।

परन्तु ऐसा संबन्ध दो प्रकारसे होता है। घरमें नौकर भी होते है और लड़के भी। हम लोग लड़कोंका स्थान अधिकृत करना चाहते हैं, नकि नौकरोंका—उस साम्राज्यमें बराबरीका भाग चाहते हैं जिसका अबतक कोई सानी नहीं हुआ। हमलोग साम्राज्यका एक भाग बने रहना चाहते हैं पर मृत भाग बनकर साम्राज्यके लिये एक बोझ बनना नहीं चाहते बल्कि एक जीता जागता भाग बनेंगे जिससे अपने सामाजिक जीवनमें हम अपने सब गुणोंको विकसित कर सकें। इसी विचारसे होमरूलका आन्दोलन आरम्भ किया गया है जिसमें आप अपने घरके मालिक बनें,

नौकर नहीं। इस अवस्थाको प्राप्त करना हर किसीके लिये लाजिमी है और इसी अवस्थाको प्राप्त करना ही इस आन्दोलनका लक्ष्य है। होमरूल केवल यही है कि आप अपने घरके मालिक बनें। क्या कभी आपने इस सीधेसादे प्रश्नपर विचार किया है कि आप अपने घरके कौन हैं—नौकर या मालिक? और हिन्दुस्तान यदि आपका घर है तो क्या कारण है कि आप अपने घरकी भीतरी बातोंके पूरे मालिक न बनें।

किसी अंग्रेजका कोई हक छीन लीजिये तो वह आकाश पाताल एक कर देगा और जबतक उसे अपना हक हासिल न होगा, कभी चुप न बैठेगा। आप लोग क्यों चुप रहें, आप लोग भी अपने धर्मके नामपर, अपनी वर्णव्यवस्थाके नामपर, अपने वेदान्तके नामपर अपनी मर्यादाको जान कर अपना जन्मसिद्ध अधिकार—अपने घरका कारबार अपने हाथमें लेनेका अधिकार—प्राप्त करनेका पूरा उद्योग क्यों न करें? यदि आप यह उद्योग न करेंगे तो और कौन करेगा? मोहके वशीभूत न हो जाइये। आप उसके लिये योग्य है, आपने अभी सिर्फ अनुभव नहीं किया है। आप अपने प्रयत्नसे अपना लक्ष्य पा सकते है। यही आत्मविश्वास मैं आप लोगोंमें उत्पन्न हुआ देखना चाहता हूं। एक बार इस बात को आप समझ लें कि जैसे उपनिवेशोंमें और साम्राज्यके अन्य भागोंमें लोग अपने घरके आप मालिक है वैसे ही आप भी हैं। एक बार यह धारणा कर लीजिये तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो आप और आपके लक्ष्यके बीच खड़ी हो कर दोनोंको अलग कर दे। यह सब आपके उद्योगपर निर्भर करता है। लखनऊ और कानपुरमें बहुत जल्द ऐसे आदमी मिलेंगे जो अधिक योग्यताके साथ आपको यह विषय सम-

जायँगे, और आगे जो मवस्वी कार्यकर्त्ता आनेवाले हैं वे यदि मेरे इस भाषणसे कर्मभूमि देख पायँगे तो मैं समझूँगा कि मेरा भाषण व्यर्थ नहीं हुआ। यह एक ऐसी बात है जिसकी ओर अब आप लोगोंको दृष्टि फेरनी चाहिये। उदासीनताको अब दूर कीजिये। आप लोग संसारकी किसी जातिके लोगोंसे कम नहीं हैं। आपके हाथ पैर मौजूद हैं। और आप जानते हैं, शेक्सपियरने अपने एक नाटकमें क्या लिखा है। हमलोग निःसन्देह जापानियोंसे कहीं अच्छे हैं और इसपर भी जापान जिसको पा लेता है उसे पाना आप असंभव समझते हैं और उसके प्रयत्नमें आप उदासीन हो जाते हैं। आपका यह दोष नहीं है कि आपमें योग्यता नहीं या आपके पास साधन नहीं, दोष यह है कि आपमें इच्छा ही नहीं है। आपको अपनी इच्छाशक्तिपर अभ्यास करना चाहिये था। इच्छा ही सब कुछ है। इच्छाशक्तिसे आप उसे जितना चाहें मजबूत बना सकते हैं और आपकी दुनियामें कोई ताकत नहीं है जो आपको आपके लक्ष्यसे हटा दे। दृढ़ इच्छा कीजिये और यदि ऐसी इच्छा प्रत्येक वर्णमें उत्पन्न हो जायगी तो मराठीमें एक कहावत है कि पंच ही परमेश्वर है। पंच—पांचके बदले अब मुझे ३० करोड़ कहना चाहिये। और इस बातको आप समझलेंगे और अपने लक्ष्यपर कायम रहेंगे तो आप उस अवस्थाको अवश्य ही प्राप्त करेंगे जिस अवस्थामें होना जन्मसे आपका अधिकार है। आप कहेंगे, यह इच्छाशक्ति उन शक्तियोंका मुकाबला न कर सकेगी जो हमारे विरुद्ध सुसज्जित की गई हैं। आपने अभी इस इच्छाके बलका विचार ही नहीं

किया है। अपने जीवनका एक क्षण भी आप इस अभ्यासमें नहीं लगाते। ब्राह्मणको नित्य प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या वन्दन करना पड़ता है। यह सन्ध्यावन्दन क्या है? इच्छाशक्तिका अभ्यास। अब सन्ध्यावन्दनमें यह और लगाइये कि, मैं अपना जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा करूँगा। नित्य प्रातःकाल और सायंकाल यह प्रार्थना कीजिये। दिनमें आप कोई भी काम करते हों, इस बातको मत भूलिये। यदि आपके मार्गमें मोहक्षोभ उत्पन्न हों तौभी उसी प्रार्थनाको दोहराइये। प्रार्थना ऐसी शक्ति होती है कि संकटोंके सब पहाड़ उसके सामने कट जाते है; प्रार्थनाका यह फल है। बिना अर्थ प्रार्थनासे कोई लाभ नहीं होता। ईश्वर अपने लिये प्रार्थना नहीं चाहता। उसे उसकी आवश्यकता नहीं है ईश्वर नहीं चाहता कि आप उसकी स्तुति किया करें—यह सब वृथा है। इस बातको खूब समझ लीजिये। बिना किसी प्राप्तव्यकी आशाके, प्रार्थना करनेसे क्या लाभ? ईश्वरने यह सब रचना की है; वह अपनी रचनाको चलाना भी जानता है। क्या आप यह समझते हैं कि आप अपनी प्रार्थनाके बलसे कर्मकी गतिको नहीं बदल सकते? नित्य सायंप्रातः स्वराज्यके लिये प्रार्थना कीजिये और मैं कहता हूँ कि एक या दो वर्षमें आप अपने लक्ष्यको पा लेंगे।

आप लोगोंने मेरा जो स्वागत किया है उसके लिये धन्यवाद देकर अब मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ, और यदि मेरा अंग्रेजी भाषण किसीकी समझमें न आया हो तो उपस्थित सज्जनोंमेंसे कोई सज्जन उसका आशय आपको बतला देंगे। अन्तमें मैं आपकी मातृभाषामें आपसे भाषण नहीं कर सका इसके लिये क्षमा मांगता हूँ।

स्वराज्य ।

(नागपूर, ता० ८ जनवरी १९१७)

सभापति महाशय व उपस्थित सज्जनो,

आप लोगोंने यहां इकट्ठे होकर मेरा जो अपूर्व सत्कार किया है उसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद देना मेरा पहिला कर्तव्य है। परन्तु ये धन्यवाद किसको दें और कैसे दें इस विषयमें मन सशंक होता है। यदि मैं यह समझूँ कि मेरा-इस देहका-स्वागत करनेके लिये आप लोग एकत्र हुए है तो यह मेरी मूर्खता होगी। मैं सचमुच ही इस सम्मान, औत्सुक्य, आनन्द और सत्कारके योग्य नहीं हूं। यह अपूर्व समारोह, आपका यह उत्साह, यह सब एक विशेष कार्यके लिये है और मैं समझता हूँ कि मैं उस कार्यका एक प्रतिनिधि हूँ। सब लोग जानते हैं कि वह कार्य कौनसा है तो भी एक बार उसका उच्चार होना आवश्यक है इसलिये मैं कहता हूँ कि वह कार्य स्वराज्यका कार्य है।

इस प्रचंड जनसमुदायमें इस विषयपर बोलनेके लिये और कोई पुरुष योग्य नहीं है, सो नहीं। विद्वत्ता, संपत्ति और धैर्य आदि गुणोंमें मुझसे श्रेष्ठ पुरुष यहाँ और इस देशमें अन्यत्र भी हैं। परन्तु खानमें अनेक पत्थर होते हैं तो भी देवता बननेका सौभाग्य विरले ही को प्राप्त होता है, उसी प्रकार मेरा-इस पत्थरका हाल हो रहा है; अर्थात् पत्थर अपनेको देवता मानने लगे या भक्त लोग पत्थरको ही देव समझने लग जायँ तो यह ठीक न होगा। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि पत्थरको देवता मत समझिये।

कुछ 'बुद्धिमान्' लोग उनकी अपनी दृष्टिसे 'बुद्धिमान्' हमारे हिन्दु धर्मकी मूर्तिपूजाको मूर्खता सूचक समझते हैं। पर शास्त्रकार बतलाते है कि मूर्त्तिमें भगवान्‌की भावना करनी चाहिये यह भावना होती है तभी भक्त उससे लाभ उठा सकता है। 'यान्ति देवव्रता देवान्' यह भगवद्गीताका कथन है। पत्थरको ही देवता समझनेवालोंसे मैं कहूँगा कि 'यान्ति पत्थरव्रता पत्थरान्'। इसलिये कार्यमें ही अपना भाव रखिये यही मेरा कहना है। आपको मूर्त्तिकी आवश्यकता हो तो आप चाहें तो मुझे मूर्त्ति बना सकते हैं। पर स्वराज्यकी प्राप्ति तक भावको बनाये रहिये। मूर्त्ति नष्ट हो जायगी मै जाता रहूँगा। पर आपका भाव बना रहना चाहिये। यह समय व्याख्यानका नहीं है और न मैं उस तैयारीके साथ आया हूँ। स्वराज्य पर व्याख्यान देने या सुननेसे हमारी आपकी इच्छा पूरी नहीं हो सकती।

व्याख्यानोंका समय गया। व्याख्यानोंकी अवस्थासे हम लोग आगे बढ़ आये हैं और अब स्वार्थत्यागका समय है। साहसके साथ जुझनेका समय है। आपके कार्यकी दिशा कौनसी है यह मैं संक्षेपमें बतलाऊँगा।

दस वर्ष पूर्व जब मैं यहाँ आया था उस समयके राजकीय वातावरणसे आपका राजकीय वातावरण भिन्न है। उसमें बड़े ही महत्वके उलट फेर हुए हैं। आज यह हालत है कि देशके ओरसे छोर तक ढूँढ डालिये, आपको कोई ऐसा मनुष्य शायद ही मिले जो स्वराज्य वादी न हो। उस समय 'स्वराज्य' के संबधमें मतभेद था; कुछ लोग स्वराज्यको आवश्यक समझते थे, कुछ लोग अनावश्यक बतलाते थे; कुछ लोगोंको यह सन्देह था कि स्वराज्य मिलेगा या नहीं; और

कुछ लोगोंको यही समझमें नहीं आता था कि स्वराज्यसे लाभ होगा या हानि होगी। परन्तु अब लखनऊमें सब दल, हिन्दू और मुसलमान, सबोंने एक होकर 'स्वराज्य' की इच्छा प्रकट की है। दस वर्ष पहिले यह एकता नहीं थी।

कुछ 'समझदारोंने' अधिकारियोंको यह समझा दिया था और अधिकारियोंने भी यह समझ लिया था कि यदि स्वराज्य होगा तो हिन्दू आगे बढ़ जायँगे और मुसलमान पीछे रह जायँगे। यह मतभेद जो हम लोगोंमें था वह वास्तविक नहीं था, बनावटी था यह मेरा कहना नहीं है। कुछ लोग वास्तवमें ऐसा समझते थे कि हम लोग स्वराज्य पाने योग्य नहीं हैं। किसी बातका निश्चय हो जानेके लिये कुछ समय लगता है और इतने समयके बाद अब हम लोगोंका लक्ष्य लखनऊमें एक मतसे निश्चित हो चुका है। पिछली सब बातें भुलाकर यह परिवर्त्तन संघटित हुआ है। इस प्रकार मेरे विचारसे राष्ट्र मन्दिरमें ध्येय मूर्त्तिकी स्थापना तो हो चुकी। अब लोग इस मूर्त्तिका ध्यान किस प्रकार करेंगे और उन्हें परमात्मा कैसे प्रसन्न होगा इस प्रश्नका विचार होना चाहिये।

स्वराज्यके इस प्रश्नका एक दूसरा पक्ष भी है। सरकारको अभी अलग रखिये। यह समझिये कि सरकार जज है और उसे फैसला करना है। हमारे विरुद्ध जो दूसरा पक्ष है वह ऐंग्लो-इंडियन लोगोंका है। यह दूसरा पक्ष गए सप्ताह इंग्लिशमैन, स्टेट्समैन आदि समाचार पत्रों द्वारा उपस्थित किया गया है। आजतक ये लोग यह कहा करते थे कि स्वराज्य मांगनेमें हिन्दू और मुसलमान एक नहीं हुए हैं। वे कहते थे कि नरम गरम एक हुए हैं। नरम गरम याने इन लोगों की भाषामें 'भेड़ बकरी' है। 'Goats

have entered the fold and Sheep must be rescued—भेड़ोंमें बकरे घुस आये हैं, भेड़ोंका बचाव करना चाहिये।' यह मिन्टो पॉलिसी थी! भेड़ोंका बचाव करनेके लिये ऐंग्लो इंडियन हाथ पैर पटका करते थे। पर अब हाथीदाँतकी सी बातोंसे काम न चलेगा यह देखकर ही हमारे भूतपूर्व गवर्नर लार्ड सिडनहम आगे आये हैं। उन्होंने 'नाइन्टीन्थ सेंच्युरी' नामक मासिक पत्रमें एक लेख लिखा है। इन्होंने स्पष्ट ही कहा है, सरकारको यह साफ तौर पर प्रकट कर देना चाहिये कि इन लोगोंको जो कुछ दिया गया है उससे अधिक और कुछ भी न दिया जायगा। महारानीका घोषणा-पत्र व्यर्थ है, मोर्ले साहबने जो कुछ कहा, सब झूठ है, अभी सम्राट्ने जो कुछ विश्वास दिलाया उसका कुछ मूल्य नहीं। यह स्पष्ट घोषित कर दिया जायगा तभी साम्राज्यकी दृढ़ता बनी रहेगी। हमारा विरुद्ध पक्ष इस प्रकार तैयार हुआ है। एक पक्षका कहना है। 'स्वराज्य हो;' दूसरा पक्ष कहता है। 'घोषणापत्र मिथ्या है, हिन्दुस्तानको कुछ न मिलेगा, आशा मत लगाये रहो'।

स्वराज्यके लिये जो बुद्धिबल, जो शरीरबल, जो द्रव्यबल, जो उद्योग और जो दृढ़ता चाहिये उसे अर्पण करनेके लिये तैयार हो जाइये तो ही इससे उद्धार हो सकता है। स्वराज्य छोड़ और कोई ध्येय सामने मत रखिये। अपनी शक्तिसे, बुद्धिसे और हार्दिकतासे जो कुछ हो सकता है उसे करनेके लिये तैयार हो जाइये यही आपसे मेरा विनय है। एक प्रकारसे युद्ध आरम्भ होगया है, यह स्मरण रखिये। वादविवाद बढ़ाने, मतभेद दिखलाने या बकबक करनेके लिये अब समय नहीं रहा। कांग्रेसमें प्रस्ताव

पास करनेसे कुछ भी न होगा। कांग्रेसका प्रस्ताव हमारे ध्येय की पहिली सीढ़ी भी नहीं है। स्वराज्यका प्रस्ताव वह भूमि है जिसपर सारी इमारत खड़ी करनी है। उद्योग के बिना यश नहीं मिलेगा। यश न मिला तो यह तुम्हारी नामर्दीका लक्षण है। स्वराज्यकी वैधता सिद्ध हो चुकी है। यह भी फैसला हो चुका है कि स्वराज्य प्राप्तिमें लोगों से सहायता लेना भी वैध है। कानूनकी कोई आपत्ति अब नहीं रह गयी। मुसलमान विरुद्ध नहीं हैं; पक्ष भेद नष्ट हो चुके हैं; यह सब ध्यानमें ले आइये। कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी और कठिनाइयोंको बिना झेले कोई लाभ भी नहीं होता।

'संकटं पुनारुह्य यदि जीवति पश्यति'।

यह सूत्र ध्यानमें रखिये और कार्यमें तत्पर हो जाइये। कोई बात बिना प्रतिदानके नहीं मिलती। यह प्रतिदान क्या है? साहस। व्याख्यान सुन लेना इस उद्योगकी सिद्धिका मूल्य नहीं है। व्याख्यान बहुत हुए। अब उस साहसकी आवश्यकता है जो रुकावटोंको दूर करके अपना उद्योग आगे बढ़ाता जाय। उद्योग ही यशका साधन है। स्वराज्य सेंतमें नहीं मिल जायगा।

मैं स्वराज्यवादी हूँ,

मुझे होमरूल चाहिये, मैं अपना सब तनमनधन इस काम में लगानेके लिये तैयार हूँ, प्रतिपक्षको इस प्रकार बतलानेके लिये हमें धैर्यके साथ तैयार होना चाहिये। कुछ लोग समझते हैं कि यह आन्दोलन जो हमलोगोंने उठाया है सो अपने स्वार्थके लिये है। स्वराज्यका आन्दोलन कोई व्यवसाय नहीं है, कोई कथा नहीं है। इस कार्यको धार्मिक

कार्य समझकर इसमें आपको लग जाना चाहिये। हमारा धर्म, हमारा जीवन, सब कुछ स्वराज्यके बिना व्यर्थ है यह भाव आपके अन्तःकरणमें उदय होना चाहिये। मुसलमानों की महासभा—मास्लीमलीगमें जो भाषण हुए उनमें यह कहा गया था कि स्वराज्य एक धार्मिक विषय है। स्वराज्य न मिलेगा तो हमारा जीवन व्यर्थ होगा, धर्म किसी काम न आवेगा, हर किसीकी यह धारणा होनी चाहिये। ध्येयके विषयमें सबकी एक राय हुई है, यह सौभाग्यका विषय है, पर मार्गमें अनेक विघ्न हैं, अनेक कुतर्क हैं, यह ध्यानमें रखिये।

मुझे तो विघ्न दिखलायी दे रहे हैं। हमारे कार्यमें यदि विघ्न न हुए तो समझिये कि परमात्माको ही हमने पा लिया। पर विघ्न उपस्थित होंगे तो उन्हें दूर करनेकी शक्ति दे यही मैं ईश्वरसे रातदिन प्रार्थना करूंगा। कुछ लोगोंने यह निश्चय कर लिया है कि हमलोगोंको कुछ न दिया जाय, यह खूब समझ लीजिये। दोनों ओरकी बातें सुनकर पार्लेमेन्टको फैसला करना है। हमारा उद्योग पूर्णतया वैध है, उसमें कानूनसे गैर कोई भी बात नहीं है। अब इस उद्योगमें इस तरह दिल लग जाना चाहिये कि उससे यश प्राप्ति हो। काल अनुकूल है, हमारी राज-भक्ति सिद्ध हो चुकी है। युद्धके कारण राजभक्ति कसौटी पर आ चुकी है। पर युद्धसे यह भी सिद्ध हो चुका है कि हिन्दुस्तानको सुखी और सन्तुष्ट रखनेमें ही साम्राज्य की दृढ़ता है हिन्दुस्तानके सदृश साम्राज्यका और कोई सच्चा मित्र नहीं है।

उपनिवेशोंकी ओरसे कार्टिस साहबका कहना है कि हिन्दुस्तानपर हुकूमत करनेके लिये उपनिवेशवालोंको भी अपने साथ करलो। ठीक यही बात हम भी इङ्गलैंडसे कहते हैं ; उपनिवेशवालोंसे सौगुना बल साम्राज्यका हमारे कारण बढ़ेगा। यह युग मनुष्य बलका है। हमलोगोंके साथ बराबरीका व्यवहार किया जायगा, उचित रीतसे हमारा प्रबन्ध किया जायगा तो जर्मनी किस खेतकी मूली है, संसारकी कोई सत्ता साम्राज्यको स्पर्श न कर सकेगी। उपनिवेश विलायतमें अपने प्रतिनिधि भेजकर अपना पक्ष प्रबल कर रहे हैं। यह ध्यानमें रखकर हमको भी काममें लग जाना चाहिये।

प्रयत्नके बाद परमात्मा

है, बकबकके बाद परमात्मा नहीं। साम्राज्य हमें चाहिये, साम्राज्यकी सहानुभूतिसे ही हमारा भाग्योदय होनेवाला है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

अंग्रेजोंको निकाल बाहर करो, यह कहनेवाला मूर्खोंमें ही गिना जायगा। हमारे देशमें पार्सी आये, मुसलमान आये, लाखों लोग आये, उन्हें हमने कब निकाल बाहर किया? अंग्रेज यहां आये और रह गये तो उससे हमारा लाभ ही है। हमारा कहना सिर्फ इतना ही है कि राज्यका शासन इस देशके रहनेवालोंके ही हाथमें होना चाहिये। इस देशकी भलाईके लिये होना चाहिये। 'यह राजद्रोही है' कहकर हमारे काममें रुकावट डालनेका समय अब गया। विलायतके लोगोंको विश्वास हो जाय तो यह कह सकते हैं कि आगे बढ़नेका बहुत कुछ काम हुआ। मुझे आशा है,

आगामी वर्ष कांग्रेसमें मैं यह देख सकूंगा कि हमारा कदम आगे बढ़ा है, शान्ति और सुखका मार्ग खुल गया है। परमात्मा आपके प्रयत्नको यश दें यह प्रार्थना कर और आपलोगोंने शान्तचित्तसे मेरा भाषण सुन लिया इसलिये पुनः आप लोगोंको धन्यवाद देकर मैं आपसे बिदा लेता हूँ।

———o———
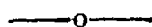
स्वराज्य।

(यवतमाल, ता० ६ जनवरी १६१७)

सभापति महाशय व उपस्थित बंधुभगिनियो,

आप लोगोंने यहाँ बुलाकर मेरा जो सन्मान किया है और जो मानपत्र दिया है उसके लिये मैं आप लोगोंका अत्यन्त ऋणी हूँ। मैं जब यहां आया तब यह नहीं समझता था कि मुझे इस प्रकारसे कृतज्ञता प्रकट करनी होगी। मेरी छोटी बुद्धिमें यह आता है कि मुझे धन्यवाद देने हों तो अन्य प्रकारसे दिये जाने चाहिये। मैं यहां किसी अपने कामसे नहीं आया हूँ। कुछ उद्योग होना चाहिये यह मेरी इच्छा है और आपके इस मानपत्रसे मालूम होता है कि उस उद्योगसे आप प्रसन्न हैं। हम लोगोंका क्या आन्दोलन है सो भी यवतमालके नागरिकोंको मालूम हो चुका है और यह सभा देखकर विश्वास होता है कि उस आन्दोलनमें आपलोग पूर्णरीत्या सहायक होंगे। हमारे इस उद्योगके लिये किस सहायताकी अपेक्षा है, किन साधनोंकी आवश्यकता है, इस समय हमारी क्या अवस्था है इ० बातें आज मैं बतलानेवाला हूँ।

१०-१२ वर्ष पहिले मैं यहां आया था। उस समय और इस समयकी देशकी अवस्थामें बहुत बड़ा अन्तर है परमात्मा ने वह समय भी मुझे दिखलाया है इसके लिये मैं उसे धन्यवाद देता हूँ। पहिले राजनीतिक सुधारके विषयमें बड़ा ही तीव्र मतभेद था। दादा भाई नौरोजीने कलकत्तेमें अपने भाषणमें स्वराज्यका उल्लेख किया और स्वराज्यका प्रस्ताव भी वहां निर्द्धारित हुआ और स्वराज्य हमारा ध्येय (लक्ष्य) निश्चित हुआ। स्वराज्य संस्कृत शब्द है तो भी उसका अर्थ रूढ़ है और वह हर किसी पर प्रकट है। स्वराज्यका अंग्रेजी शब्द 'होमरूल' है। स्वराज्यका अर्थ अति सरल भाषामें यह है, 'अपने घरका कारबार आप ही देखना'। कभी कोई अपने घरका कारबार किसी गुमाश्ते या दलालको सौंप देता है? गुमाश्ता एक नौकर है। पुरुष जब बालिग हो जाता है तो वह अपना कारबार आप देखना चाहेगा ही। यह बिलकुल सीधी बात है। अपना कारबार देखनेका उन्हीं लोगोंको हक नहीं दिया जाता जो पागल हैं या नादान हैं; पर यह पागलपन अदालतमें साबित करना पड़ता है। पागलपन मान लेनेहीसे काम नहीं चलता; उसके लिये सबूत चाहिये और यह सबूत दूसरे फरीकको देना पड़ता है। ऐसा कानून है—ऐसा हक है। मैं अपने घरका प्रबन्ध किसी नौकरको सौंप दूँ तो नौकरपर तो मेरी हुकूमत होनी चाहिये। घरका ख्याल ही जरा और फैलाइये तो यह गाँव, यह तालुका, यह जिला, यह देश मेरा ही घर है। हिन्दू, मुसलमान, मारवाडी, गुजराती, मराठे और मद्रासियोंके मनमें यह ख्याल पैदा हुआ और इसलिये एक होकर हमलोगों ने स्वराज्य मांगा है।

यह स्वराज्य तत्व मनुष्यके जन्मही से चला आता है। होमरूल शब्द नवीन है पर कल्पना अति प्राचीन कालसे चली आती है। निर्वाचनका स्वरूप चाहे नवीन हो; पर गाँवका प्रबन्ध वंशपरंपरागत ही रहता था। हमारा कानून क्या है, मनुस्मृति। यह मनुस्मृति किसी राजाने नहीं बनाई। महात्मा, साधू और नेताओंके परामर्शसे ही कायदे बना और बदला करते थे। स्वराज्य, वैराज्य आदि शब्द वेदोंमें है और उनकी कल्पना कुछ भिन्न होनेपर भी है प्राचीन ही। हिन्दुस्तानमे कई बादशाह हुए; पर उन्होंने इन ग्राम संस्थाओंको कभी नहीं तोड़ा प्रत्युत् उन्हें बढानेकी ही युक्ति की। मनुस्मृतिमें यह कायदा है कि व्यवसाय संबंधी विवादोंका फैसला गाँव ही किया करें। शकुन्तलाको दुष्यन्तने फिड़कार दिया पर निर्णय पंचोंने किया। कानूनने राजाको

'व्यवहारान् नृपः पश्येत् विद्वद्भिः ब्राह्मणैः सह'

यह स्पष्ट आज्ञा दी है। व्यवहार निर्णयका यहां यह प्रबन्ध था कि राजा 'ज्यूरी' की सलाहसे काम करे। जिस हिन्दुस्थानने स्वराज्य किया है और जिसमें अनेक साम्राज्य भी हो गये उसमें रहनेवालोंसे यह कहना कि 'तुम लोग अभी कुछ जानते नहीं' नीग्रो मुकर्रर करनेके समान ही अपमान जनक है। स्वराज्यतत्व अति प्राचीन है, यह बात प्रमाणोंसे प्रमाणित की जाचुकी है। राजा यह हो, वह हो, कोई हो, इसको कोई नहीं देखता था; देखते यह थे कि वह हमारे अधिकारोंमें दखल तो नहीं देता।

अंग्रेज सरकारको एक छत्री राज्य करना था इसलिये उन्होंने इस प्राचीन पद्धतिको तोड़ दिया। हमारा यह कहना नहीं है कि हमें अंग्रेज सरकारका राज्य नहीं चाहिये।

हम सरकारसे कहते यह हैं कि हमारे हक हमें दो। हमारी सरकारने म्युनिसिपालिटीके कुछ अधिकार देकर हमारे तत्वको अंशतः स्वीकार किया है। इसीको विस्तृत कीजिये, यही हमारा कहना है। वर्तमान सम्राट्के राज्यमें हस्तक्षेप हम नहीं करना चाहते, बल्कि इसी सरकारसे हमें अपने हक मांग लेने हैं। इतना साफ हम कह रहे है, अब इसमें राजद्रोह कहां रहा? यदि पिताके पास लड़का यह जिद पकड़े कि हमें दो रुपया और चाहिये तो क्या यह पितृद्रोह हो जायगा? लड़का बालिग़ होनेपर वह अपने पितासे अपने अधिकार चाहता है—अधिकार नहीं मिलते तो दावा भी करता है—अदालतमें दावा चल सकता है। यही विचार कुछ और विस्तृत करनेसे स्वराज्य होता है। १०० वर्ष पहिले हम स्वराज्यके लायक थे। बीचमें हमने अधिकारोंका अमल नहीं किया इसलिये नालायक नहीं हुए। हमें कुछ गदहेका घोड़ा नहीं बनाना है। असलमें घोड़ा है और उसे आज भी घोड़ा ही कहते हैं। दुर्भाग्यसे, फूटसे या ईश्वरको हमारी उन्नति करनी थी इसलिये हमें अपने अधिकारोंको कुछ कालके लिये छोड़ देना पड़ा। अब हम लोग पाठशालामें पढ़नेवाले विद्यार्थी नहीं रहे, अब गृहस्थाश्रम करने लगे हैं। इसलिये हमारे अधिकार हमें दीजिये यही सरकारसे मांगना है। इसमें राजद्रोह नहीं है सो कोर्टने ही बतला दिया है। इसमें सरकारसे डरनेकी भी कोई बात नहीं है। गत दस वर्षोंमें इतना परिवर्तन हो आया है और इसका दृश्य स्वरूप लखनऊमें देख पड़ा। 'पेड़ काटनेकी इजाजत दो,' 'नमकका कर कम करो,' ये जरा जरासी बातें गत ३० वर्ष हम लोग सरकारसे मांगते आये हैं। इन बातोंको अगर सरकार मंजूर

कर लेती तो यह नौबत ही न आती। अपना भोजन आप बना लेनेका सबको अधिकार है। इसमें 'नमक ही ज्यादा पड़ गया' और वह 'तीता ही अधिक हुआ' यही अबतक नौकरसे कहते आये पर हमारे मनका भोजन तैयार नहीं होता इसलिये हम रसोई बनानेका ही हक मांग रहे हैं। हमें मिर्चोंकी जरूरत न होगी तो हम न छोड़ेंगे—हिन्दुस्थानमें मिर्चे न खानेवाले बहुत लोग हैं! पर यह हमारा अधिकार है। सौभाग्यकी बात यह है कि राष्ट्रीय सभाने इस बातको मंजूर किया है। इस मांगको लखनऊमें निश्चित स्वरूप भी आ गया है।

विरुद्ध पक्षका अबतक यह कहना था कि स्वराज्य इसलिये मांगा जाता है कि जिसमें अंग्रेजोंको निकाल बाहर करें। पर यह हमारे कहनेका विपर्यास था। राष्ट्रीय सभाने आगा पीछा सब सोच समझकर सबके परामर्शसे यह निश्चित किया है कि स्वराज्य हमारी १०० में ५० आशायें है। यही मैं चाहता हूं और इसके लिये मैं प्रयत्न करूंगा। मुझे आशा है कि अब सड़े गले आक्षेप नहीं आ सकते। "यह स्वराज्य मांगता है इसलिये यह राजद्रोही है, इसे पकड़ कर जेल भेजो" यह कहना अब व्यर्थ है। क्या हिन्दु और क्या मुसलमान, क्या नरम और क्या गरम सबने एक हृदयसे स्वराज्यका प्रस्ताव निर्धारित किया है। अब भेद केवल यही रहा कि, 'तुम उद्योग करोगे, या मै करूंगा!'

स्वराज्यसे यह मतलब है कि व्यवस्थापक सभामें लोक पक्षके सभासदोंका प्राधान्य हो और कार्यकारिणी सभा—Executive Council पर व्यवस्थापक सभाका पूरा अधिकार हो। यह बात प्रस्तावमें स्पष्ट की गयी है इसे ध्यानमें

रखिये। चिन्ह अवश्य कोई भी हों पर चुटिया हमारे हाथमें होनी चाहिये। इस चुटियामें सिरके और बाल नहीं आते। कमसे कम चार अंगुल चुटिया हमारे हाथमें होनी चाहिये और यही स्वराज्यके प्रस्तावका तात्पर्य है। राष्ट्रीय सभाका यह प्रस्ताव हमें अभी मांग लेना चाहिये, आगेके लोग आगे देख लेंगे। धीरे २ सुधार करना और ४।५ सौ वर्षमें स्वराज्य दे डालना यह पहिलेकी वहकायेबाजी थी। हमें अपनी जिम्मेदारीको निबाहना ही होगा। निश्चित हुआ प्रस्ताव हमें युद्धके उपरान्त तुरन्त मिलना ही चाहिये—यह हमारा कर्तव्य है। उपनिवेश विलायतके शासन कार्यमें इससे अधिक अधिकार मांग रहे हैं। उसकी तुलनामें हमारी आजकी मांग बहुत ही अल्प है। मांग निश्चित हुई और वह कब पेश करनी है यह भी लखनऊमें निश्चित हो चुका है। अब इसका तीसरा भाग उद्योग का है। यह उद्योग, मुझे आशा है, कांग्रेस कमसे कम आगामी वर्ष निश्चित कर देगी। प्रस्ताव किया और उसे पढ दिया, इतनेहीसे उद्योग नहीं हो गया।

मैं कर देता हूं, मैं ही बतलाऊँगा, इसका क्या करो। यह भाव अभी प्रत्येक सज्ञान स्त्रीपुरुषमें नहीं उत्पन्न हुआ है। कोई २ कहते हैं, 'हमलोग पहिले पहल गलती करेंगे,' पर गलती करना मनुष्यमात्रके लिये स्वाभाविक है। बड़े आदमी क्या भूल नहीं करते? हमें भूल करनेका भी अधिकार चाहिये, और भूल सुधारनेका भी अधिकार चाहिये, यह हम चाहते है। बिना गिरे लड़का चल नहीं सकता। तुम उस लायक होगे तब तुम्हें अधिकार देंगे यह कहना कुछ कुछ यही कहनेके बराबर है कि, 'नहीं देंगे।' लायकी या योग्यताका

कोई थर्मामीटर नहीं होता, न उसका माप किया जा सकता है। योग्यताकी कोई शर्त हो तो हमलोग प्रयत्न भी करें—स्वयं उसका पालन करेंगे और विरुद्ध जो लोग हैं उनकी दाढ़ीको कहिये तो हाथ लगावेंगे, सरकार यह शर्त भी नहीं बतलाती। व्यर्थही अयोग्य कहनेसे क्या मतलब ?

ध्येय निश्चित हुआ—मार्ग वैध प्रमाणित हुआ। यहां तक सब विघ्न दूर हुए और मार्ग निष्कंटक हुआ है। अब उद्योगमें लग जानेका समय है। उद्योगमें यश भी मिलनेकी संभावना है यह भी स्मरण रखिये। विघ्नोंकी कहिये तो वे तुम्हें घेरे हुए हैं। पूर्ण सिद्धी जबतक प्राप्त नहीं होती तब-तक विघ्न आते ही रहेंगे। मैं कहता हूं, विघ्न भी क्यों न आवें ? तत्वज्ञोंका कहना है कि, 'इस संसारमें दुःखका अंशही अधिक है। दुःखके बिना सुखमें भी लज्जत नहीं आती। मनमें ऐसी भावना हो जानी चाहिये कि हमने जो मांगा है वह यदि हमें न मिला तो हम लोग मूर्ख गिने जायंगे। पिछली बातोंको याद करनेकी कोई जरूरत नहीं है। आज एका हुआ है। अब स्वराज्य संघ (होमरूललीग) या कांग्रेस, जो कोई उद्योग करे उसकी इस काममें यथा-शक्ति सहायता करना और वह धैर्यके साथ करना आपका कर्तव्य है। यह मत कहिये कि तिलक स्वराज्य मांगते है इसलिये मै भी मांगता हूं। मैं अपने अधिकार मांगता हूं, मै अब बालक नहीं या पागल भी नहीं। अपने अधिकारोंके लिये मैं पात्र हूं, मैं स्वराज्यवादी हूं, धैर्यके साथ ऐसा कहिये। मनको मजबूत बनाइये और इस बातके लिये तैयार कीजिये कि मेरे उद्योगमें यदि विघ्न उत्पन्न हुए तो मै सर्वस्व देकर उन्हें दूर करूंगा। इसमें किसीसे बैर नहीं, किसीसे द्वेष नहीं

और सरकारसे भी हमारा कोई मनमुटाव नहीं। कोई तुम्हें रोके तो कहो, साफ साफ कह दो कि, 'यह मेरा अधिकार है, यह मेरा धर्म है।' अधिकार—हकका पालन करना ही ईश्वरकी पूजा है। यह आप न करेंगे तो ईश्वरकी आज्ञाके उल्लंघनका पाप आप करेंगे! 'यह मेरा धर्म मुझे जन्मसे ही प्राप्त हुआ है इस दृढ़ विश्वास, निश्चय और धैर्यके साथ उद्योगमें लग जायंगे तो आप लोगोंका उद्योग यशस्वी हुए बिना न रहेगा।

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'

यह गीताका कहना है। आवश्यकता पड़ने पर मरना भी होगा। मरना याने अवैध या उच्छृंखल व्यवहार नहीं, यह ध्यानमें रखिये। 'आपत्कालमें भी अपना धर्म न छोड़ना यही जीने जागनेका लक्षण है। यह तत्व जिसे मालूम हो गया उसीको हिन्दूधर्म विदित हुआ।' धर्म केवल मन्दिरमें जाकर पूजा करना नहीं है। अनन्य होकर स्वराज्यके लिये प्रयत्न करना ही वर्त्तमान कालका कर्त्तव्य है। आंखें खोलकर चारों ओर देखिये तो देख पड़ेगा कि ईश्वर आपकी सहायताके लिये तैयार है।

युद्धने हमारी राजभक्तिको प्रमाणित कर दिया है। हमारे शूरसिपाहियोंने सम्राट्के लिये अपने प्राण दिये हैं। शासकोंके अन्तःकरणमें भी परिवर्त्तन करनेकी सदिच्छा उत्पन्न हुई है। उपनिवेश अपने अधिकारोंको बचानेकी फिक्रमें हैं। ऐसा अनुकूल समय होते हुए भी आप लोग सो रहेंगे और आपको झकझोर कर जगाने वालेको गालियां देंगे तो

यह आपकी मूर्खता होगी। ईश्वरका काम है, यह स्मरण रखिये। लार्ड सिडनहम और ऐंग्लो इंडियन समाचार कहते हैं, 'इन भारतवासियोंको अब कुछ भी न दिया जायगा, इस आशयका एक घोषणापत्र निकालकर उन्हें पूर्ण निराश कर देना चाहिये।' पर इन अकलमन्दोंको इतना भी समझमें नहीं आता कि, 'घोषणापत्रसे किसीकी निराशा नहीं हुआ करती।' इन बुद्धिमानोंको मनुष्य स्वभावका परिचय नहीं है। जिनके अधिकार कम होनेवाले हैं उन्हीं का यह कहना है इस बातपर ध्यान देनेसे ही सब रहस्य प्रकट हो जायगा। नौकर कोई हो—हिन्दुस्तानी हो या यूरोपियन हो—हुकूमत हमारी होनी चाहिये। बाजारमें जाकर पैसा फेंक देनेसे, यह न समझिये कि, हमें हक मिल जायँगे। उत्साह और धैर्य जागृत होना चाहिये। बड़ी बड़ी मुसीबतें आवेंगी—पर स्मरण रखिये कि परमात्मा अनुकूल है और तुम्हें हाथ पैर हैं, बुद्धि है। सूर्यचन्द्रको भी राहुने छोड़ा नहीं। पर ग्रहण छूटते ही वे फिर प्रकाशमान होते हैं। वे अपना कर्त्तव्य नहीं भूलते।

मेरा व्याख्यान समाप्त हुआ। अपनी बुद्धिके अनुसार जितनी सरल रीतिसे और जितने प्रकारसे विवेचन हो सकता था, मैंने किया है। इसपर भी आपके मनमें मेरी बात न जमी हो तो यह दोष मेरा है—कार्यका नहीं। यवत-मालवालोंने इससे पहिले कठिनाइयोंको झेलकर करतब कर दिखाया है। अब भी उसी उत्साह, निश्चय और धैर्यसे उद्योगमें लग जाइये तो परमात्मा आपको यश देगा। परमात्मा आपको यश दे यही विनयकर मैं आपसे छुट्टी चाहता हूँ।

बम्बई प्रान्तिक परिषद् ।

स्थान—नासिक, ता० १३-५-१७ का अधिवेशन ।

लो० तिलकका स्वराज्यके प्रस्ताव पर व्याख्यान ।

परिषद्के स्वराज्यके प्रस्तावकी पुष्टि करनेके लिये लोकमान्य उठे। उस समय करतलध्वनिकी गड़गड़ाहट तथा 'हिन्दमाताकी जय' 'शिवाजी महाराजकी जय' 'तिलक महाराजकी जय' इस प्रकारके जयजयकारसे मण्डप गूँज उठा। मण्डप शान्त होनेके पश्चात् लोकमान्यका निम्न-लिखित भाषण हुआ:—

सभापति महाशय व उपस्थित सज्जनो !

स्वराज्यके प्रस्ताव पर बैरिस्टर जयकरने अपने भाषणमें कहा कि, "पहिले तरुण और पश्चात् वृद्ध" उनके ये विचार मुझे बिलकुल मान्य नहीं हैं। मैं वयके मानसे कितना ही वृद्ध क्यों न दिखाई दूं तोभी विचारकी दृष्टिसे कमसे कम आपके बराबर तरुण अवश्य हूं (करतल ध्वनि) यह

अपना तरुणका हक

मै नहीं खोना चाहता। विचारोंकी बाढ़ रुकी—यह स्वीकार करना अर्थात् इस प्रस्तावके ऊपर भाषण करनेका अपना हक गवाँ देना है। मैं जो कुछ बोलनेवाला हूं—उपदेश करनेवाला हूं, वह नित्य तरुण है (करतल ध्वनि)। शरीर वृद्ध होता है पर आत्मा कभी वृद्ध नहीं होता। आत्मा नित्य है। स्वतन्त्रता आत्मा है। स्वतन्त्रता कभी वृद्ध नहीं होती (करतल ध्वनि)। शरीरको वृद्धावस्था प्राप्त

होगी, वह दुर्बल होगा, मर भी जायगा। परन्तु आत्मा अविनाशी, अमर है। परिस्थितीके अनुसार कभी कभी आन्दोलनमें कमताई मालूम होने लगती है—कुछ कालके लिये आन्दोलन बंद भी हो सकता है, परन्तु उसमें आत्मा जो स्वतन्त्र है, वह अविनाशी, नित्य है, वह लोगोंको अपना पद प्राप्त करानेवाला है। आत्मा जो परमेश्वर है, उससे तादात्म्य हुए बिना मनको प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती। एक शरीर जब जीर्ण हो जाता है तब आत्मा दूसरा शरीर धारण करता है। 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-न्यन्यानि संयाति नवानि देही' यह गीताका सिद्धान्त है। आत्मा ही परमेश्वर है यह हिन्दुस्थानका प्राचीन—पुराना तत्व है। यही वेदान्त है। केवल गीताका पाठ करना वेदान्त नहीं है। स्वतन्त्रता आत्माका धर्म है। स्वतंत्रता है तो आत्मा है। यह तत्व अविनाशी होनेके कारण उसे किसीका भय नहीं है। अतः स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध हक है। जबतक यह आत्मा मेरे हृदयमें जागृत है तबतक मैं वृद्ध नहीं हूँ। आपलोग मुझे वृद्ध न कहिये (हँसी) नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः॥ ऐसा गीतामें आत्मा सम्बन्धी वर्णन किया हुआ है। इसमें मैं आज

'नैनं दहति सी. आई. डी.'

यह नवीन पांचवां पद जोड़ता हूँ। (करतल ध्वनि) यहां पर सामने सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब विराजमान् हैं—कलेक्टर साहबको आज निमंत्रण दिया था पर वे आये नहीं—वे यहां पर रिपोर्टर साहेब आस्तीनें चढ़ाकर रिपोर्ट ले रहे हैं, इन्हें

भी मैं यही तत्व बतलाऊंगा। (करतल ध्वनि) यह तत्व किसीके मारे मर नहीं सकता, यह आप ध्यानमें रखिये। हम लोग स्वराज्य मांगते हैं अर्थात् वह हमें मिलना ही चाहिये। जिस शास्त्रका अन्त स्वराज्यमें होता है वही राजकीय नीतिशास्त्र है। और जिसका अन्त दास्यत्वमें होता है वह राजनीति ही नहीं है। राजनीति देशका वेदान्त है। आत्मा तुममें है ही। मैं केवल उसे जागृत करना चाहता हूं। जो राष्ट्र उद्योग करनेको प्रस्तुत नहीं है, उसे इस वेदान्तका उपदेश करना तथा उसके आत्माको जागृत करना आवश्यक है। कुछ अज्ञानसे, स्वार्थसाधु लोगोंके प्रयत्नसे या खुदगर्जीके कारण जो एक प्रकारका परदा बीचमें आगया है उसे दूर करनेके लिये मैं यहां आया हूं। यह परदा दूर होते ही राष्ट्र अपना उद्योग प्रारंभ करने लगेगा। राजकीय नीतिके दो भाग हैः—(१) दैवी, और (२) आसुरी। आसुरीमें राष्ट्रके दास्यत्वका समावेश है। बैरिस्टर जयकरने कहा कि, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको सदाके लिये दास्यत्वमें नहीं रख सकता। मैं उनसे एक कदम और आगे बढ़कर यह कहता हूं कि, एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रको दास्यत्वमें रखनेका हक ही नहीं है। मिलका यह सिद्धान्त है कि, No nation has a moral right to keep another in slavery. राष्ट्रको दास्यत्वमें रखना नीतिकी दृष्टिसे पातक है। धार्मिक दृष्टिमें भी ऐसा करना असंभव है। इस तत्वकी रक्षा करनेवाला राष्ट्र ईश्वरके यहाँ भी पापी समझा जायगा। अपना हक क्या है यह स्पष्ट कहनेका साहस किसीमें होता है, किसीमें नहीं। इस तत्वका ज्ञान होना ही राजकीय और धार्मिक शिक्षा है। राजकीय और धार्मिक, ये शिक्षाके भिन्न

प्रकार नहीं हैं। वे दोनों एकही हैं। आपको यह जो भिन्नत्व मालूम होता है वह केवल परकीय सत्तासे। सब प्रकारकी Philosophies इस राजकीय नीतिशास्त्रके अंतर्भूत हैं। आपलोग स्वराज्य केवल भूल गए है उसीको जागृत करनेके लिये मै यहाँपर आया हूं। स्वराज्य कौन नहीं जानता है? स्वराज्य किसे नहीं चाहिये? स्वराज्य आपलोगोंको मालूम है, परंतु स्वराज्यके हक पूर्णतया मालूम न हो एतदर्थ उसके आगे परदे छोड़े हुए है। इन्हीको मै दूर करना चाहता हूं। आपके घर यदि मै रसोई पकाऊं तो क्या काम चल सकता है? स्वराज्यका हक और कुछ नहीं। अपने घरकी (कारोबार) व्यवस्था करनेका हक मुझेही चाहिये यही वह स्वराज्य हैं; इसीका नाम स्वराज्य है। मूर्ख और नाबालिक लड़केको अपने घरकी व्यवस्था देखनेका हक नही मिलता। यहां पर परिषद्में २१ वर्षके ऊपरके लोग आते हैं, ऐसा नियम है। फिर क्या आपलोगोंको यह मालूम होता है कि हमें अपनी सत्ता नहीं चाहिये। (नही की आवाज)— क्या आप लोग मूर्ख है?—क्या आप अर्भा लड़के हैं? नहीं न? फिर आप लोगोंको सब व्यवहार मालूम होते है, हक मालूम होता है, स्वराज्य मालूम होता है। (करतलध्वनि) जो लोग आप लोगोंको मूर्ख समझते है वे स्वार्थी हैं। अपना जो नैसर्गिक जन्मसिद्ध हक है उसे मांगनेके लिये आपलोग डरते हैं यह ठीक नही है। हिन्दु—मुसलमानोंमें एकता हो गई है। नरम और गरम दलका भेद भी अब न रहा। राष्ट्रीय सभा (Congress) ने भी स्वराज्यकी मांग की है। ऐसी स्थितिमें हम भी स्वराज्यकी मांग क्यों न करें? हमारी 'पात्रता' के सम्बन्धमें यदि पूछा जाय तो

हम लोगोंने परदेशमें भी राज्य किया है। केवल झूठी बलाह, धमकी, भय और लालच दिखलाकर हमारी मांगका विरोध करनेवाले चतुर और राजनीतिज्ञ लोग अंग्रेजोंकी राजनीतिमें धब्बा लगा रहे हैं। (करतलध्वनि) इङ्गलैण्डने वर्त्तमान युद्ध क्यों आरंभ किया? बेलजियमके स्वातंत्र्य—रक्षाके लिये इङ्गलैण्ड युद्धमें पड़ा न? जो इङ्गलैण्ड आज खुद हिन्दुस्तानकी सहायतासे एक छोटेसे राष्ट्रके रक्षणका काम कर रहा है वह इङ्गलैण्ड यह किस प्रकार कह सकता है कि, हम लोगोंको स्वराज्य न मिले। हमारे आन्दोलनको दुर्जन लोग नाम धरते हैं। दुर्जन किसे नाम नहीं रखते हैं? खुद परमेश्वरको भी नाम रखनेवाले लोग—तथा उसकी निन्दा करनेवाले लोग पाये जाते हैं, फिर स्वराज्यकी बातही क्या है? किसीकी भी परवाह न करते हुए देशके आत्माकी रक्षा करनेके लिये हमें प्रयत्न करना चाहिये। इसीमें जन्म-सिद्ध हककी रक्षा तथा देशका कल्याण है। (करतलध्वनि)

इसके पश्चात् लोकमान्य कान्फरेन्सके स्वराज्यके प्रस्तावकी रचनाके सम्बन्धमें बोलने लगे। यह कान्फरेन्स कांग्रेसके इस प्रस्तावको मंजूर (Affirm) करती है, ऐसी श्री० समर्थ महाशयकी शब्द रचना है। परन्तु यह उनकी भूल है। प्रस्ताव मंजूर करनेका कान्फरेन्सको क्या अधिकार है? मैं समर्थ महाशयसे पूछता हूं कि, यह उनकी भाषा नियमानुकूल है या नियम विरुद्ध (out of order)? कहना चाहिये। We loyally accept राष्ट्रीय सभा प्रांतिक परिषद के पितृस्थान पर है। पिताकी आज्ञा लड़का मंजूर करे इस प्रकारकी भाषाका उपयोग करना क्या योग्य होगा? We have no right to affirm पिताकी आज्ञा शिरोधार्य मानकर

उसे पूर्णतया पालन करना ही लड़केका कर्त्तव्य है। (करतलध्वनि) 'पिताकी आज्ञा' का अर्थ नासिकके लोगोंको पूरी तौरसे ज्ञात है। केवल पिताकी आज्ञाके लिये श्रीरामचन्द्रजीने १२ वर्ष वनवास स्वीकार किया। श्रीरामकी अपने पितापर इतनी अचल निष्ठा थी। इसलिये श्रीरामचरित्रके श्रीरामकी पितृभक्तिके अनुसार कांग्रेसका मंजूर किया हुआ यह प्रस्ताव अपनेको एक निष्ठासे और शपथ पूर्वक शिरोधार्य करना चाहिये। राष्ट्रीय सभाने—पिताने—स्वराज्यका प्रस्ताव मंजूर किया, मानों हमारे पिताने हुकुम जारी किया है। राष्ट्रीय सभा अब अपनी आज्ञा नहीं बदलती।

हमारे पिता दो बार नहीं बोलते !!

अब यह पिताकी आज्ञा पालन करनेमें हमें मृत्यु भले ही आवे, कैसी ही आपत्ती आवे, वनवास भोगना पड़े, अथवा अज्ञातवास भले ही स्वीकार करना पड़े। हमलोग इस प्रस्तावको अमलमें ले आनेके लिये हरेक प्रयत्न करेंगे, यह हमारा निश्चय है। यह प्रस्ताव मंजूर करना याने तालियां बजाना अथवा हाथ उठाना नहीं है। यदि सचमुच यह प्रस्ताव मंजूर करना हो तो उसे कसम खाकर अंतःकरणसे मंजूर कीजिये। (करतलध्वनी) परन्तु उद्योगके बिना स्वतंत्रता-देवीके अधिष्ठानके लिये श्रीरामचन्द्रकी नाई अरण्यवास तथा अज्ञातवास सहन किये बिना स्वराज्यकी प्राप्ति होना शक्य नहीं है। हमारे परिश्रमका फल सम्भव है कि इस पीढ़ीको न प्राप्त हो परन्तु अगली पीढ़ीको होगा। आत्मा अमर है। जिस प्रकार श्रीरामजीका निश्चय अटल था, उसी भांति हमारा भी रहेगा। यदि श्रीरामजीके तरह वनवाससे हम न डरेंगे

तो हमें भी स्वराज्य मिलेगा। व्रत और उद्यापन ये मंत्रोंके अंग हैं। केवल मंत्रोंके उच्चारसे सिद्धि नहीं होती। उनकी सिद्धीके लिये, उनकी कुछ विधि है-आचरण है-और उनके लिये कुछ नियमोंको पालन भी करना पड़ता है। परमेश्वरने समयमें फेर बदलकर—अनुकूल समय निर्माण किया है। यह ईश्वरकी हमारे ऊपर कृपा ही है। ऐसे अवसर पर यदि आप उद्योग न करेंगे तो यही कहना पड़ेगा कि वह दोष सर्वथा अपना ही है। हमें इस प्रस्तावकी केवल स्वीकृति ही नहीं चाहिये। हमारे आन्दोलनकी सिद्धि हो ऐसे उद्योगकी आवश्यकता है। यदि आप लोग यहां केवल तीन दिन मज़ा अथवा गुलछर्रे उड़ानेके लिये एकत्र हुए हों तो आपलोगोंकी प्रस्तावकी स्वीकृतिकी कोई आवश्यकता नहीं है। निश्चय रखिये! यदि इसके फल हमें खानेको न मिले तौभी हमारे लड़कोंको अवश्य मिलेंगे। राष्ट्रको अब औषधि पहुँच गई है। श्री॰ समर्थकी सूचनासे श्री॰ जयकरने यह कहकर अपनी बैरिस्टरी की कि अलकोहॉलिक (alchoholic) उपाय नहीं चाहिये। स्वतः बैरिस्टर होकर भी उन्होंने भूल की। अलकोहॉलिक शब्द बुरा है अतः उसके स्थानमें 'मात्रा' शब्दका उपयोग होना चाहिये। समर्थ महाशयको देशी औषधिका परिचय न होनेके कारण उन्हें 'मात्रा' शब्दकी याद न आई। मैं कहता हूं कि वर्त्तमान परिस्थिति पर तथा आपलोगोंकी सुस्त स्थिति पर त्रैलोक्य चिंतामणी सरीखी रामबाण मात्राकी योजना करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। इङ्गलैण्डके लोगोंकी बुद्धि अब पलट गयी है यह भी परमेश्वरका उपकारही है। अब हमारा प्रयत्न निष्फल नहीं

होगा, यह हमारा विश्वास है। आजतक इङ्गलैण्डको इस बातका घमण्ड था कि बगैर हिन्दुस्थानकी सहायताके हम साम्राज्यकी रक्षा करलेंगे। पर यह राज सत्ताका घमण्ड अब उतर गया है। यह क्या हमने किया? इङ्गलैण्डको जो अब यह प्रतीत होने लगा है कि साम्राज्य घटनामें कुछ फेरफार करना चाहिये, यह भी ईश्वर ही की कृपा है। (करतलध्वनी) क्यों! तालियां क्यों बजाते हो? तो फिर क्या यह स्थिति आपने उत्पन्न की! मि० लॉइड जॉर्ज स्वयं यह बात कहते है कि बगैर हिन्दुस्तानकी सहायताके इङ्ग-लैण्डका काम नहीं चल सकता। (करतलध्वनी) और उनके कथनानुसार युद्धके पूर्वके सब तत्वोंका विनाश होगा। प्रचलित राज्यपद्धति बदलनेका समय निकट आगया है। कुछ नवीन ही परिस्थिति उत्पन्न हुई है। पहिलेकी सब चतुर राज्यकल्पनाएं तथा पांचो पक्षकी निपुणता आज अधूरी पड़ी हैं, यह खास विलायतके लोग समझ रहे हैं। इस समय हमें इङ्गलैण्डको सूचित करना चाहिये कि हम हिन्दुस्थानके तीस कोटि लोग साम्राज्यके लिये मरनेको तैयार हैं (करतलध्वनी) मेरा ऐसा विश्वास है कि इङ्गलैण्डके लोग यहाँ के ब्युरॉक्रसीके अनुसार तुम्हारा कहना (माँग) अमान्य नहीं करेंगे। हमारे (हिन्दुस्तानी) वीर सिपाहि-योंने फ्रेंच रणभूमि पर लड़कर अंग्रेज़ सिपाहियोंके प्राण बचाए हैं। हमारे सिपाहियोंने इस समय शौर्य दिखलाया है। आजतक जो अंग्रेज़ लोग हिन्दुस्थानियोंको 'दास' समझते थे वे आज हम लोगोंको 'बन्धु' कहने लगे हैं। यह 'बन्धु' भाइयों की पहचान वे भूलते नहीं हैं इतने ही

में आप लोगोंको अपनी मांग उनके सम्मुख ज़ोरोंसे और निश्चयसे रखनी चाहिये। और अंग्रेज़ लोगोंको इस बातका आपको भरोसा-इत्मिनान-दिलाना चाहिये कि यदि हम लोग आपके पीछे खड़े होंगे तो साम्राज्य की ओर वक्रदृष्टीसे देखनेका किसी को साहस न होगा। इसके लिये आपने डेप्युटेशन भेजना नियत किया, परन्तु समय बीतता जा रहा है। इस समय प्रत्येक दिनकी एक एक घड़ी अमूल्य है। इस कार्यमें बिलकुल ढिलाई न होनी चाहिये। डेप्युटेशन शीघ्र क्यों नहीं भेजा जाता? आपको स्वराज्यका मंत्र मालूम हुआ है पर उसका व्रत नहीं होता। कॉंग्रेस कहती है "प्रस्ताव पास किया जाता है" We resolve-हम कहते हैं 'प्रस्ताव मंजूर करते हैं' We affirm और फिर सरकार भी कहेगी We hear हम सुनते है। यह सब अब बहुत हो गया। (करतलध्वनी) इस प्रकार की सुस्तीसे अब काम नहीं चलेगा। इसलिये अब शीघ्र उद्योग करने ही के लिये तैयार होना चाहिये। आप लोग इस राष्ट्रीय आन्दोलनको चाहे किसी नामसे पुकारिये उसे होमरूल कहिये, चाहे उसे सेल्फ गवर्नमेन्टके नामसे संबोधित कीजिए अथवा राजकीय सुधारके नामसे उसकी उपासना कीजिये, परन्तु उद्योग करनेकी यही संधि है। अब आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि इस प्रस्तावको अमलमें लानेके लिये कुछ भी न उठा रखिये। महाभारतमे लिखा हुआ है कि दैव पहिले मनुष्यकी बुद्धि पलटता है, तदनुसार इस समय परमेश्वरने बृटिश जनताकी बुद्धि पहिले ही पलटा दी है। उन्हें भी आजकल इस प्रकारके सुख स्वप्न हो रहे हैं कि हिन्दुस्थान-

को कुछ देना चाहिये। स्वराज्यका आन्दोलन बाकायदा है इस बातका निर्णय हाईकोर्टमें हो चुका है। हमारे स्वराज्यका यह अर्थ नहीं है कि हमें राजा नहीं चाहिए। ब्युरॉक्रेसी नहीं चाहिये यह भी हम नहीं कहते। हम-लोगोंका इतनाही कहना है कि ब्युरॉक्रेसी जो आजकल स्वतंत्र व्यवहार (कारोबार) कर रही है वह हमारे तंत्रसे हमारे मतानुसार होना चाहिये। यह बिलकुल सीधी सीधी हमारी माँग है। पग पग पर हमको जो अड़चनें आ पड़ती हैं इसकी जड़ यही है कि हमारे हाथमें सत्ता नहीं है। इन सब अड़चनोंकी गुरुकिल्ली स्वराज्यमें है। इस प्रस्तावको अन्तःकरणसे मंजूरकरके आप यह कसम खाइए कि आजसे हम लोग स्वराज्य प्रीत्यर्थ निश्चयपूर्वक उद्योग करेंगे और उस दिशामें उद्योग करना आरंभकर दीजिये। मैं आपको निश्चयपूर्वक कहता हूं कि आपके सर्व मनोरथ परिपूर्ण होंगे।

हिन्दी स्वराज्य संघ।

पहिली परिषद्।

हिन्दी स्वराज्यसंघकी पहली परिषद् ता: १७ मई सन् १९१७ को नासिकमें हुई। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रान्त, करनाटक आदि प्रान्तोंके सदस्य उपस्थित थे। संघके अध्यक्ष डॉ० बाप्टिस्टा उसी दिन प्रातःकाल वहां पधारे थे।

श्री० अध्यक्षका प्रास्ताविक भाषण होनेके बाद संघकी रिपोर्ट पढ़ी गई। इसके अनन्तर संघकी आन्तरिक व्यवस्था संबंधी कार्यकारी मंडल नियत किया गया और कुछ प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए।

इसके बाद अध्यक्षने लो० तिलकसे अपनी उपदेश—पूर्ण वक्तृता देनेके लिये प्रार्थना की। इसे स्वीकार कर लो० तिलकने इस प्रकार भाषण करना आरम्भ किया:—

यद्यपि कांग्रेसने स्वराज्यका प्रस्ताव मान लिया है, तोभी इससे स्वराज्य—संघकी आवश्यकता कम नहीं होती। स्वराज्यका यह प्रस्ताव मान्य होनेके पहले ही यह संघ स्थापित हो चुका था, और संघके सभासद यदि लखनऊमें उपस्थित न होते तो ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत होता या नहीं इसमें शंका ही है। यदि कांग्रेसका पिछले ३० वर्षोंका कार्य देखा जाय तो बहुतसे लोगोंके एकत्र होने, प्रस्ताव मान्य करने और फिर अपने २ घर लौट जानेके सिवा उसमें और कुछ भी विशेषता दिखाई न देगी। राष्ट्रीय सभाकी घटनामें बहुतसी प्रान्तिक और जिला कमेटियां है, पर इनमें काम कुछ भी नहीं होता। स्वराज्य विषयक प्रस्तावके अनुसार काम होने और इसके लिये एक कार्यकारी समिति नियत

करनेका स्वयं मैंने प्रयत्न किया था, पर आल-इंडिया-कांग्रेस कमिटीके मतमें इस प्रकारकी कमिटीका नियत करना घटनाके विरुद्ध होनेके कारण वह प्रयत्न सफल न होने पाया। पीछे आ. इं. कां. क. ने इस कामको प्रान्तिक कमेटियोंके सुपुर्द किया। बम्बईकी कमेटीने भी एक मंडल स्थापित किया, पर उसके सभासदोंको अबतक इस बातकी खबर भी नहीं दी गई है कि उनका नाम उक्त मंडलमें लिख लिया गया है। इस सुस्तीके कारण स्वयं संघने इस भारको अपने सिरपर ले लिया है। कांग्रेससे हमारा विरोध नहीं है, वरं कांग्रेसकी सहायता करनेका हमने दृढ़ संकल्प किया है। जब हम काम करने लगेंगे, और संघका कार्य—क्षेत्र बढ़ जायगा तब प्रान्तिक कांग्रेस कमेटियां संघ ही में समाविष्ट हो जायंगी या जब ये कमेटियां सच्चा काम करने लगेंगी तब स्वयं हमारा संघ उनमें मिल जायगा। संघका काम अब बड़े २ लोग पसन्द करने लगे है और इसका नया उदाहरण मान० उपासनी जैसोंका संघका सभासद होना है। यदि हम केवल प्रस्ताव ही पास करते रहेंगे तो सरकारसे भी हमें प्रस्ताव ही मिलेंगे। प्रस्तावको प्रस्ताव का प्रत्युत्तर मिलेगा और कार्यको कार्यका। प्रस्ताव और वचनोंका ही यदि हम विचार करें तो १८५८ से वे हमें मिलते रहे हैं। आशीर्वाद तो दिया गया पर उसकी फल-प्राप्तिका कहीं पता भी नहीं है। इसलिये अब हमें दृढ़तासे काम करना चाहिये। सफल होंगे या नहीं इसकी कोई परवा नहीं। काम करना जरूरी है। संघकी कार्रवाई उसकी रिपोर्टसे मालूम होती ही होगी, पर इतने ही से काम नहीं चल सकता। कमसे कम ५०००० सभासद और उतनेही

रुपयोंकी हमें जरूरत है। भारतके सभी समझदार आदमी को स्वराज्यका अर्थ समझना ही चाहिये। जब सब लोग यह कहने लगेंगे कि 'हमें स्वराज्य चाहिये' तब हम समझेंगे कि हां अब लोक-मत तैयार हो गया है। अगर कांग्रेस यह काम करे तो हममें और उसमें कुछ भी भेद बाकी न रहेगा।

कई तरहकी चिन्ताओंके बोझसे लदी हुई कांग्रेसकी गाड़ी धीरे धीरे ही चलेगी पर एक ही विषयकी चिन्ता करनेवाला यह स्वराज्य-संघ जल्दी जल्दी काम कर सकेगा। संघका कार्य करना राजद्रोह नहीं है। पीछे हटनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि इसके तत्व, इसके मार्ग, इसके साधन और इसका आन्दोलन आदि सब बातें वैध हैं। शिवाजीके कृपापात्र नानाजी जब सिंहगढ़ पर सब लोगोंके साथ रस्सियोंके सहारे ऊपर चढ़ गये तब उन्होंने ऊपर लानेवाली उन रस्सियोंको काट डाला उसी तरह इस आन्दोलनको पीछे खींचनेवाली रस्सियोंको हमने काट दिया है। अब पीछे हटना संभव भी नहीं है और न इष्ट ही है। हिन्दुस्तानका— अर्थात हमारा ध्येय साम्राज्यके अन्दर स्वराज्य प्राप्त करना है और इसीलिये हमें उसके अनुसार शिक्षा देनी चाहिये।

इसके सिवा इंग्लैंडमें जाकर जोरोंसे काम करना भी हम लोगोंके लिये आवश्यक है। जो अंग्रेज हमें स्वराज्य देने वाले हैं उन्हें हमें इन बातोंको समझना चाहिये। 'राउंड टेबल' संस्थाका काम जिस तरह सर्वव्यापी हो रहा है उसी तरह हमें भी इसे सर्वव्यापी बनाना चाहिये। वहां डेप्युटेशन ले जाने होंगे, अधिकारियोंसे भेंट करनी होगी, व्याख्यान देने होंगे, लोक संस्थाओंमें प्रवेश करना होगा, पत्र पत्रिकाओंमें लेख लिखने होंगे और इन सब तथा और अन्य

उपयुक्त साधनोंसे वहांका लोकमत तैयार करना होगा। उपनिवेशोंने इस कामको समय ही पर किया, उसीका यह परिणाम है कि वे आज इंग्लैंडके बराबर सटकर युद्ध सभामें बैठे और हमने कुछ नहीं किया इसलिये हम 'साम्राज्यका एक महत्वपूर्ण भाग' बन कर बैठ गये हैं। बृटिश जनता-को हमें यह बात समझा देनी चाहिये कि साम्राज्यका यह भाग स्वराज्य न देनेसे सदाके लिये असन्तुष्ट रहेगा। अत एव दो चार मनुष्योंको साल दो साल इंग्लैंडमें रहना चाहिये, रोज दो एक प्रमुख व्यक्तियोंको बातें समझा कर उनको अनुकूल बनाना चाहिये और साथ ही साथ मतवादी स्त्रियोंकी भी सहायता लेकर इस आन्दोलनको सर्वमान्य करना चाहिये। अभी इस समय जब कि लोहा गरम है उसको पीटकर अपने अनुकूल बना लेना चाहिये।

एक बात हमेशा पूछी जाती है कि मद्रास और पूनाके संघ क्यों मिलाये नहीं जाते। वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है। स्वयं मिसेज एनी बिसेन्ट महाशया हमारे संघकी सदस्य हैं और हमारे बहुतसे सभासद उनके संघके सदस्य हैं। मैं भी उस संघका शीघ्रही सभासद होने वाला हूं। भाषाकी अड़चन, स्थानिक परिस्थिति और मेरे संबंधमें सरकारका दूषित पूर्व ग्रह आदि बातोंकी वजहसे इस समय संघोंको भिन्न रखना आवश्यक है। सारे हिन्दुस्तानमें जब संघ स्थापित हो जायँगे तब 'एकी करण' 'सभोंको एक करने का' प्रश्न हल हो जायगा। उस समय कदाचित् संघ ही कांग्रेस हो जाय, या कांग्रेस ही संघ हो।

संघ और और काम क्यों नहीं करता? इस प्रश्नका उत्तर सहज है। संघने अपनी सारी शक्ति राजकीय उद्दे-

इसपर—स्वराज्य प्राप्ति—इकट्ठी की है भिन्न २ कामोंको हाथमें लेनेसे उस केन्द्रीभूत शक्तिका अपव्यय होगा। स्त्री शिक्षा, मुफ्त शिक्षा, अन्त्यज सुधार, सामाजिक सुधार आदि बातोंके हम कभी विरुद्ध न थे और न हैं; पर स्वराज्य में ये सब बातें सुसाध्य हैं और इसीलिये उस एक महान् उद्देश्यको सम्मुख रखकर यह सभा काम कर रही है।

बहुतोंने मुझसे यह सवाल किया कि सदस्योंकी जवाबदेही कहाँ तक और कैसी है? इस पर इस समय मेरा यही जवाब है कि संघके सदस्य बढ़ाना, पुलिसके पूछने पर निडर होकर यह कहना कि 'मैं स्वराज्य वादी हूँ और उसके (स्वराज्य) मिलने तक मैं वही रहूंगा', जहाँ तक हो सके आर्थिक सहायता करना और मुख्य कमेटी जो कहे उसे करनेके लिये सदा तैयार रहना—बस यही सदस्यों की इस समय जवाबदेही है। मुझ पर जब मुकद्दमा चल रहा था तब कई सभासदोंने प्रार्थनाकी कि हमारा नाम लिस्टमेंसे काट दीजिये। सदस्योंको इस तरह डरना न चाहिये। हर एक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह निर्भयताके साथ इस मतका प्रचार करता रहे। मि० केलकरने बम्बई में जैसे कहा था कि संघको चिरंजीवी होनेका आशिर्वाद नहीं चाहिये बल्कि ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि दो तीन साल ही में संघका उद्देश्य सफलीभूत हो और यह बहुत ठीक है। संघ इसलिये नहीं है कि हरएक पीढ़ीमें 'स्वराज्य' 'स्वराज्य' केवल कंठ किया जाय। संघका उद्देश्य जब तक सफलीभूत न हो तब तक प्रयत्न न छोड़ना चाहिये। हम लोग आज जो बातें कांग्रेसमें मांग रहे हैं वे 'कम से कम' है पूरी नहीं है उनपर समाधान न करो।

बहुतसे लोग यह बात कहते हैं कि ये बात गँवारोंको किस तरह मालूम होगी पर वह बिलकुल सच नहीं है। गँवारोंको जिस तरह ईश्वरके संबंधमें धुँधली कल्पना रहती है उसी तरह स्वराज्यके संबंधमें यदि हो तो भी बहुत है। जो लोग अपने घरका इन्तज़ाम अच्छी तरह कर लेते हैं वे यदि पढ़े लिखे न भी हों पर वे गँवार नहीं हैं। उन्हें जिस तरह घरकी, नगरकी पंचायतें मालूम रहती हैं उसी तरह देशकी—स्वराज्यकी पंचायतको भी वे समझ सकेंगे। उन्हें यदि हस्ताक्षर करने न आता हो तो जैसे सरकार काम चलाती है उसी तरह उनके अँगूठेका निशान लेकर काम चलाओ। अधिकारियोंको यदि निरक्षरताकी अड़चन नहीं तंग करती तो वह तुम्हें क्योंकर चक्करमें डालेगी? यद्यपि वे निरक्षर हैं तथापि वे हमारे ही भाई हैं, हमारे बराबर उनके भी हक़ हैं, उनमें और हममें कोई भेद नहीं है इसलिये हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उन्हें स्वराज्यका उनके सुखसाधनका ज्ञान उन्हें करा दें। यह बात सच है कि अधिकारियोंको ये बातें पसन्द नहीं हैं इसलिये तुम्हें कष्ट होंगे, यातनाएं सहनी पड़ेंगी; पर अपने अज्ञानी भाइयोंको जागृत करना भी तो हमारा कर्त्तव्य है। समय बदला हुआ है। यही समय है अतएव इसे व्यर्थ न जाने दो। सारे देश भरमें और इंग्लैण्डमें भी दृढ़ निश्चयके साथ, एक स्वरसे, वैध मार्गोंसे तेजीके साथ जोरोंसे आन्दोलन करो, निश्चय जानो कि युद्धके पश्चात् तुम्हें स्वराज्य अवश्य मिलेगा।

स्वराज्य ।

(अकोला १२ जनवरी १९१७)

आठ वर्ष पहलेकी बात है कि जब मुझे यहां कुछ कहनेका अवसर मिला था और मुझे मेरे शब्द अच्छी तरह याद हैं जो मैंने आपसे अपने भाषणके अन्तमें उस समय कहे थे। उस समय 'सूरतका झमेला' हुए दो ही साल हुए थे। मैंने कहा था कि यह विवाद भिन्न भिन्न ध्येयोंको सामने रखनेसे नहीं हुआ था बल्कि महर्षि दादा भाईने अपनी सभापतिकी वक्तामें स्वराज्यका जो ध्येय बतलाया था उसीको प्राप्त करनेके मार्गोंके अनुसरणमें हुआ था। इस तरह मार्गमें अन्तर अवश्य था पर ध्येय एक ही होनेके कारण जैसे जैसे समय व्यतीत हुआ यह मालूम होने लगा कि भिन्न २ मार्गोंके संबंधकी बातें लोग भूल कर दोनों एक हीमें मिल जायेंगे। ईश्वरकी कुछ घटनाओंने और गत वर्षकी कांग्रेसने मेरे भविष्यका समर्थन किया। होमरूल लोहा कई कठिनाईयों और परीक्षाओंमें ठोंक ठांक कर पक्का ठहराया गया और आज वह पूर्ण रूपसे वैध और सच्चा साबित हुआ है। यह बात अब पूर्णतया सिद्ध है कि दोनों का उद्देश्य एक ही है और भारतके स्वराज्य ही में ब्रिटिश साम्राज्यकी भावी उन्नति और दृढ़ता स्थित है। सरकारी न्यायालयोंने इस स्वराज्यके उद्देश्यको वैध और पूर्ण राजभक्ति युक्त बतलाया है। तब हमारा कर्त्तव्य है कि हम यह साबित कर दें कि भारतको उसकी नितान्त आवश्यकता है। भारत उसे चाहता है। किन्तु हमारी इस कार्यप्रणालीको वर्तमान शासन पद्धतिने अवैध और

दोष पूर्ण बतलाया है। इसका केवल एकमात्र उपाय यह है कि हमारा स्वायत्त-शासन हो—जिसके हम सर्वथा योग्य हैं। स्वराज्यकी पुष्टि करनेमें और वर्त्तमान शासन प्रणालीमें दोष दिखलाते हुए हमें कुछ कड़े शब्दोंका प्रयोग अवश्य करना पड़ा, किन्तु हां विषयकी महत्ता ध्यानमें लाते हुए वे शब्द इससे नरम नहीं हो सकते थे। हमारे प्रतिपक्षी कहा करते हैं कि स्वराज्यके संबंधमें जो चाहो सो कहो पर वर्त्तमान एक नियन्त्रित शासन प्रणालीके गुण दोषोंकी मीमांसा मत करो; क्योंकि ऐसा करनेसे अराजकता फैलती है। ऐसा कहना मानों हमलोगोंसे एक असम्भव काम कराना था। यह कहना उसी तरह है जैसे किसीसे कहा जाय कि कोई फल बिना दांत लगाए ही खा जाओ। हमें ऐसा करनेके लिये कहना मानों अप्रत्यक्ष रीतिसे हमें उस फलके खानेसे रोकना है। होमरूलकी आवश्यकताकी पुष्टि कैसे हो सकती थी जब तक यह न दिखला दिया जाता कि वर्तमान शासन प्रणाली दोषपूर्ण है और वे दोष ऐसे बड़े हैं कि वे सिवा स्वराज्यके दूर नहीं हो सकते। वे दोष बिना विरुद्ध प्रमाण दिये कैसे साबित किये जा सकते थे। हमारे सौभाग्यसे बम्बईके हाईकोर्टने इस प्रश्नको हमारे लिये हलकर डाला है और यह सिद्ध हो गया है कि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली दोषपूर्ण शासन प्रणालीके दोषोंका विवेचन करना राजद्रोह नहीं है। कड़े शब्द तथा कड़े वाक्य उपयोगमें लाये जा सकते हैं जिनसे कि कुछ हानि नहीं हो सकती। अतः यह सिद्ध हुआ कि होमरूल या स्वराज्यका उद्देश्य वैध और सत्य तथा न्यायपूर्ण है और शासन प्रणालीके दोष बतलाना कानूनके विरुद्ध नहीं

है किन्तु एक प्रश्न—बड़ा भारी प्रश्न अभी बाकी रह गया था और वह यह था कि

होमरूलसे क्या मतलब है।

होमरूलके इतिहासमें यह तीसरी घटना है। मुझे कहनेमें आनन्द होता है कि गत वर्षकी कांग्रेसने इस प्रश्नका मुँहतोड़ जवाब दिया है। यह कोई प्रश्न हल करनेकी रीति नहीं है कि एक पक्ष अपने ढंगके अनुसार सामने रखे या दूसरा पक्ष दूसरी रीतिसे। यह वह रीति है जिसे हिन्दू मुसलमान, नरम गरम सबने एक ही ढंगसे पसन्द किया है। इसके मानी हैं प्रजा सत्तात्मक राज्य—वह राज्य जिसपर प्रजाका अधिकार रहे। मैं तुमको यह भी बतलाऊंगा कि इसका

उद्देश्य क्या है।

इसका मतलब यह नहीं है कि भारत और इंग्लैंडका संबंध-विच्छेद हो। इसके मानी यह नहीं है कि बादशाहकी सत्ताको हम न मानें, किन्तु इसका उद्देश्य इन दोनों बातोंकी पुष्टि करता है। हम अपनी खुशीसे इंग्लैण्डको अपना रक्षक समझते हैं। यही तो असलमें जड़ है जिसपर होमरूलकी इमारत खड़ीकी जायगी। हमें इसको या उसको किसीको न भूलना चाहिये क्योंकि भारत और इंग्लैण्डका संबंध और उसकी दी हुई शिक्षा ही का यह प्रभाव है कि आज हमारे हृदयोंमें ऐसी ऐसी उच्च आकाक्षाएं भरी हुई हैं।

अतएव जैसा मैंने कहा है, स्वराज्यका अर्थ प्रजासत्तात्मक राज्य है जिसमें प्रजाके स्वत्वोंकी पूर्ण रक्षा होगी और उसीकी प्रसन्नताके कार्य होंगे न कि उसकी उपेक्षा होगी जैसी की वर्तमान समयमें कुछ सिविल सर्वेण्टोंकी खुशीके कारण होती है। यहाँ वाइसराय—राजप्रतिनिधि—रहने दीजिये और वह भी अंग्रेज ही सही किन्तु वह लोक प्रति-

मिनियोंकी सलाहके अनुसार काम करें। हमारे धनका हमारे लिये और हमारी अनुमतिसे ही व्यय हो। लोगोंके लिये काम करनेवालोंको सचमुच वैसा ही होने दो और न कि उन्हें उनके मालिक होने दो जैसे कि वे इस समय है। यह सवाल कि कौन्सिलमें कितने मेम्बर बैठेंगे बिलकुल निरर्थक है। असल प्रश्न तो यह है कि उस कौन्सिलमें बैठनेवाले मेम्बर प्रजाकी आवश्यकताओं पर विचार करेंगे या नहीं या वे सरकारकी नीति स्पष्ट करनेमें समर्थ होंगे या नहीं? तब क्या यही होमरूलका मतलब है?

यह बहुत दूरका मार्ग है।

अब मुझे यह बतलानेकी आवश्यकता न रही कि हमारे सामने एक बहुत दूरका कष्टदायक मार्ग है। हमें उसपर हिम्मतके साथ चलना चाहिये। बड़ी बड़ी बातें आसानीसे नहीं होतीं और वे बातें जो सहजहीमें होती हैं बड़ी नहीं होतीं। गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा है कि जिन पांच साधनोंसे सफलता प्राप्त होती है उनमें दैव भी एक साधन है। दैव वह सुअवसर है जो ईश्वर हमें देता है जिसमें कि हम उसे पाकर लाभ उठावें या न उठावें। दैव वह मौका है जो मनुष्य के प्रयत्नके बाहर है और वह तभी आता है जब कि उसके लिये पूर्ण सुअवसर होता है। यह हमारा दोष है कि हम यह न जाने कि उससे कैसे लाभ हो सकते हैं। दैव इस समय तुम्हारे अनुकूल है। तुम अपने स्वत्वोंको आगे बढ़ाओ यही समय है। यदि तुम आगे न बढ़ोगे तो सारा संसार तुमसे आगे बढ़ जायगा और तुम उस घासकी तरह पीछे रह जाओगे जो मार्गके दोनों ओर बढ़कर रह जाती है या उस पत्थरकी तरह जो मार्गपर दूरी बतलाता रहता है।